श्री कृष्ण स्वयम्

Krishna Speaks to you Again





श्री कृष्ण स्वयम्

Krishna Speaks to you Again

माध्यम
शारदा मिश्रा



प्रकाशक
ज्ञान - विज्ञान प्रकाशन
34, कृष्णपुरी (मथुरा)
उत्तर प्रदेश

प्रकाशिका — शारदा मिश्रा
ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन
34, कृष्णपुरी मथुरा,
उत्तर प्रदेश

संस्करण — प्रथम १९७५

मूल्य — साधारण जिल्द २५ रु०
रैकसीन जिल्द ३० रु०

मुख्य विक्रेता — नवयुग ग्रन्थागार
C-747, महानगर
लखनऊ, उत्तर प्रदेश
दूरभाषा (विक्रेता) — 81576

मुद्रक—अग्रवाल प्रेस,
मोतीनगर, लखनऊ-४

Krishna Speaks to you again

।। श्री कृष्ण स्वयम् ।।

विश्व—मानव के प्रति

Krishna Addresses the universal mankind

The Universal Man

'पश्य मे योगम् ऐश्वरम्'

'This is my yoga divine'

विराट् - जीवन - दर्शन

"यह सम्पूर्ण सृष्टि यह विराट् विश्व, आपके लिये है"
और

विराट् - जीवन - दर्शन

'आप स्वयं सम्पूर्ण सृष्टि के लिए हैं,

विराट् के लिये हैं ... — ... ।

विराट् - जीवन - दर्शन

"यह सम्पूर्ण सृष्टि यह विराट् विश्व, आपके लिये है"
और

विराट् - जीवन - दर्शन

'आप स्वयं सम्पूर्ण सृष्टि के लिए हैं,

विराट् के लिये हैं ... — ... ।

विराट् - जीवन - दर्शन

विराट् (विश्व) ने आपका पालन किया है, और,

विराट् - जीवन - दर्शन

आप को अपनी सेवायें विराट्-विश्व के प्रति समर्पित करनी है।

All for one, and one for all.

"सब आप के लिये हैं, आप सब के लिये हों।"

शाश्वत कृष्ण-चेतना का आवाहन कर,
श्री कृष्ण के महान् अध्यात्म-ज्ञान को
मैं प्रस्तुत करती हूं .....

... ... और ... ...

वर्तमान और आगामी पीढ़ियों को
समर्पित करती हूं ... ... -
अपने हृदय के सम्पूर्ण प्यार और ममता के साथ
ताकि
श्री कृष्ण की जलाई हुई यह मशाल
समस्त मानवता के पथ को
आलोकित करती रहे।

शारदा मिश्र

"यही श्री कृष्ण का विराट्-दर्शन
और
दैवी योग yoga divine है।"

योग

धर्म-निरपेक्ष योग की रूपरेखा

मैं आपसे यह नहीं कहना कि आप ईश्वर की सत्ता में विश्वास करें। उसके बारे में अपनी कल्पनाओं के रथ दौड़ायें। अपना समय नष्ट करें और उसका भी जिसके बारे में आप चिन्तन कर रहे हैं। ईश्वर अगर है भी तो वह परोक्ष में रहना पसन्द करता है। वह स्वयं नहीं चाहता कि आप उसके बारे में कुछ जानें।

आप ईश्वर के बारे में कुछ जाने या न जानें, कम से कम इतना तो आप जानते ही होंगे कि आप एक विराट् सृष्टि के अंग हैं और वह विराट् सृष्टि आप के चारों ओर दूर-दूर तक अनजान, अज्ञात और अपरिसीम सीमाओं में फैली हुई है।

एक विराट् भूत जगत्-दृश्य जगत् या व्यक्त जगत् (Material world) है और उसमें एक परमाणु के समान आपकी स्थिति है। अब प्रश्न यह है कि यह विराट् जगत् जिसमें आपकी उत्पत्ति हुई और जिसमें आप रह रहे हैं उसके साथ आपका नाता क्या है?

विराट् के साथ आपका नाता

एक शिशु के रूप में आप पैदा हुये, उस समय आप कितने असहाय कितने बेबस थे। एक शेर तो शेर एक बिल्ली भी आपको बड़ी आसानी से उठाकर ले जा सकती है। नवजात् शिशु के रूप में यदि आपको एक दिन भी दूध न मिलता तो आपकी क्या हालत होती? भयानक ठिठुराने वाली शीत-हवाओं में यदि आपको मुलायम गरम कपड़ों में लपेटकर गोद में न सुरक्षित रखा जाता तो आपका क्या हाल होता? क्या इस आयु को प्राप्त करने के लिये आप जीवित रहते।

यदि आप ध्यान से देखें तो पायेंगे कि जब से इस भूत जगत या सृष्टि में आपकी उत्पत्ति हुई तभी से यह सृष्टि एक अलक्ष्य तरीके से आपकी देख भाल और रक्षा कर रही है। आपके जन्म के ही समय एक डाक्टर अथवा नर्स या दाई ने आपके पैदा होने में मदद की जिससे आप स्वस्थ बालक के रूप में पैदा हो सकें। आपको एक अनुरागमयी वात्सल्य मूर्ति भी मिली जो आपको अपने कलेजे का टुकड़ा समझ कर आपका लाड़-प्यार, लालन-पालन करती रही। अपनी छाती से लगाकर जिसने आपको दूध पिलाया। पिता के रूप में भूत-जगत् के एक विशिष्ट प्राणी ने आपको सुरक्षा प्रदान की। आपको अपने परिवेश में ही कुछ भाई-बहन मिले, जिनके बीच आप बड़े ही परिचित, वात्सल्य तथा सुरक्षापूर्ण वातावरण में पलते रहे— बड़ा मज़ा— बड़ी मौज, शैशव की किलोलें— खाने का वक्त आया आपको खाना मिला, पीने का वक्त आया आपको दूध-पानी मिला। खेलने की मर्ज़ी हुई खिलौने मिले। सोचिये आप कितने भाग्यशाली हैं। फिर आप बड़े हुए तो आपको शिक्षित-दीक्षित बनाने के लिये कितने अध्यापकों, कितने शिक्षकों, कितने प्रोफेसरों की पंक्ति आगे आती है। आप मन में गिनिये तो सही अभी तक अक्षरारम्भ से लेकर अपनी वर्तमान स्थिति तक लाने में, आप वर्तमान पद को संभालने तक कितने शिक्षकों ने आपको दीक्षित किया है, कहां-कहां से वे आये किस प्रकार उन्होंने अपने ज्ञान-विज्ञान के भण्डार गृह में आपको हाथ पकड़ कर प्रवेश कराया।

आपके अस्वस्थ्य होने पर अब तक न जाने कितने प्रकार के चिकित्सकों ने आपको निरोग बनाने में योगदान दिया है उसका आपने कभी हिसाब लगाया है? फिर आप बड़े हुये—आपको एक जीविका मिली। आप जिस आफिस या संस्था में काम करते हैं, उसके ऊपर दृष्टि डालिये। यह संस्था आपके लिये है। इस स्कूल अथवा दफ्तर या कारखानों का आपके लिये हजारों हजारों व्यक्तियों ने दसियों वर्षों में निर्माण किया है। इन सभी व्यक्तियों से आपका नाता जुड़ा है। उन्होंने जाने या अनजाने आपके लिये काम किया है। इन सभी अगणित मनुष्यों ने— प्राणियों ने। देखिये इस बात को समझिये.........

फिर आपका विवाह होता है। जाने किस, अब तक अव्यक्त स्थान से एक तरुणी आपके पास आती है। यह युवती आपको हर तरह का आनन्द देती है हर तरह से आपकी देख-भाल करती है, सेवा करती है। आपको पिता बनने का गौरव प्रदान करती है। क्या आपने कभी सोचा है कि किन माता-पिता, दादी-नानी आदि सम्बन्धियों ने इस लड़की को आपके लिये तैयार किया है। कितनी माताओं, पिताओं, चाचियों, ताइयों व शिक्षिकाओं ने इसको गृह कार्यों की शिक्षा दी होगी

ताकि यह आपका घर संभाल सके। आपको प्यार और संसार का सुख देने वाली इस जीवन्त गुड़िया के निर्माण में जो आपके लिये रिज़र्व रक्खी गई है—भूत जगत् के कितने निर्माताओं का योगदान है। इस युवती के साथ आपका सम्बन्ध जुड़ते ही विराट् भूत जगत् के उन प्राणियों से क्या आपका सम्बन्ध नहीं जुड़ जाता ? जरा सोचिये तो।

तो आप देखेंगे कि एक छोटी सी छोटी चीज को लेकर, एक छोटी से छोटी सुविधा को लेकर आपका नाता इस विराट् भूत जगत् (Material world) से जुड़ा है। आपकी जड़ें इस संसार वृक्ष में दूर दूर तक फैली हुई हैं और जाने कहां कहाँ से इसकी सिंचाई हो रही है। आप अपने बालों को काढ़ने के लिये जैसूर का कंघा हाथ में लीजिये·······कंघा उठाते ही आपका नाता जैसूर के उस दीन हीन परिवार से जुड़ जाता है जिसके सदस्यों ने सीगों को तराश कर यह कंघा बनाया है।

"एवं प्रवर्तित चक्र"

इस प्रकार एक सृष्टि चक्र प्रवर्तित है जिसमें आप पिरोये हुए हैं। आप चाहें या न चाहें जाने या न जाने आपका नाता विराट् से जुड़ा है। समस्त सृष्टि आपको सुखी और प्रसन्न करने के लिए कुछ न कुछ कर रही है। अणु से लेकर आकाश चारी ग्रहों तक। यह सारी सृष्टि आपके लिए सक्रिय है आपकी सेवा कर रही है। आप ईश्वर को मानिये चाहे न मानिये पर आपको इस सृष्टि की सत्ता तो माननी ही पड़ेगी जिसके कि आप एक अंश हैं। शीश झुकाकर उसकी उदारता स्वीकार करनी पड़ेगी। यह सृष्टि, यह समष्टि जब आपके लिए इतना कुछ कर रही है तो क्या आपका उसके प्रति कुछ कर्तव्य नहीं है ? भूत जगत् (World of matter) के इस महादान के प्रति आपको क्या कुछ आभार प्रकट नहीं करना ? प्रतिदान नहीं करना ? यह ऋण क्या आपको नहीं उतारना चाहिये ?

इन सबका उत्तर है हाँ। सृष्टि के नियमों के अनुसार यदि यह समस्त सृष्टि आपके लिए है तो यह भी सही है कि आप समस्त सृष्टि के लिए हैं। यदि समग्र सृष्टि, यह विराट् विश्व आपके लिए इतना कुछ कर रहा है तो आपको भी अपनी सेवायें इसके प्रति अर्पित करनी होंगी, यदि आप ऐसा नहीं करेंगे। तो सृष्टि चक्र (Grand design of the universe) आपको कुचल कर, पीस कर नष्ट कर देगा। आप अनस्तित्व में विलीन हो जायेंगे। वही असली अर्थों में आपकी मौत होगी।

क्या करना होगा ?

आपका परिवेश आपके सामने कुछ तात्कालिक कर्तव्यों को लाता है। आप उन्हें दक्षता और लगन से करेंगे। यह सृष्टि जैसी आपको कुछ मिली है, आप से अपेक्षा करती है आप इसमें और चार चाँद लगायें। इसे अपने सद् प्रयत्नों से और सुन्दर बनायें, और मनोरम और रमणीय बनायें। कोई ऐसा काम न करें जिससे यह सुन्दर सृष्टि विकृत हो, इसमें रहने वालों को नुकसान पहुंचे। सृष्टि के कल्याण के लिए चिन्तन करना और इस प्रयास में पूर्ण निष्ठा के साथ जुट जाना आपका परम कर्तव्य है। आपको सुखी बनाने के लिए इस सृष्टि ने इतना कुछ किया है तो आप भी इसके लिए कुछ कीजिये............इस विशाल भवन के निर्माण में आप भी अपनी ईंट लगाइये। अगर आप माली हैं, तो एक फूल वाला पौधा ही लगाइये जिसको देखकर सब प्रसन्न हों, खुशबूदार फूलों से बगिया महक जाय। एक अमरूद का पेड़ ही लगाइये बच्चे किसी दिन इन अमरूदों को खायेंगे तो आपको दुआयें देंगे। आप इन्जीनियर हैं तो चलिए एक पुल के बनवाने में अपनी सम्पूर्ण लगन, सम्पूर्ण निष्ठा, सम्पूर्ण ईमानदारी के साथ लग जाइये। देखिये आपके द्वारा निर्मित इस पुल पर हजारों-हजारों व्यक्ति और वाहन पार उतरेंगे। आप कृत कृत्य हो जायेंगे, इस सृष्टि कर्म में भाग लेने पर। यह अनुभूति आपकी समाधि होगी, कर्म समाधि, सृष्टि-कर्म समाधि। आप डाक्टर हैं। आपके पास रोगी आर्त और पीड़ित व्यक्ति आते हैं। आप अपने पेशे के नियमों के अन्तर्गत ही सम्पूर्ण हमदर्दी, सम्पूर्ण भावनाओं और दक्षता के साथ रोगी को निरोग बनाने में लग जाइये और फिर देखिये आप के कामों की गूंज कहाँ-कहाँ तक जाती है। इस सृष्टि कर्म में आपका योगदान कहाँ-कहाँ तक किस किस को प्रभावित करता है।

इस चक्र में (Grand design of Universe) सृष्टि आपके लिए और आप सृष्टि के लिए हैं। सृष्टि के क्रिया कलाप (Universal activities) आपके लिये हो रहे हैं। इस प्रकार के क्रिया कलाप सृष्टि के लिए हो रहे हैं। इस प्रकार कर्मों के आदान-प्रदान के चक्र में सम्पूर्ण शक्ति और निष्ठा से कार्य करने पर आपको जो आन्तरिक शान्ति प्राप्त होगी वह दिव्य और सत्य होगी। आपको यह शान्ति भूत जगत् ही प्रदान करेगा जिसके क्रिया-कलापों में (Cosmic activities) आप जम कर भाग लेंगे अपना सम्पूर्ण योगदान देंगे। आप अपने सत् प्रयत्नों को पराकाष्ठा पर पहुंचाइये तो आप कर्मयोगी की हैसियत से उस परम शांति उत्कर्ष एवं आनन्द के अधिकारी होंगे जिसकी आस्तिक, योगी, दार्शनिक और ज्ञानी जन कामना करते हैं। जब तक आप इस प्रकार ईमानदारी से कर्तव्यनिष्ठ होकर

सृष्टि चक्र में योगदान दे रहे हैं तब तक इस बात को कोई आग्रह नहीं है कि आप किस धर्म या मज़हब को मानते हैं या नहीं भी मानते। आपका इष्ट देव कौन है या आप निरीश्वरवादी हैं।

The immaculate Material order
अपौरुषेय भूत सृष्टि व्यवस्था

माना कि आप के लिये यह सृष्टि निरीश्वर है फिर भी इस सृष्टि चक्र में एक व्यवस्था एक Order, एक नियम, एक नियोजन तो परिलक्षित है ही। इन नियमों मे अन्तर्विरोध (Incoherence) और वेतुकापन नहीं है (Irrele vency) सौर मण्डल एक विशेष व्यवस्था के अनुसार अन्तरिक्ष में सूर्य के चारों ओर एक विशेष दूरी को रखते हुए घूम रहा है। सूर्य पृथ्वी के ऊपर गिर नहीं पड़ता है। वैश्वानर अग्नि (Cosmic fire) का यह गोला उतनी ही दूरी हमारी पृथ्वी से रखता है जितने से हमें आवश्यक गर्मी और प्रकाश मिलता रहे, वह आकस्मिक ढंग से हमारे ऊपर उछल कर हमें भस्म नहीं कर देता है। नदियाँ किसी अलक्ष्य नियम से आबद्ध होकर पर्वत-श्रेणियों से उतर रही हैं और समुद्र की ओर बढ़ रही हैं। अपार समुद्र की उत्ताल तरंगें तट से टकरा कर अपनी सीमा में लौट जाती हैं, अगर वे जल विप्लव पर उतारू हो जायें तो शायद एक इंच भी पृथ्वी पर सूखी जमीन न बचे। अन्तरिक्ष के, वायु के, जल के, गैसों के, प्रकाश के विद्युत के अपने नियम हैं। भूत जगत् के भौतिक सृष्टि के ये नियम (Laws) अपरिहार्य हैं इनके अनुलंघनीय होने से ही सृष्टि में एक व्यवस्था उत्पन्न होती है।

मनुष्य विज्ञान के द्वारा, इन नियमों को समझने और पढ़ने का प्रयत्न है। भूत जगत् के ये नियम इतने व्यवस्थित हैं कि गणित और फिजिक्स के द्वारा उनमें प्रवेश कर वैज्ञानिक गणनायें की जा सकती हैं। भूत जगत् के नियम अपौरुषेय हैं। इसका अर्थ सिर्फ यही है कि इन नियमों का प्रवर्तन मानवीय बुद्धि के स्तर पर नहीं हुआ है। ये नियम मूल प्रकृति के स्तर पर (Unmanifest nature) जन्म ले रहे हैं और विराट् के स्तर पर (Cosmic level) अदृश्य महाशक्ति की व्यवस्था उन्हें प्रवर्तित कर रही है। भूत जगत् (World of mater) के नियम अनुलंघनीय (inviolable) तथा अपौरुषेय immaculate हैं किन्तु उनमें मनुष्य की मेधा झांक सकती है और उन्हें समझकर मानवीय प्रयोग (Human application) में नियोजित कर सकती है। अन्तरिक्ष में संचरण के नियम Laws अनुलंघनीय तथा अपौरुषेय हैं लेकिन विज्ञान के द्वारा उनका मनन करके मनुष्य चन्द्रयान बना

सकता है। विद्युत के नियम (Laws) अपौरुषेय हैं। अर्थात वे मनुष्य के बनाये हुए नहीं हैं विराट् के स्तर की महाशक्तियों द्वारा (Cosmic nature) प्रवर्तित है। अपौरुषेय नियमों से विश्व विद्युत् संचालित हो रही है किन्तु मनुष्य की मेधा उन नियमों के आरपार देखकर उन्हें अपने हित में प्रयुक्त कर सकती है बिजली के पंखे, बिजली के हीटर, एयर कन्डीशनिंग, क्या नहीं, प्राप्त किया मानव ने विद्युत् से। इसी तरह वनस्पति जगत् में भी भूत सृष्टि के (Material Order) अपौरुषेय नियम काम कर रहे हैं। भूत जगत् का सच्चा वैज्ञानिक चाहे वह निरीश्वरवादी ही क्यों न हो यदि वह अपनी सम्पूर्ण चेतना और मेधा की मशाल जलाकर प्रकृति के भूत सृष्टि के इस रहस्य मय क्षेत्र में प्रवेश कर जाय तो उस आलोक में प्रकृति अपने गुप्ततम रहस्य उस वैज्ञानिक के सामने खोलने को प्रस्तुत हो जाती है। शर्त यही है, कि विज्ञान का धनी अपनी सम्पूर्ण चेतना, सम्पूर्ण मेधा, सम्पूर्ण भावना के साथ इस सृष्टि कर्म में प्रवृत हो जाय और तब उस वैज्ञानिक को जो विज्ञान समाधि लगेगी वह योग समाधि ही होगी। और सृष्टि का सत्य उसके ऊपर सहज भाव से उतरेगा।

समष्टि आपके लिये हैं आप समष्टि के लिये

अभी तक मैं निरीश्वरवादी मनीषियों से सम्भाषण कर रहा था। यदि आप ईश्वर की सत्ता को न मानें तो भी कोई हर्ज नहीं बशर्ते कि आप यह बात अच्छी तरह समझ लें कि आपके चारों ओर फैली हुई एक विराट् सृष्टि (Creation) है जिसके कि आप अंग हैं। इस सृष्टि के समस्त क्रिया-कलाप आपकी सुख-सुविधा के लिये हो रहे हैं। सूरज आपको धूप पहुँचा रहा है। मेघ आपके लिये बरस रहे हैं, वृक्ष आपके लिये फल दे रहे हैं, उपवन के फूल आपके लिये महक रहे हैं, गाय आपके लिये दूध दे रही है—यह नदी अपनी जलराशि आपके लिये लाई है। आप इसमें नहायेंगे—आप इसका जलपान करेंगे। आकाश की ओर दृष्टिपात करिये। यह सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा आपकी ओर देखकर हँस रहा है, चमक रहा है। समस्त प्रकृति आपके लिये अपनी सुषमा बिखेर रही है। यह विश्व, यह सृष्टि, आपके लिये है। प्रकृति आपको प्रसन्न करने के लिये नृत्य कर रही है। यह विश्व आपके लिये है। आप हैं इस विश्व के केन्द्र।

इस सृष्टि-चक्र में यदि सम्पूर्ण सृष्टि आपके लिये है, आपके आनन्द के लिये है तो आप भी सृष्टि के लिये हैं। यदि गाय अपना दूध आपको समर्पित करती है तो फिर आप भी गाय के लिये हैं। गाय के चारे आदि की फिक्र आपको करनी

पड़ेगी। उसके खान-पान की सुव्यवस्था करना आपका कर्तव्य है। वृक्ष यदि आपको फल दे रहा है तो आपका कर्तव्य है कि उसे सींचने और सुरक्षित रखने का। ये फूल यदि आपके लिये महक रहे हैं तो क्या पौधों को पानी देना आपका कर्तव्य नहीं। यह कमरा आपका है—आपको आराम देता है तो इसे साफ-सुथरा रखना झाड़-पोंछकर सुव्यवस्थित करना क्या आपका कर्तव्य नहीं होगा।

इस चीज को समझिये। इस सृष्टि-चक्र में यदि सृष्टि आपके लिये है तो आप भी स्वयं सृष्टि के लिये हैं (All for yon and you for all) सब एक के लिये, एक सबके लिये। समष्टि आपके लिये हैं। और सृष्टि के प्रति आपका कर्तव्य है, सृष्टि को पहले की अपेक्षा अधिक मनोरम अधिक सुन्दर, अधिक भव्य अधिक श्रेयस्कर बनाना। (Betterment & still betterment) सृष्टि में अपने प्रयत्नों से चार चाँद लगाना। यह तो हुआ निरीश्वरवादी दृष्टिकोण।

अध्यात्म व्यवस्था अर्थात् विश्वात्म-चेतना

The spiritual order and the cosmic spirit

अब मैं उन मनीषियों को सम्बोधित करूँगा जो उस महान् परात्पर सत्ता की अनुभूति करना चाहते हैं जो अपने एकांश में ही इस विराट् सृष्टि को धारण किये हुये हैं। जिस अव्यक्त शक्ति की गोद में यह व्यक्त विश्व एक नन्हें बच्चे की तरह किलकारियाँ मारता हुआ खेल रहा है। जिस महाशक्ति के अणुकण में यह विशाल-जगत् उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार अनन्त असीम महासागर में एक बूंद। जिस अनन्त सत्ता की एक बूंद मात्र से अखिल भुवन पोषित और तृप्त हो रहा है। इस महान् परात्पर सत्ता का क्या ज्ञान है कैसे यह ज्ञान प्राप्त होगा? यह एक प्रश्न है…………

अध्यात्म विद्या की सम्पूर्ण प्रयोगशाला अपने अन्दर होती है। अपने मन की प्रयोगशाला में झाँकिये—बहुत सी बातें आपको स्वतः पता चल जायेंगी।

आप ध्यान से देखिये। एक आपका भौतिक शरीर है (Material body) है। वह प्रकृति के तत्वों से, पंचभूतों से बना हुआ एक पुतला है इसके अणु परमाणु विश्व-प्रकृति (Comsic nature) का कहना मानते हैं। सुन्दर से सुन्दर लड़की को केश जला दीजिये राख बन जायेंगे। हड्डियाँ जलकर कैशशियम का ढेर बन जायेंगी। धूप तेज निकलने पर जब जलाशयों का पानी भाप बनकर उड़ेगा—हमारे अन्दर का पानी भी फुंकेगा। हमें फिर प्यास लगेगी।

तो भौतिक द्रव्यों से निर्मित इस पुतले के अन्दर चेतना की बिजली चमक रही है। "एक चैतन्यशील मैं" है जो इस शरीर में रह तो रहा है पर शरीर से बंधा नहीं है। यह मैं दुख-सुख का अनुभव करता है। सोचता विचारता है—संकल्प करता है, इच्छा करता है। प्राण-शक्ति को प्रेरित कर शरीर में हरकत उत्पन्न करता है, फिर शारीरिक चेष्टायें होती हैं—काम होते हैं, पुतला चलता-फिरता, नाचना-गाता हँसता-खेलता दिखाई देता है।

यह मैं कौन है कहां से आया है, क्या है जिस प्रकार अपना शरीर है और उसके अन्दर क्रियाशील एक 'मैं' है जो सोचता है, दुख-सुख की अनुभूति करता है, इच्छायें करता है, संकल्प विकल्प करता है, आप अनुभव कर सकते हैं कि ऐसा 'मैं' एक क्रियाशील चैतन्य (Consciousnes) दूसरे में भी होगा। मैं अपने अन्दर रहने वाले 'मैं' को अन्तर्यामी नाम देता हूं (I, Consciousness) और दूसरों के शरीर में विद्यमान चैतन्य या चेतना को बहिर्यामिन् नाम दे रहा हूँ। नामों से घबराइयेगा नहीं ?

विश्वात्मा या विश्व व्यापिन् The cosmic spirit

इस विराट् सृष्टि के ऊपर नज़र डालिये। यह विशाल जगत् जिसमें अनेक सौर मण्डल, ग्रह नक्षत्र, पर्वत मालायें, सरितायें, समुद्र, वृक्ष, लता पत्ते......मानव प्राणी से लेकर कीट-जगत् तक है। यह भी किसी वस्तु, किसी पदार्थ का बना हुआ है। भिन्न-भिन्न दिखाई देने वाली वस्तुयें जिस चीज़ से बनी हैं, भौतिक जगत् के बस तत्व को हम वस्तु पदार्थ अथवा मैटर कह लेते हैं। सम्पूर्ण विराट् का सम्पूर्ण सृष्टि का यह शरीर मैटर या पदार्थ का बना हुआ है। यदि मेरे शरीर के अन्दर एक चैतन्य 'मैं" (Conscious ego) है, यदि दूसरे विग्रहों में भी एक चैतन्य "मैं" है तो यह नतीजा निकलता है कि सृष्टि के वस्तुमय (Material) शरीर के अन्दर भी एक चैतन्य शील 'मैं' (Conscious ego) अवश्य परिव्याप्त है। कारण कि सृष्टि निर्जीव नहीं है। सृष्टि के अन्दर जीवन परिलक्षित है, क्रियायें हैं, हलचल है, हरकतें हैं, स्पन्दन है, विकास है। एक तरफ सृजन और यौवन है दूसरी तरफ वस्तु जगत में बुढ़ापा और प्रलय है। पृथ्वी एक निर्जीव ढेले के रूप में पड़ी नहीं है। वह सूर्य के चारों ओर एक निश्चित गति से घूम रही है। बादल आकाश के आँगन में गड़गड़ाहट करते हुए जाते हैं, गम्भीर ध्वनि करते हैं, वर्षा करते हैं फिर हलके होकर निकल जाते हैं। नदियाँ सुनियोजित व्यवस्था के अनुसार पर्वत से निकल कर समुद्र मे गिर रही हैं। बीज जमीन में गिरकर अंकुरित हो रहे हैं। बढ़ रहे हैं। हवा मद मंथर तथा रौद्र रूप में वह रही है। समुद्र की लहरें एक

विशेष गति के साथ उठ रही है गिर रही है। प्रकृति में एक ताल, एक गति है। यह जीवन का लक्षण है।

मै आपका ध्यान एक महान् सत्य की ओर आकर्षित करता हूं। प्रकृति में जीवन के लक्षण इस बात की ओर निर्देश कर रहे हैं कि प्रकृति के अन्दर कोई अव्यक्त चैतन्य सत्ता है जो उसे जीवन प्रदान कर रही है। ब्रह्माण्ड के भौतिक आवरणों में जो चैतन्य आत्मा है (Spirit) जिसकी वजह से यह सृष्टि जीवन्त है उसे मैं ' विश्वात्मा" का नाम देता हूं। आशा है आपको कोई एतराज न होगा।

आप विचार करें। मैं स्वयं अपने भौतिक शरीर (Material body) का अधिवासी और स्वामी हूं। अपने शरीर का अधिदैव मैं ही हूं। इस शरीर का निर्माण मेरे लिए हुआ है। इसी प्रकार अन्य शरीरों में स्थित चैतन्य आत्मा ही उन शरीरों की अधिदेवता है। स्वामी है।सभी बहिर्यामियों के बारे में यह सिद्धान्त है। उनके शरीरों का निर्माण भी उनके लिये हुआ है। वे ही अपने शरीरों के स्वामी अधिदैव है।

इसी प्रकार विराट्-सृष्टि के वस्तुमय भौतिक शरीर में भी एक अखण्ड चैतन्य (Spirit) व्याप्त है जो उसकी स्वामिनी भी है जिस प्रकार "मैं" अन्तर्यामी अन्तरात्मा अपने इस भौतिक शरीर का निवासी और संचालक हूँ जिस प्रकार अन्य शरीरों में बहिरात्मायें निवास कर रही हैं और उन शरीरों का संचालन कर रही हैं उसी प्रकार सृष्टि के वस्तुमय भौतिक देह में (World of matter) एक ही अखंड सत्ता आत्मा व्याप्त है, वह विश्व के शरीर में रह भी रही है और उसकी स्वामिनी और संचालिका भी है। उसी प्रकार जिस प्रकार मैं अपने निजी शरीर का अधिवासी और संचालक हूं उसी प्रकार यह विश्वव्यापिन्, यह अखण्ड आत्म-चेतना (Cosmic spirit) विश्व शरीर (Cosmic body) की अधिदैव है, स्वामिनी है, संचालिका है उसे मैं कहता हूं विश्व व्यापिन् या विश्वात्मा। आप विश्व देव भी कह सकते हैं।

यह अन्तर्यामी, बहिर्यामी और विश्वव्यापिन आत्मा (कहाँ से आ रही है। इस आत्म तत्व का अक्षय श्रोत कहां है? इस आत्म तत्व, इस चैतन्य धारा (Universal spirit) का अव्यय स्रोत है, परात्पर ब्रह्म, परात्पर देशकाल-निरपेक्ष, अनन्त, अगाध, असीम जिसका न ओर है न छोर है। इस असीम सत्ता का एक अंश देश और काल में घुसकर अनन्त काल के अनन्त प्रवाह के साथ चेतना बनकर बह रहा है। बड़े-बड़े विश्व ब्रह्मांड, अगणित भुवन इस असीम चेतना (spirit) में से

निकल रहे हैं और लय हो रहे हैं। अनन्त पृथ्वियाँ बन रही हैं और मिट रही हैं। अनन्त युग बीत गये हैं और बीतेंगे। परात्पर के, अनन्त अक्षय चेतना के इस महान् विशाल सागर में न कभी कमी आई है न आयेगी। अन्तर्यामी, बहिर्यामी, विश्व-व्यापिन् आत्मा (spirit) की अजस्र धारा, प्रकृति की समस्त शक्तियाँ, चैतन्य जीवन की अनन्त विविधताओं का अव्यय भण्डार एक स्रोत है यह परात्पर सत्ता। यह सबसे परे है, और इससे परे कुछ भी नहीं है। यह परात्पर आत्म-शक्ति विश्व में व्याप्त होकर विश्व प्रकृति को जीवन प्रदान कर रही है, चैतन्य (cosnciousness, प्रदान कर रही है। अन्तर्यामी के रूप में मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मुझे चला रही है, बहिर्यामी के रूप में दूसरे शरीरों में घुसकर उन्हें संचालित कर रही है। विश्व-व्यापिन् के रूप में सम्पूर्ण सृष्टि को संचालित कर रही है और सभी क्रियायें परात्पर महाशक्ति की एक बूंद मात्र से सम्पन्न हो रही हैं।

सहज भाव से बिना किसी आयास के, निसर्ग से, बड़े-बड़े ब्रह्मांड गोलक अव्यक्त प्रकृति में से निकल रहे है। यह चक्र अनादि है।

परात्पर सत्ता अव्यक्त है। यह विश्व-व्यापी चेतना, अन्तर्यामि-चेतना, बहिर्यामी चेतना सबका अक्षय स्रोत है। सबकी नियामिका है। उसका अपना एक विधान है। उसकी अपनी इच्छा शक्ति है (divine will)। परात्पर चेतना मूल अनाकारा प्रकृति को जन्म दे रही है (Unmanifest nature) और उसमें व्याप्त होकर उसे जीवित भी कर रही है। समस्त शक्तियों का अक्षय स्रोत परात्पर अपनी ही अन्तःस्थ शक्ति प्रकृति से भौतिक शरीरों को उत्पन्न भी कर रहा है और अन्तश्चेतना के रूप में उनमें प्रविष्ट होकर उनमें जीवन और चैतन्य स्थापित कर रहा है। सभी शरीरों में एक वही विशुद्ध परात्पर चेतना प्रवाहित हो रही है। बाहर से भिन्न-भिन्न दिखते हुए शरीर, वस्तु जगत् के नियमों से भी एक हैं। वे वस्तु तत्व (Matter) से बने हैं और एक ही विश्वात्म चेतना उनमें प्रवाहित होकर उन्हें जीवित और चैतन्य बना रही हैं।

यह सब किस लिए मेरे मित्रों

वह इसलिये कि परात्पर सत्ता कोई निर्जीव वस्तु नहीं है वह जीवितों से अधिक जीवित, जीवन को भी जीवन, चैतन्यों को भी चैतन्य प्रदान करने वाली महाशक्ति है। वह अपने को एक परम श्रेष्ठ (supreme) आत्मा (ego) के रूप में महसूस करने वाली महाशक्ति है। यह चित्शक्ति (supreme spirit)

अपनी इच्छा (Will) रखती है। कि उसी की इच्छा अबाध रूप से सृष्टि में बह रही है। यह चित् शक्ति जो संसार का सृजन कर रही है वही परात्परा चित्शक्ति जो इस सृष्टि का सृजन कर रही है, उसी की इच्छा है कि यह संसार फले-फूले, विकसित हो, दिन प्रतिदिन खिले, निखरे। कर्त्ता का यही मन्तव्य है, सृष्टि कर्त्ता का यही उद्देश्य है कि सृष्टि फले-फूले विकसित हो। और इस महान उद्देश्य को पूर्ण करती है परात्पर शक्ति की इच्छा शक्ति दैवी माया, Divine will.

मैंने गीता में ईश्वरीय उद्देश्य को यज्ञ का नाम दिया था। यह अपौरुषेय यज्ञ अनन्त काल से चल रहा है अनन्त भविष्य तक चलता रहेगा। सृष्टि का उत्तरोत्तर विकास और नवीनीकरण ही सृष्टिकर्त्ता को अभीष्ट है और परात्पर की महान इच्छा शक्ति (divine will) इस महा यज्ञ को अपौरुषेय स्तर पर सम्पन्न करती रहती है। परात्पर का यही महान संकल्प है, उद्देश्य है, योजना है। इसी लिये इस महान उद्देश्य की पूर्ति करने में संलग्न दैवी इच्छा शक्ति ही अधियज्ञ है।

अधियज्ञ

सृष्टि-कर्त्ता की इच्छा शक्ति, अनन्त देश, अनन्त काल में बहती हुई अपने उद्देश्य को (सृष्टि का उत्तरोत्तर विकास और नवीनीकरण) पूरा कर रही है। और वह लक्ष्य है सृष्टि का उत्तरोत्तर विकास।

इस महान योजना Grand disign में अन्तर्यामी, वहिर्यामी सभी पिरोये हुए हैं। अनन्त चेतना की महा धारा में हम बह रहे हैं. बहते चले जायेंगे। हमारा भला इसी में है कि हम इस प्रवाह में बहते रहें, अनुकूल आचरण करें। सृष्टि की जीवन धारा के प्रतिकूल जाने पर हमारे टूटने का डर है लेकिन धारा के प्रवाह में शान्त-चित्त से बहने में आनन्द ही आनन्द है क्योंकि हम इस चिरन्तन जीवन धारा के एक अंश हैं, एक बिन्दु हैं, उससे अलग नहीं है।

योग

हमारे शरीर विश्व के वस्तुमय शरीर (Matter) के ही अंश हैं हमारे शरीर का मैटर, भूत जगत् (Material order of the universe) का ही एक अंश है। हमारी इन्द्रिय चेतना विश्व के पदार्थ जगत् की तन्मात्राओं (Material propensities of the cosmos) की ओर लपक रही है। हमारा मन विश्वास के मन का एक हिस्सा है। हमारी बुद्धि विश्वात्मा की बुद्धि का एक छोटा सा टुकड़ा है।

हमारी भावनायें विश्वात्मा की भावनाओं से निकल रही हैं। हमारे प्राण विश्व-प्राण के अंग हैं। हमारी आत्मा विश्वात्मा की एक चिदंश है। हम विश्वात्म चेतना (Cosmic spirit) के ही एक हिस्से हैं। उससे अलग नहीं।

हम इस विश्वात्म चेतना (Cosmic spirit) के ही एक अंश, उसी में डूबे उसी में बह रहे हैं। उससे अलग न हो सकते हैं न होने की सम्भावना है।

इस तथ्य का ज्ञान, ज्ञान है, और एहसास योग है। और इस सत्य का दर्शन करने वाली दृष्टि ही दिव्य दृष्टि है और इस सम्पूर्ण विश्व को उसके समन्वित रूप से देखना विराट-दर्शन है।

योग तथा ज्ञान

अक्सर मेरे पास बहुत से लोग आते हैं और पूछते हैं यह योग क्या है? तथाकथित योगियों के चमत्कारों से चमत्कृत होने की वजह से शायद आपके गले में यह बात न उतरे जो मैं बताना चाहता हूं।

एक दिन मैं अपने भवन के उद्यान में देवी रुक्मिणी के साथ बैठा हुआ था कुछ योगियों ने संसद-सदस्यों के सामने योगिक आसनों के प्रदर्शन की अनुमति चाही। वह मैंने उन्हें दे दी। काफी बड़े जन समूह के सामने उन हठ-योगियों के प्रदर्शन हुए। शरीर को तोड़-मरोड़ कर विचित्र विचित्र मुद्राओं में बैठकर योगियों ने प्रदर्शन किया। कभी सर्प की तरह फन उठाकर वे सर्पासन से बैठे, कभी पीछे की ओर मुड़कर हाथों से पैर पकड़ कर, मयूरासन में, कभी उस स्थिति में जिसे पद्मासन कहते हैं। साथ ही इन विभिन्न मुद्राओं में बैठने का शरीर-यन्त्र पर प्रभाव इनका विशद वर्णन किया। महर्षियों ने अपने सूत्रों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा समाधि का क्रम पूर्वक वर्णन करके जिस अष्टांग योग का उल्लेख किया है उसमें से ये उत्साही सज्जन सिर्फ आसनों को ले उड़े हैं और तरह-तरह से उठने, बैठने, खड़े होने और शरीर की तोड़-मरोड़ को ही योग समझ बैठे हैं। उन्होंने मुझसे पूछा आपको ये योगासन कैसे लगे? मैं सोच में पड़ गया। मैंने कहा ये आसन जरूर हैं। शरीर की विभिन्न मुद्रायें, (Postures) आप इन्हें शारीरिक व्यायाम (Physical culture) कह सकते हैं। हो सकता है इनसे शरीर को स्वास्थ्य लाभ हो लेकिन इनमें योग क्या है? फिर यह जरूरी नहीं है कि आपके तरीके से बैठने से ही स्वास्थ्य बने और भी व्यायाम जैसे तैरना, दौड़ना, मुद्गर भांजना, रस्सी कूदना, क्रिकेट, फुटबाल आदि व्यायाम हैं जिनसे वही लाभ प्राप्त

हो सकता है। हठ योगी भस्त्रिका प्राणायाम करते हैं, धौंकनी की तरह साँस चलाकर। लेकिन तेज दौड़ने पर तेजी से रस्सी कूदने पर अपने आप भस्त्रिका की तरह सांस चलने लगती है। अगर पशुओं के बैठने-उठने के ढंग की नकल योग सिद्ध होता है तो सबसे पहले वह पशु ही योग सिद्ध होता है जिसकी मुद्रा की नकल में वह आसन बना है।

कुछ लोग प्राणयाम को योग समझ बैठे हैं। वे साँस के कन्ट्रोल को प्राण का आयाम मान बैठे हैं। श्वास प्रवास की जो सहज-निसर्ग प्रक्रिया प्रकृति ने शरीर में चालू कर रक्खी है उससे छेड़खानी कर वे प्राणायाम करना चाहते हैं। साँस के माध्यम से आक्सीजन हमारे शरीर में प्रवेश कर शरीर के कोषाणुओं को नव जीवन प्रदान करती है। उससे छेड़खानी कर हमें क्या मिल जायेगा। अगर साँस रोकने से ही ब्रह्मयोग हो जाता तो सबसे बड़ा योगी शायद दमें का मरीज बेचारा ही होता।

मेरे पास एक योगी सज्जन आये। उन्होंने फरमाया—"मैं हृदय की गति रोक सकता हूं।" उन्होंने प्रदर्शन किया। सच ही कुछ समय के लिए उन्होंने हृदय की गति रोककर दिखाई। पसीने-पसीने हो गये। बड़ी खराब हालत हो गई उनकी। मुश्किल से स्वस्थ हुए। मैंने उनसे पूछा, "क्या जिस व्यक्ति के हृदय की गति बन्द हो गई हो, उसे आप ठीक कर सकते हैं? वे इसका उत्तर हाँ में नहीं दे सके। एक महात्मा आये उन्होंने अपनी हड्डियाँ अलग-अलग करके फिर जोड़कर दिखाई। मैंने उनसे एक ही प्रश्न पूछा—"क्या ऐक्सीडेन्ट में टूटी हुई हड्डियों को आप इस प्रक्रिया से जोड़ सकते हैं?" इसका उत्तर वे महात्मा नहीं दे सके। और एक योगीराज थे जो आजन्म आंखों पर पट्टी बाँध कर, आंखें बन्द करके आर-पार देखने की साधना करते रहे। मैंने उनसे पूछा—क्या आप इस उपाय से दृष्टिहीनों को दृष्टि दे सकते हैं? वे भी इसका उत्तर नहीं दे सके।

तब फिर इन योगिक क्रियाओं का क्या महत्व है? कुछ लोग पानी की सतह पर चलने, आकाश में सशरीर उड़ने की कल्पनाओं में खोये रहते हैं। अक्सर वे मुझसे इन विषयों की चर्चा करते रहते हैं। मैं उनसे कहता हूं—'प्रकृति के नियम अपौरुषेय हैं, अपरिहार्य हैं, आप क्यों व्यर्थ श्रम करते हैं। हां अपौरुषेय नियमों को समझ कर उन्हें अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। मनुष्य पानी की सतह पर खड़ा होगा तो पानी पर अवश्य गिरेगा लेकिन युक्ति के द्वारा वह पानी पर चल सकता है और युक्ति द्वारा पानी पर चलने के तरीके को "तैरना" कहते हैं। आकाश में मानव सशरीर उड़ नहीं सकता लेकिन विज्ञान के नियमों का आश्रय लेकर वायुयान बनाये जाते हैं जो आकाश में उड़ सकते हैं और उनमें बैठकर मनुष्य अपनी उड़ने की इच्छा पूरी कर सकता है। जटिल से जटिल यौगिक प्रक्रिया, प्रकृति के

अकाट्य नियमों को काट नहीं सकती है वे अपरिहार्य (In exorable) हैं जो योगी ईस तरह की बातें करते हैं वे न केवल दूसरों को बल्कि अपने को भी भ्रान्त करते हैं और फिर हमें प्राकृतिक नियमों से परे जाने की आवश्यकता भी क्या है ? धारा के बहाव में नौका सहज भाव से चलती है, धारा के प्रतिकूल जाना कितना कठिन, कितना कष्ट साध्य है ।

कुछ ऋषियों ने और भी विचित्र धारणायें बना रखी हैं । उन्होंने अपने गुरुदेवों को कभी समाधिस्थ अवस्था में देखा होगा । उन्होंने उस समय उनके शारीरिक लक्षण देखे । आंखे ऊपर चढ़ गई है, नासाग्र दृष्टि हो रही है । सांस वेहद धीमी हो रही है । सांस वेहद धीमी चल रही है । शरीर जड़ हो रहा है । शिष्य वेचारे गुरु की मानसिक स्थिति क्या समझते, बस शारीरिक लक्षणों को पकड़ कर बैठ गये । इस तरह बैठो, यों हाथ मोड़कर गोद में रखो, गर्दन-रीढ़ की हड्डी को सीधा रखो, आंखें ऊपर चढ़ाकर नासाग्र दृष्टि करो, सांस बहुत धीरे कम से कम लो । यह क्रिया-योग है । मैं उनसे पूछना हूं, ' लक्षण संग्रह कर नकल करने से क्या मन की वह स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जो समाधि में होती है । वे आश्चर्य-चकित हो जाते हैं । कहते हैं—' यदि गुरु जी की इस प्रकार बैठने से समाधि लग जाती है तो प्रयत्न करने पर हमारी भी लग जायेगी ।'' मुझे हँसी आने लगती है । फिर खिन्न भी होता हूँ । शरीर की तोड़-मरोड़ चमत्कार, शारीरिक लक्षणों की नकल का योग से क्या सम्बन्ध है ? कब तक मानव शरीर की चेष्टाओं को, इन व्यर्थ की बातों को योग समझता रहेगा ?

योग शारीरिक प्रक्रियाऐं नहीं है । योग, प्रकृति के नियमों में खलल डालना, विघ्न डालना, छेड़खानी करना भी नहीं है । योग किसी विशेष महात्मा के सांस लेने और बैठने के तरीके की नकल नही है । योग सांस को रोकने की कोशिश भी नहीं है । योग एक ज्ञान है और उस ज्ञान को अपने अन्तःकरण के समस्त उपकरणों (Thinking, feeling and willing) के साथ एहसास करना, अनुभूत करना ही योग है । इस ज्ञान को, एहसास को जीवत में स्थापित करना महायोग है । निरंतर इस एहसास को मन में रखना योग 'युक्त' होना है ।

The Yog
योग युक्तात्मा

योग का शाब्दिक अर्थ है युक्त होना । प्रश्न यह है कि कौन किसके साथ जुडा हुआ है ? अथवा जुड़ा हुआ होना चाहता है । योग किसके साथ हो रहा है और किस प्रकार ?

सबसे पहले अपने शरीर को देखिये। यह शरीर कुछ विशेष द्रव्यों का बना हुआ है। सम्पूर्ण सृष्टि जिस पदार्थ (Matter) द्वारा बनी हुई है, हमारा शरीर उसी पदार्थ का बना हुआ है। हम इस विराट् सृष्टि के अंश हैं। हमारा भौतिक शरीर वस्तु जगत का ही एक हिस्सा है, उसी मैटर से बना हुआ होने के कारण उससे जुड़ा हुआ है वस्तुजगत् में धूप चटकती है आपको प्यास लगती है। सर्दी पड़ती है आपको सिहरन होती है। ठंढ लगती है क्योंकि आपका शरीर वस्तु-जगत (World of matter) से युक्त है। वस्तु जगत की हर तरंग का असर आपके ऊपर पड़ता है। जिस प्रकार आपका शरीर विराट् का एक अंग है उसी प्रकार आपके मन और आत्मा भी विश्वात्मा से जुड़े हुए हैं, उसके एक अश हैं। आपका मन विश्व-मन का एक अंश है आपकी आत्मा विश्वात्मा की एक चिदंश है। प्राण विश्व-प्राण से आ रहा है मन विश्व मन (Cosmic mind) का अंश है fragment है। आत्मा-विश्वात्मा की एक किरण है। उसका ही एक टुकड़ा है जिससे आप अलग नहीं हो सकते। आप बचकर जायेंगे कहाँ। मैंने निरीश्वरवादी दृष्टिकोण से समझाया था, हर कदम पर हमारे शरीर विश्व-शरीर के अंग है। हमारी अन्त: चेतना भी परात्पर की अन्त: चेतना की अंश है। उसी बात को दूसरे ढंग से बताता हूं। एक परात्पर सत्ता है, अव्यक्त, अनन्त, अविज्ञेय, अत्यन्त सूक्ष्म। इसके अंश मात्र में विश्व ब्रह्माण्ड स्फुरित हो रहे हैं। यह समस्त विश्व में व्याप्त होकर अपनी ही शक्ति से उसे धारण कर रही है। फिर वही परात्पर सत्ता हर जीव के हर प्राणी के अन्तस् में परिव्याप्त होकर प्रकृति से बनी हुई जड़-मूर्तियों को चैतन्य प्रदान कर रही हैं, उन्हें जीवित जाग्रत् बना रही हैं। जो कुछ हम हैं, उसी की वजह से, उसी चेतना से भरे हुए होने के कारण, हम उस विश्वात्म चेतना से हर समय ओत-प्रोत हैं, जुड़े हैं, युक्त हैं। हमारे अन्दर जो कुछ जीवन चैतन्य, स्पन्दन है क्योंकि वह इसलिए है क्योंकि विश्वात्म-चेतना, परात्पर चेतना, हर समय हमारे अन्दर बह रही है। मेरी अपनी अन्त:चेतना इस चैतन्य धारा की एक लहर है उसी प्रकार वह चैतन्य धारा, विश्वात्म चेतना आपके अन्दर भी उसी तरह बह रही है। आपकी अन्त:-चेतना भी उस विराट् चेतना धारा की एक लहर है। आप भी उससे उसी प्रकार संयुक्त हैं जिस प्रकार एक लहर सागर से। जल का अगाध, महान् अनन्त महासागर बह रहा है। सीमाओं के अन्दर भी सीमाओं के बाहर भी। उसमें अनन्त लहरें उठ रही हैं। उसी जल से बने हुए बर्फ खण्ड उसमें तैर रहे हैं और गल कर उसी में मिल रहे हैं, यही स्थिति हमारी है। हम उसी चेतना सागर में बह रहे हैं। उसी में गल रहे हैं, एक क्षण के लिए भी उससे अलग नहीं हैं।

अपनी आत्म चेतना को देशकाल निरपेक्ष असीम परात्पर चेतना धारा में

स्थित देखना और इस निरन्तर प्रवाहमान चेतना धारा को अपने अन्दर बहते हुए समझना देखना ही ज्ञान है और इस ज्ञान का अपनी सम्पूर्ण चेतना, भावना और क्रिया-शीलता के साथ एहसास करना योग है।

All in one and one in all
यो माँ पश्यति सर्वत्र सर्वं चमयि पश्यति

व्यक्त के पीछे अव्यक्त है। सृष्टि के पीछे अव्यक्त सृष्टि कर्ता है। यह अव्यक्त व्यक्त का नियामक है। परात्परा चेतना शक्ति (The transcendental spirit) सृष्टि के निर्माण और कल्याण के लिए विश्वात्म चेतना बनकर बह रही है। सृष्टि के अणु परमाणु से लेकर बड़े बड़े ग्रहों तक में प्रविष्ट होकर बह रही है (The Universal Spirit) हमारी अपनी चेतना (consciousness) हर स्तर पर विश्वात्म चेतना से सम्बद्ध है (cosmic consciousness) वह विराट् अप्रमेय चेतना धारा हमारे शरीरों में घुसकर हमें यन्त्र बनाकर अपने संकल्प, अपनी इच्छायें अपनी योजनायें पूरी कर रही है अपना (grand design) महान् संकल्प पूरा कर रही है। हमारे द्वारा जब यह एहसास कदम-कदम पर होने लगता है तब योग युक्त अवस्था आरम्भ होती है।

योग-युक्त-युक्तात्मा कुर्वन्नपिनलिप्यते

जो अपरिसीम चेतन-धारा विश्व के अणु परमाणु से लेकर मानव के अन्तस् तक में अबाध बह रही है सब इसी चेतना धारा में "सूत्रे मणिगणा इव" पिरोये हुए हैं। जो व्यक्त परिवर्तनशील परिणामी जगत् के पीछे अव्यक्त अपरिणामी बनी खड़ी है वह परात्पर चेतना निरीह (inert) और निर्जीव नहीं है। वह एक सामर्थ्यवान्, सजीव तथा पूर्ण व्यक्तित्व से सम्पन्न है। उसका अपना तेज अपना पराक्रम, अपनी जीवित जागृत् "मैं" है (ego)। Magnified human की तरह अनन्त गुना शक्तिशाली, एक मानव की तरह जिसके कि तेज और पराक्रम की थाह नहीं—और साथ ही एक समन्वित मानव-तुल्य व्यक्ति से सम्पन्न यह परम-शक्ति अपना एक अहं रखती है—अपना संकल्प, अपनी इच्छा शक्ति (Divine will) अपना मन (cosmic mind) उसी प्रकार जिस प्रकार इस शरीर में मेरा मन और मेरा मैं है।

अव्यक्त सृष्टि कर्ता का एक दिव्य उद्देश्य भी है (Divine purpose) और वह उद्देश्य है सृष्टि को सुन्दर से सुन्दर तर बनाना। सृजन सत्य तो है ही उसे

शिवं सुन्दरं बनाना, सुन्दर से सुन्दरदर, सुन्दरतम बनाना। परमेश्वरीय इच्छा परात्पर शक्ति का संकल्प और क्या हो सकता है कि सृष्टि पहले से अधिक खूबसूरत और कल्याणमयी हो जाय।

परमेश्वर के महान उद्देश्य को ही मैंने गीता में 'यज्ञ' का नाम दिया था और ईश्वरीय संकल्प अथवा इच्छा शक्ति (Divine will) को अधियज्ञ नाम। परात्पर चित्शक्ति का दिव्य संकल्प (Divine wiil) ही इस दिव्य उद्देश्य (ego) को पूरा कर रही है। तब हम किस बात का अहं करें। जिस काम को हम अपना किया हुआ समझते थे, ज्ञान के आलोक में देखने पर वही काम परात्पर ब्रह्म से उत्पन्न होता हुआ दिखाई दे रहा है। परात्परा दैवी शक्ति (Divine will) हमारे मूत शरीरों में प्रविष्ट होकर हाथ पैरों, अंगों के द्वारा अपनी इच्छायें, अपने उद्देश्य पूरे कर रही है। जो काम हमारे द्वारा सम्पादित होते दिख रहे हैं वे भी दैवी शक्ति (Divine will) से प्रेरित हो रहे हैं। और परात्पर के विशेष प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए हो रहे हैं। ब्रह्मणि आधाय कर्माणि। सारे कर्म ब्रह्म से उत्पन्न हो रहे हैं। ब्रह्म में लय हो रहे हैं। ब्रह्म की इच्छा-शक्ति ही कर्मो को प्रेरित कर रही है। ब्रह्म के ही प्रयोजन सिद्ध हो रहे हैं।

योग युक्तात्मा के हृदय में जब यह अनुभूति गहरी होने लगती है तब वह संसार के सभी कार्यो को करता हुआ भी उनके संस्कारों से चिपकता नहीं हैं।

The out look of Yogi
योग युक्तात्मा का मानसिक दृष्टिकोण

योगी का ध्येय "योग सन्यस्त कर्माणि" होना है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह कार्य करना छोड़कर आलसी और निकम्मा हो जाये। अकर्मण्य बन जाये। सन्यास एक मानसिक दृष्टि-कोण है। (Mental attitude) योगी कर्म के दैवी उद्‌गम को समझने का (Divine orientation) प्रयास करता है। मनुष्य का हर संकल्प, हर इच्छा ईश्वर के विश्वात्मा के मन में उत्पन्न होती है। इच्छा पहले विश्वात्मा की चेतना में उत्पन्न होती है। विश्वात्म-चेतना उस इच्छा को हमारी चेतना में जगाती है। हम उस संकल्प को प्राप्त कर विवश से होकर कार्य-जगत् में इसे उतारने लगते हैं। जो इच्छायें हमारी सी दिखती हैं, वे अमूर्त-विराट् की ही इच्छाओं का मूर्त-रूप हैं। जब हम अपनी इच्छाओं को विराट् के अव्यक्त-अमूर्त मन में स्फुरित होते हुए देखना सीख लेंगे, तब हमें दिखाई देगा कि विराट् चेतना (Universal conscious ness) इस विश्व को अपने एक महान् संकल्प

के द्वारा चला रही है। इस महान् योजना (Grand design) में सृष्टि के महान चक्र में हम सब प्राणी अपनी जगह पर दैवी संकल्प (Divine will) से रखे हुए हैं। इस Grand design में, प्रवर्तित सृष्टि चक्र में सभी कुछ ईश्वर के संकल्प के अनुसार (Divine will) चल रहा है। हमारी छोटी-छोटी इच्छायें ईश्वर के मन में (cosmic mind) उत्पन्न हैं। अपनी जैविक चेतना (individual consciousness) को विश्वात्म चेतना में लय कर अनन्त कर्मधारा में बहने का सुख अपार है। हमारे अपने न कर्म हैं, न कर्म-संकल्प। सब कुछ विराट् की चेतना में स्फुरित हो रहे हैं, उसी में लय हो रहे हैं। जो इस अनन्त असीम जीवन-धारा में बह रहा है वह आनन्द ले रहा है। वह योग युक्तात्मा है जो इस विश्व-चेतना की धारा से परे हटकर अपनी राह बनाना चाहता है, सृष्टि की कर्म धारा से बचना चाहता है। वह अयुक्त है, अनाड़ी है। अपने को कर्ता समझने का अहंकार उस समय अपने आप हट जायेगा जब हम समझने लगेंगे कि—

'ईश्वर की इच्छा, हर शरीर मूर्ति में प्रविष्ट होकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर रही है। जीव ईश्वर के रोबोट (Robots) हैं। सब कुछ ईश्वर के दैवी संकल्प (Grand design) के अनुसार हो रहा है। तब हम अपने को कर्मों का कर्ता समझने का अहंकार भूल जायेंगे और कर्मों के संस्कार में हमें तंग न कर सकेंगे।

सर्व-श्रेष्ठ योगी

जब योगी की यह अनुभूति गहरी होने लगेगी कि एक ही विश्व-चेतना है और वह सम्पूर्ण विश्व में, सम्पूर्ण प्राणी-मूर्तियों में प्रविष्ट होकर काय कर रही है तो उसका समस्त जीवन दर्शन और कार्य-पद्धति ही बदल जायेगी। जब उसे भीतर से यह एहसास होने लगेगा कि सृष्टि नियंन्ता (जो एक चैतन्य शक्ति है) की भागवती इच्छा (Divine will) ही समस्त शरीरों के माध्यम से अपनी पूर्ति कर रही है तो उसका दृष्टिकोण ही बदल जायेगा। वह इच्छाओं के स्रोत और कर्म की प्रेरणाओं को समझ जायेगा। वह जान जायेगा कि जो कुछ इच्छायें, उसके मन में उत्पन्न हो रही हैं वे वास्तव में भगवान् के मन में उत्पन्न हों रही हैं और वे उसी अंश तक सम्पूर्ण होंगी जिस अंश तक ईश्वरीय इच्छा या Divine will उन्हें चाहेगी। संकल्प मनुष्य के मन में नहीं भगवान के मन में उदित हो रहे हैं और उनकी पूर्ति के साधन प्राणियों के शरीर बन रहे हैं। सृष्टि कर्ता का एक महान् सत् संकल्प है। सृष्टि चक्र उस सत् संकल्प का अनुसरण कर रहा है। सभी प्राणी उस Grand design में फिट हैं। हर विग्रह भागवती संकल्प से (Divine will) अनुप्राणित होकर कार्य कर रहा है। विश्वात्म-चेतना हमारी

आत्म चेतना से युक्त होकर अपने प्रयोजन सिद्ध कर रही है। यहाँ कर्तापन के अहंकार का स्थान नहीं है। एक अनन्त शक्तिशाली ईश्वरीय धारा बह रही है। जीव उस धारा में हाथ-पैर मारते हुए अनन्त की ओर बढ़ रहे हैं। किधर बढ़ रहे हैं यह सिर्फ विश्वात्मा का मन (Cosmic mind) ही जान सकता है। मनुष्य के मन को इस cosmic मन के साथ मिल कर कार्य करने के अलावा दूसरा चारा नहीं है।

सृष्टि का यह अन्यतम रहस्य जब योगी के ज्ञान-चक्षुओं के सामने खुलने लगता है तब उसकी कार्य-पद्धति बदल जाती है। वह ज्ञानोत्तर कर्म करने लगता है। हर मनुष्य के सामने उसकी परिस्थिति कुछ तात्कालिक कर्तव्य लाती है। योगी उन कर्तव्यों से भागेगा नहीं। बल्कि वह उन कर्तव्यों के करने में प्राण-पाण से, अपनी सम्पूर्ण शक्ति, निष्ठा, सम्पूर्ण चेतना, सम्पूर्ण मनोयोग से जुट जायेगा। उस कार्य की योजना बनाने और कार्यान्वित करने में वह कुछ भी उठा न रखेगा। अन्तःकरण के जो तीनों उपकरण उसे प्रकृति से मिले हैं -

ज्ञान-शक्ति (Power of preception) भावना शक्ति (Feeling), इच्छा-शक्ति (Willing) इन तीनों का उपयोग वह अपने कार्य में करेगा।

क्या कर्तव्य है क्या अकर्तव्य इसका निश्चय भी उसका विवेक करता चलेगा। यदि कोई कर्म सृष्टि को विकृत करने वाला है और प्राणियों को कष्ट पहुंचाने वाला है तो त्याज्य है। विकर्म है। काम यदि करने वाले को ही सुख देने वाला है तो उस neutral कार्य की कोई अहमियत नहीं है। वह सिर्फ अकर्म है, ठीक है मनुष्य खाना भी खायेगा, सोयेगा भी, पाखाने भी जायेगा। इसमें खास बात क्या है। कर्तव्य वास्तव में वे कर्म हैं जो सृष्टि के लिये श्रेयस्कर हैं, कल्याणकारी हैं, पौज़िटिव (Positive) हैं। कल्याणकारी कर्म ही भगवान् की (Divine will) भगवती इच्छा में पैदा हुए हो सकते हैं।

अब जब सभी कर्तव्य ब्रह्म से उत्पन्न हो रहे हैं। (ब्रह्मणि आध्याय कर्माणि) भागवती इच्छा शक्ति (Divine will) ही उन कार्यों की प्रेरणा मानव–अन्तःकरण में उत्पन्न कर रही है। स्वयं भगवान की आत्म-चेतना हमारे अन्तःकरणों में बैठ कर अपने प्रयोजनों की सिद्ध कर रही है। सृष्टि कर्त्ता के सृष्टि चक्र में कर्म उसी की इच्छानुसार हो रहे हैं तो इस ज्ञान को प्राप्त करके एक योगी एक विशेष प्रकार के कर्म-फल को प्राप्त करने की ज़िद नहीं करेगा, आग्रह नहीं करेगा वह जानता है उसके शरीर के माध्यम से जो शक्ति कर्म कर रही है वही उसकी नियति भी है।

वही निश्चित करेगी कि किस कर्म का फल क्या प्राप्त होना है, किस माध्यम से होना है, किस मात्रा में होना है क्योंकि अन्ततोगत्वा प्रयोजन तो उसी भागवती इच्छा Divine will) के सिद्ध होने हैं। अपनी आत्म-चेतना (Individual consciousness) को विश्व-चेतना का (Universal consciousness) ही एक अंश जान कर वह बड़े ही निश्चित भाव से बड़े ही समाहित चित्त से प्रसन्नता पूर्वक अपने कर्मों को करता चलेगा। फल देने वाली महाशक्ति उसके अपने अनुमानों से बहुत ऊपर जाकर महाफल दे सकती है और यदि उसके दूरगामी महान् चक्र में (Grand design) मे यदि वह फिट नहीं बैठ रहा तो तत्काल उसका फल कुछ भी नहीं दे सकती है। सब कुछ जानकर योगी उसके ऊपर निर्भर रहकर आनन्द मग्न स्थिति में ही रहेगा।

वर्तमान युग की एक घटना की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करता हूं। बंगला देश में शेख मुजीब ने चुनाव के समय जो मागें रखी थीं, छः सूत्री वे मामूली ही थीं। थोड़ी सी स्वतन्त्रता, आर्थिक शोषण से मुक्ति, सेना में अपना हिस्सा आदि। उनके प्रयासों के फलस्वरूप बगला देश की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होना, महाशक्ति मी ओर से एक ऐसा इनाम था जो उनकी कल्पना से भी परे था। यह उनके सत्कार्यो का सहस्त्रगुना फल था। फिर सृष्टिकर्ता महाशक्ति के महान चक्र (Grand design) में उसका सत्पुरुषों पर प्रगाढ़ प्यार देखिये। जो व्यक्ति पकड़ा जाकर कठोर कारावास में अपने दिन गिन रहा था. कोर्ट-मार्शल जिसे देशद्रोही और गद्दार सिद्ध कर फाँसी की सजा दे चुका था—जिसके लिए पाकिस्तान की जेल में कब्र खुद चुकी थी, वह व्यक्ति अचानक जेल से राष्ट्रपति भवन में लाया जाता है, उसका उचित सत्कार होता है, पाकिस्तान एयर फोर्स का प्लेन उसे लन्दन पहुंचाता है, रायल एयर फोर्स के प्लेन पर वह भारत आता है, करोड़ों जनता उसका अभिनन्दन करती है "स्वतन्त्र बंगलादेश" का शुभ समाचार उसके कानों में अमृत ध्वनि की तरह आता है, मिलिटरी वैण्ड पर उसे अपने नवोदित राष्ट्र का जयगान, राष्ट्रगान सुनने को मिलता है। महाशक्ति उसे बंगला देश का प्रधान मंत्रित्व तश्तरी में रखकर प्रस्तुत करती है, भेंट देती है। यह सब उनकी कल्पना से बहुत-बहुत परे था। बहुत आगे था। यह इसलिए हुआ कि फल देने वाली महाशक्ति बहुत उदार है, बहुत महान है, उसका भण्डार अक्षय है, वह कंजूस नहीं है। जब वह मनुष्यों के नेक इरादों का, नेक कर्मों का फल देने पर तुल जाती है तो हज़ारों गुना फल देती है। इसलिए कभी यह आग्रह नहीं करना चाहिये कि इस कर्म का इतना और इस समय यही फल मिले। कम से कम योगी ऐसा नहीं करेगा।

कभी-कभी अच्छे कर्म भी सृष्टि कर्ता की (Grand designe) महान्

व्यवस्था में फिट न बैठने के कारण तत्काल फल नहीं लाते। गांधी जी भारत का विभाजन नहीं चाहते थे लेकिन विभाजन हुआ क्योंकि सृष्टि-कर्ता के संकल्प में यह नियत था। उनमें भी दूरगामी कल्याण था जो कि उस समय समझ में नहीं आ रहा था। वह महाशक्ति अनन्त विश्व-चेतना, अतीत और भविष्य में जो अचूक दृष्टि रखती है वह सीमित मस्तिष्क वाले मानव नहीं रख सकते। इसलिए योगी विश्व-प्रभु की उदाराशयता तथा विस्तृत दृष्टि पर विश्वास कर विशेष प्रकार के फल (नतीजे) का आग्रह नहीं करेगा।

जब कर्म ईश्वरीय संकल्प (Divine wlll) में उदय हो रहे हैं और भगवान के प्रयोजन-सिद्धि में परिसमाप्त हो रहे हैं तो फिर कर्तापन का अहंकार क्यों होगा ? सब कुछ विश्व-चेतना हमारे अन्त:करणों व शरीरों के माध्यम से सम्पादित कर रही है। जब इस एहसास के साथ कर्तव्य, कर्म किये जायेंगे तब कर्मों के संस्कार कैसे बनेंगे। योगी सब तरह से विश्व-प्रभु की विश्वात्म-चेतना पर निर्भर रहकर कार्य करेगा, और कर्म का नहीं बल्कि फल के आग्रह का सन्यास करेगा। योग युक्त व्यक्ति ही असली सन्यासी होगा और परम शान्ति का अधिकारी।

हर इच्छा पहले भगवान के मन में उत्पन्न होती है। इच्छा उसी तरह पूर्ण होगी जैसी भगवान की इच्छा होगी। चाहे जितना कठिन कार्य आरम्भ में दिखाई दे यदि उस कार्य का संकल्प भगवान के मन में है तो विचित्र तरीकों से वह पूर्ण होगा और होकर रहेगा। साथ ही यदि कोई कार्य भगवान के संकल्प में नहीं है तो बहुत विधि-विधान से करने पर भी दसियों अड़चनें आयेंगी और कार्य पूरा न हो सकेगा। जिस अंश तक कार्य पूर्ण और सफल हो रहा है, समझना चाहिए उसी अंश तक उसमें भगवान की इच्छा या संकल्प मिला हुआ था।

यह सब बातें समझ कर योगी जय या पराजय को, सफलता या असफलता को हँस कर लेगा। विनोदपूर्ण ढंग से लेगा। पराजय पर मूड नहीं बिगड़ेगा। पर अकड़ेगा नहीं, घमण्ड नहीं करेगा, इतरायेगा नहीं। जानता है कर्म डिवाइन विल से, ईश्वरीय इच्छा से, (ईश्वरीय शक्ति से (Divine power) हो रहे हैं, ईश्वरीय प्रयोजन (Divine purpose) सिद्ध हो रहा है। जो कुछ फल सामने आ जाय सब शिरोधार्य है। महाशक्ति को हर तरह से नमस्कार है। इस तरह योगी के जीवन में फल-निरपेक्षता उत्पन्न होती है, कर्मों का सन्यास नहीं। सन्यास एक Mental attitude है, मानसिक दृष्टिकोण है जो कर्म करते समय योगी की मानसिक पृष्ठ-भूमि में रहता है। (Back ground) कर्म-फल को अपने मन माने

रूप में प्राप्त करने का आग्रह न रख कर कर्म करने वाला व्यक्ति ही वास्तविक सन्यासी है। 'न हि असन्यस्त कर्माणि योगी भवति कश्चन।"

मैंने अर्जुन को इसी प्रकार का योगी बनने का आदेश दिया था।

योगः कर्मसु कौशलम्

योग कर्मों में कुशलता, चमत्कार उत्पन्न करता है।

वह किस प्रकार ?

जब Divine awareness के साथ, ईश्वरीय एहसास के साथ, "ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा" ईश्वर समर्पित मन के साथ जब कार्य किये जायेंगे तो कर्मों में एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न होगा। मनुष्य के अन्तःकरण में चिन्तन की, भावना की, इच्छा की, शक्तियां हैं जिन्हें आप आधुनिक भाषा में Thinking, feeling and willing की Capacity कहते हैं। मनुष्य जब अपनी सम्पूर्ण चेतना को, सम्पूर्ण इच्छा-शक्ति को अपनी सम्पूर्ण भावना से रंग कर एक कर्म में समाहित हो जायगा तब उसे कर्म-समाधि लग जायेगी और उसके माध्यम से विश्वात्म चेतना कार्य करने लगेगी। तब वह कार्य सम्पादित होंगे जिनकी कि साधारण अवस्था में मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। आकाश और पृथ्वी के अगणित रहस्य खुलेंगे। अनन्त क्रिया-शक्ति का विस्तार होगा। विश्वात्म चेतना (Cosmic spirit) को अपने माध्यम से कार्य करने देकर और सम्पूर्ण मनोयोग (concentration) के साथ काम में जुट कर योगी कामों में आश्चर्यजनक कौशल प्राप्त कर सकता है।

इस क्रम में यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है कि आप ईश्वर को मानें और विशेष विधियों से उसकी पूजा करें। आप उसे देख नहीं सकते क्योंकि वह अपने ही स्वरचित नियमों के अनुसार अदृश्य है। वह अपनी पूजायें नहीं माँगता—हाँ इतना निश्चय रूप से चाहता है कि जो लियाक़त और क्षमतायें उसने आपको दी हैं आप उनका पूर्ण सदुपयोग करें और अपने जीवन में सत्कर्मों की पराकाष्ठा पर पहुंचायें। इससे आपके जीवन में अकल्पित चमत्कार उत्पन्न होगा—सम्पूर्ण मनोयोग और निष्ठा के साथ सत्कर्मों को पराकाष्ठा पर पहुँचाने वाला मनस्वी व्यक्ति ही सच्चा योगी है क्योंकि वह इस तरह करके विश्वात्मा के सृष्टि चक्र में जम कर भाग ले रहा है। संक्षेप में यदि आप जानना ही चाहते हैं तो सुनें, "सत्कर्मों को पराकाष्ठा पर पहुँचाना ही कर्मयोग है। इससे ईश्वर की कृपा आपके प्रति आकर्षित होती है और आप एक शान्त और प्रसन्न-आत्मा के रूप में जीवन में कृतार्थता का अनुभव करेंगे। यही ब्राह्मी स्थिति है।

योगी का व्यवहार

विश्व-चेतना (Cosmic spirit) के प्रवाह को अपने अन्दर और अपनी आत्म-चेतना को विश्वात्म-चेतना के अन्दर देखकर योगी का व्यवहार चराचर जगत की ओर प्रेममय हो उठता है जब एक ही चेतना (Cosmic spirit) विभिन्न रूपों और ढांचों में स्थित होकर कार्य कर रही है तब योगी किससे द्वेष मानेगा। किसका अकल्याण करेगा? सब अपने हैं। वह स्वयं ही सब है। दूसरों के प्रति मैत्री, मुदिता (दूसरों को प्रसन्न करना) करुणा उसके व्यवहार में हर समय प्रकट होगी। अपने स्वार्थों के प्रति वह उपेक्षा, एक प्रकार की लापरवाही रखेगा। यह उसका शील होगा। अपनी चेतना का प्रसार कर दूसरों में, (भूतों में सब प्राणियों में) अपनी चेतना को देखना और विश्व चेतना को जो सब प्राणियों को अपने अन्दर समेट रही है, अपने अन्दर देखना योग की सर्वश्रेष्ठ अवस्था है। इसे मैं युक्ततम अवस्था कहता हूं। युक्ततम व्यक्ति की आन्तरिक अवस्था का निर्णय उसके व्यवहार से होगा। जबकि उसके कार्यों में अन्य जीवों के प्रति मैत्री, मुदिता, करुणा, समता छलकेगी और साथ ही अपने स्वार्थों के प्रति उसमें लापरवाही और उपेक्षा रहेगी।

The best among Yogis
युक्ततम

योगस्थ व्यक्ति का आन्तरिक भाव आराधना का (Worshipful), समर्पण का, निरंहकार का होगा। विश्व-प्रभु का कृपा प्रसाद पाकर उसके मन में उल्लास के बादल उमड़ेंगे। उसकी आत्म-चेतना (Consicousness) विश्व-प्रभु की विश्वात्म-चेतना (Cosmic consciousness) का एक अंश है, अत: वह हर समय उनकी गोद में बैठकर कार्य कर रहा है, न तो उसका अनिष्ट हो सकता है, न गलत रास्ते अपनाये जायेंगे। गलतियाँ होने पर विराट् चेतना मीठी झिड़की के साथ उन गलतियों को सुधार देगी। विश्व-प्रभु की मिठी झिड़कियों को वह सहर्ष सिर झुकाकर ग्रहण करेगा क्योंकि वह जानता है अपने इस छोटे से मानव जीवन में उससे जो कुछ सत्कर्म जो कुछ सृष्टि कर्म, जो कुछ लोक कल्याण के कर्म सम्पादित हो रहे हैं उन्हें परात्पर विश्व प्रभु सहस्र अनन्त नेत्रों से देख रहे हैं और परात्पर प्रभु कोई पराये नहीं हैं। हम उनके अन्दर वे हमारे अन्दर हैं विश्वात्म-चेतना परात्पर सत्ता के रूप में वे अखिल विश्व के समस्त लोकों के स्वामी हैं। वे मेरे हैं, प्रियतम हैं, उनसे बढ़कर मेरा कोई हितैषी नहीं। युक्ततम अवस्था में योगी इस

अनुभूति को प्राप्त कर शान्त हो जाता है। सकी हर प्रकार की घबराहट मिट जाती है। विश्वात्म-शक्ति (Cosmic spirit) अपने माध्यम से काम करते पाकर उसकी शक्तियों, क्षमताओं की सीमा नहीं रहती। वह योगेश्वर हो जाता है। प्रकृति की समस्त शक्तियाँ सेविका की तरह उसका अनुगमन करने लगती हैं। वह इन क्षमताओं को फिर ब्रह्मार्पण कर देता है। ब्रह्म या Divine Being फिर उसकी झोली भर देता है। वह फिर अपनी क्षमता को ब्रह्मार्पण कर देता है। ऐसे चक्र में उसकी आत्म-चेतना विश्व-चेतना के सागर में सदा के लिये लय हो जाती है और उसका शरीर सृष्टि का कल्याण करने के लिए भगवान द्वारा प्रयुक्त एक यांत्रिक पुतला (Robot) बन कर रह जाता है। उसके बुद्धि मन विवेक आदि के द्वारा विश्व-चेतना काम करने लगती है।

यह है वह स्थिति जिसे मैंने "सर्व भूतात्म-भूतात्मा कहकर गीता में निर्दिष्ट किया है। उस अव्यक्त, अक्षर, अनिर्देश्य, महासत्ता के प्रति योगी के भाव शुष्क न होंगे। बल्कि अनुराग से पूर्ण होंगे। प्रेमिका जिस प्रकार प्रेमी के ध्यान में डूबी रहती है, रस या प्रेम की समाधि में रहती है वैसे ही योगी का मन अव्यक्त, अक्षर, अनिर्देश्य विश्व-प्रभु के प्यार से सराबोर रहेगा। ऐसे मद्‌गतेनान्तरात्मा योगी को मैं श्रेष्ठतम योगी समझता हूँ।

शरीर की तोड़-मरोड़ के व्यायामों से भिन्न इस योग को आप समझिये, मनन कीजिये।

———

जगत् का नियमन करने वाली तीन व्यवस्थायें

THE TRIPLE ORDERS OF THE UNIVERSE

(1) अधिभूत – वस्तु व्यवस्था The material order
(2) अध्यात्म – आत्मा की व्यवस्था The spiritual order
(3) अधियज्ञ – नीति व्यवस्था The moral order

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावो अध्यात्ममुच्यते
भूत भावोद्भव करो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।
अधिभूतं क्षरो भावो पुरुषश्चाधि दैवतम्
अधियज्ञो अहमेवात्र देहे देह-भृतांवर ।।

(1) The Material order अर्थात् अधिभूत—वस्तु व्यवस्था—वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत भूत जगत् भौतिक नियमों से चल रहा है ।

(2) The spiritual order आत्मा की व्यवस्था—वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत आत्मायें (individual souls) परात्पर अक्षर ब्रह्म (Total reservoir of spirit) से निकल रही है और मैटर से बने हुए शरीरों में प्रवेश कर रही है और उनमें स्थित हो रही है ।

(3) नीति व्यवस्था या The moral order—यह वह विधान अथवा व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत ऐसे कर्म सम्पन्न हो रहे हैं जो एक तरफ सृष्टि की या हमारे परिवेश को अधिक मनोरम तथा मंगलमय बना रहे हैं दूसरी तरफ उन कर्मों से बहिरात्मायें, अन्तरात्मा, और स्वयं विश्वात्मा प्रसन्न हो रहे हों । उनका कल्याण हो रहा हो । संसार

का मंगल करने वाले कार्यों को ही मैंने यज्ञ कहा है। जिस व्यवस्था के अन्तर्गत विश्व का, सृष्टि का और उसमें रहने वाले जीवों का कल्याण सम्पादन हो रहा है उसी को मैंने अधियज्ञ नाम दिया था। आज की भाषा में अधियज्ञ यानी Moral order.

अधिभूत
Material order

जगत् की वस्तु-व्यवस्था—

यह देखकर मुझे बहुत अफसोस होता है कि लोग अपने या अपने किसी आत्मीय के बीमार होने पर संतों और साधुओं को जाकर परेशान करते हैं ? स्त्रियाँ विशेषकर। "महाराज मेरे पति को लकवा लग गया है अब बस आपका ही आसरा है। मेरे भलां रिश्तेदार को क्षय रोग हो गया है आपकी इनायत हो जाय तो ठीक हो जायेगा। "मेरी कमर में लगातार दर्द रहता है महाराज जी। और महाराज जी त्वरित चमत्कार दिखाते हुए एक दृष्टि रोगी की दर्द वाली जगह पर डालते हैं और अपने कर कमलों से स्पर्श करते हुए कहते हैं, "बस दर्द यह भागा, वह भागा। उनके सम्मोहन—पाश में फँसा रोगी भी कह उठता है, हाँ २० से १९ है, १९ से १८ है। तब स्वामी जी फरमाते हैं—"बाकी दर्द घर जाकर ठीक हो जावेगा" और घर जाकर वह दर्द ज्यों का त्यों। जितने आदमी बाबा जी के पास अपनी बीमारियों को ठीक कराने आते हैं उनमें से पचास प्रतिशत तो अपने आप ही प्राकृतिक नियमों के अनुसार ठीक होने वाले होते हैं, उनके ठीक होने पर बाबा जी की वाह-वाही हो जाती है। और जो ठीक नहीं हो पाते हैं वे भी बाबा जी की महानता में अविश्वास नहीं कर पाते हैं लेकिन बाबा जी का उपदेश सुनकर चुप रह जाते हैं। प्रारब्ध कठिन और अटल था—देखो फलाँ आदमी का दर्द मैंने योगबल से हटाया तो वह प्रारब्ध मुझे भुगतना पड़ा। चेले लोग भी मुड़ियाँ हिलाकर कहते हैं हाँ महाराज ने बड़ा कष्ट सहा उस सेवक के लिए।

इसके विपरीत कुछ व्यक्ति जब यह देखते हैं कि अमुक ऋषि अथवा महात्मा बीमार भी पड़ते हैं और उन्हें डाक्टर की जरूरत भी पड़ती है. उनका इलाज भी होता है तो उन्हें बड़ा कोफ्त होता है और उन्हें उन महात्मा के महात्मा होने पर शंका होने लगती है कि ये कैसे महात्मा हैं जो अपना इलाज एक डाक्टर से कराते हैं। कहाँ गये इनके चमत्कार। उनकी श्रद्धा सत्तर प्रतिशत घट जाती है। वे उस महात्मा की ओर बड़ी तिरस्कार की भावना रखने लगते हैं। मानों डाक्टर को

बुलाना और इलाज कराना कोई गुनाह है। मानों संतत्व का इलाज कराने से कोई सम्बन्ध है।

मेरी श्रीमती जी (जाम्बवती) भी यही भूल कर रही थीं। पुत्र रोग से पीड़ित हैं आप उसे अरण्य-वासी ऋषियों के पास ले जा रही हैं। मैंने उन्हें समझाया—'देवी जी बच्चे का शरीर अस्वस्थ है, आप उसे चिकित्सक के पास ले जाइये जिसने शरीर-विज्ञान का अध्ययन किया है। वही ठीक समझ सकेगा। आपके बच्चे के शरीर में कहाँ और क्या तकलीफ है और तदनुसार औषधियां का प्रयोग कर आपके बच्चे को स्वस्थ कर सकेगा। आप महात्माओं के पास जाकर खामखा उनका समय नष्ट करेंगी और उन्हें असमन्जस में डालेंगी और अपने बच्चे को खतरे में। जो शरीर-विज्ञान के ज्ञाता हैं उन्हीं के पास शरीर का इलाज होगा क्योंकि यह बात भूत-सृष्टि (Material world) से सम्बन्ध रखती है। शरीर का स्वस्थीकरण और रोग मुक्ति चिकित्सक के द्वारा ही सम्भव है हाँ यदि आपको अन्तःकरण शुद्धि का मार्ग चाहिये तो आप सन्तों के पास जाइये वे आपको अन्तःकरण शुद्धि का मार्ग दिखायेंगे। यदि आपको सन्तों से कुछ मांगना ही है तो केवल उनका कृपा-प्रसाद मांगिये। शरीर के रोगादि तो प्रारब्ध के अन्तर्गत ही ठीक होंगे। फिर भी आपका मन प्रार्थना-युक्ति होना चाहिये, वह यहाँ भी हो सकता है।"

सौभाग्य से मेरी बात श्रीमती जी के पल्ले पड़ गई। उन्होंने बीमार बच्चे को अरण्यवासी ऋषि के पास ले जाने का विचार त्याग दिया और चिकित्सक को यहीं बुलाकर बच्चे को दिखाया। उचित औषधि की व्यवस्था होने पर कुछ दिनों में ही बच्चा स्वस्थ हो गया।

यदि कोई सन्त या महात्मा स्वयं भी बीमार पड़ जाते हैं तो यह कोई अनहोनी बात नहीं है। शरीर यन्त्र मैटर से बना हुआ है इसमें खराबियाँ भी आ सकती हैं और शरीर-विज्ञान के जानकार चिकित्सकों के द्वारा ठीक भी की जा सकती हैं। हमें इसी वजह से सन्त महात्माओं का तिरस्कार करने का अधिकार नही हैं कि वे क्यों बीमार पड़े क्यों उन्होंने अपना इलाज कराया। आपको पता होना चाहिये कि हर व्यक्ति का शरीर पदार्थ (Matter) से बना हुआ है और मैटर अधिभूत के अटल नियमों से संचालित है। वह भूत-व्यवस्था के नियमों (Laws of material order) के अन्तर्गत ही ठीक होगा। कोई चमत्कारी बाबा अधिभूत के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता।

चमत्कार की कथा

यों तो आप ने बहुत से चमत्कारी बाबा लोगों की कथा सुनी होगी, फलां

बाबा पानी पर खड़े होकर चल लेते हैं, आकाश में उड़ लेते हैं। मरे को जीवित कर देते हैं, मैं आप से पूछता हूँ, क्या बड़े से बड़ा हठ योगी ४४० वोल्ट की बिजली का नंगा तार छूकर दिखा सकता है ? रण भूमि में मरे हुए व्यक्ति की लाश के टुकड़ों को जोड़कर जीवित कर सकता है ? नर्मदा के प्रपात की तेज धारा के ऊपर खड़ा होकर चल सकता है ? कदापि नहीं। बड़े से बड़ा योगी भी भूत-सृष्टि के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। जो कहते हैं हम ऐसा कर सकते हैं वे अपने आपको सरासर धोखा दे रहे हैं। मैं आपको कुछ ऐसी बातें समझाता हूँ जिससे आप इन थोथे चमत्कारों में न आयें। मनुष्य को ज्ञान दृष्टि रखनी चाहिये। संसार में ज्ञान के समान पवित्र कोई वस्तु नहीं है। न हि ज्ञानेन सदृशं पावित्र मिह विन्दते। अंध श्रद्धा मनुष्य को कांटों में घसीट सकती है। जाने कितने बीमार व्यक्तियों ने देहाती ओझाओं के चिमटों से पिट-पिटकर जान गँवाई होगी क्योंकि ये वज्र मूर्ख ओझा लोग शरीर की बीमारी कोभूत-बाधा समझ कर रोगी को चिमटों से मारते और आग से जलाते रहे और बेचारे रोगी ने अपना दम तोड़ दिया।

अधिभूत
या
Material order

जहाँ तक दृश्य-जगत् दिखाई दे रहा है, वह मैटर या भूत-द्रव्य या (पदार्थ) का बना है और मैटर जिस व्यवस्था के अन्तर्गत काम कर रहा है, भौतिक सृष्टि जिस विधान के अनुसार चल रही है उसे मैटीरियल आर्डर या अधिभूत कहते हैं। सृष्टि के छोटे से छोटे अणु, परमाणु से लेकर बड़े-ग्रह सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी तक समस्त प्राणियों के शरीर, पेड़-पौधे, नदी, समुद्र, आग, धातु, विद्युत, सागर, महासागर, पर्वत, वायु, गैसें सभी मैटर या भूत-द्रव्य के बने हैं। यह मैटर व्यक्त और स्थूल भी हो सकता हैं और अव्यक्त और सूक्ष्म भी हो सकता है। मैटर के बने हुए सभी पदार्थ भूत सृष्टि के नियमों का पालन कर रहे हैं। सूक्ष्म निरीक्षण से पता चलता है यावच्चन्द्र दिवाकरौ समस्त सृष्टि-जगत् के ऊपर अव्यक्त भौतिक नियम (Laws of matter) लागू हो रहे हैं।

भौतिक सृष्टि के नियम
या
Laws of matter

भौतिक सृष्टि के नियम अपौरुषेय हैं अर्थात् मनुष्य के बनाये हुए नहीं हैं।

आकाश में बादल कैसे बन कर आते हैं। कैसे वक्त पर धुमड़-घुमड़ कर ठीक वक्त पर पानी बरसाते हैं, यह आप ने देखा होगा लेकिन यह व्यवस्था मनुष्य की बनाई हुई नहीं है। आकाश में पृथ्वी व अन्य ग्रह सौरमण्डल में किस प्रकार घूमते रहते हैं, कैसे रोज़ व रोज़ सुबह होती है, शाम आती है रात होती है फिर सुबह आती है यह चक्र मनुष्य का बनाया हुआ नहीं है। यह अपोरुषेय है अर्थात् मानवीय क्षमता और शक्ति से परे, अति मानवीय शक्तियों की प्रक्रिया है। आग के सम्पर्क में आने पर क्यों चीज़ें जलती हैं ? यह मनुष्य के बनाये हुए नियम नहीं हैं। यह अपोरुषेय विधान है। सम्पूर्ण सृष्टि जिसे इस विराट्-पुरुष का शरीर कह सकते हैं, मैटर या भूत की बनी है और भूत-सृष्टि अपने ही अकाट्य और अटल अपोरुषेय नियमों के अनुसार चल रही है। इसी में उसका कल्याण है।

विद्युत, प्रकाश, चुम्बक और गैसें, जल, वायु सब अपने भौतिक नियमों के अनुसार चल रहे हैं और वे नियम ऐसे अटल हैं कि उनमें बूंद मात्र भी इधर-उधर होने की गूंजाइश नहीं है। विश्वात्मा के कठोर आदेश ही भूत जगत् में (Word of matter) अटल नियमों के रूप में प्रकट हो रहे हैं। साथ ही भूत सृष्टि में नियमित स्पन्दन है (Rhythmic movements) जिससे सम्पूर्ण सृष्टि में गति-व्यवस्था और अनुशासन है। यदि ये नियम न हों तो जरा से उलट-फेर से सृष्टि में गड़बड़ी और प्रलय मच सकती है। यदि विशेष नियमों से बंधी हुई पृथ्वी कायदे से सूर्य के चारों ओर न घूमे तो रात-दिन न हों। काल की गति रुक जाय प्राणियों का जीवन कठिन हो जाय। महासागर आदि नियमानुशासन छोड़कर तट का अतिक्रमण करने लगे तो फिर तटवर्ती शहरों का क्या होगा। विद्युत् के अपने नियम हैं। प्रकाश के अपने नियम हैं। जल, वाष्प और बादलों के अपने नियम हैं सारी सृष्टि इन्हीं नियमों के अनुशासन में बंधी है बल्कि कहना चाहिए कि भौतिक-सृष्टि के नियमों में ही विश्वात्मा का अनुशासन छिपा है और जब तक ये नियम अटल रूप से सृष्टि का संचालन कर रहे हैं तब तक सृष्टि-व्यवस्था भंग नहीं हो सकती। प्राणियों के शरीर, हम मनुष्यों के शरीर भी भूत-सृष्टि के अन्तर्गत काम कर रहे हैं। भूत-सृष्टि के अन्तर्गत ही हमारे शरीरों के कोषाणुओं का क्षय और पुनर्निमाण चल रहा है (Meta bolism) भूत-सृष्टि के नियमों के अनुसार ही प्राणवायु फुसफुसों में जा रही है। जीवन प्रदान कर रही है। भूत-सृष्टि के नियमों के अनुसार शरीर के अन्दर श्वास प्रवास, अन्न का पाचन, रक्त, रस आदि बन रहा हैं। `हमारे शरीर पूर्णतया भूत-सृष्टि के (Material order) के अन्तर्गत है। तो जिस व्यवस्था के अन्तर्गत, समस्त सृष्टि जिस उपकरण की बनी है, यानी मैटर की, यानी भूत द्रव्य की, वह मैटर जिस व्यवस्था से नियमित और सुचालित होकर विश्व में प्रयुक्त हो रहा है

उसे हम Material order या अधिभूत कहते हैं। अधिभूत के नियमों के अन्तर्गत दृश्य-जगत् (Manifest world) का निर्माण हो रहा है, अणु-परमाणु से लेकर प्राणियों के शरीर तथा ग्रह-नक्षत्र तक अधिभूत के नियमों से ही निर्मित हुए हैं और संचालित हो रहे हैं।

अधिभूत के अटल नियम और विज्ञान
या
The inexorable laws of nature and science

सम्पूर्ण सृष्टि को (Creation) मैं विराट् कहता हूं। जिन अटल नियमों के द्वारा सृष्टि संचालित हो रही है वे विराट् के धर्म हैं। अधिभूत नियम अपौरुषेय हैं (immaculate), अटल हैं, अकाट्य हैं। उनके अन्दर नियमित स्पन्दन है साथ ही सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह भी मालूम पड़ता है कि वे अविवेकपूर्ण (Irrational) नहीं है मानों किसी अदृश्य मस्तिष्क ने बड़ी योजना और सूझ-बूझ के साथ इन नियमों को लागू किया है। भूत सृष्टि (Meterial order) के अन्दर कहीं भी अव्यवस्था नहीं है। भौतिक नियमों (Laws of matter) के अनुसार ही पृथ्वी में बीज पड़ने पर अंकुर फूटता है, पौधा पनपता है, महावृक्ष बनता है और फिर उन फलों में वही बीज उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार यह सृष्टि-चक्र चल रहा है। अभिभूत की व्यवस्था के अन्तर्गत ही मानव भ्रूण का माता के गर्भ में निर्माण होता है। अधिभूत के नियमों के अनुसार ही शिशु पैदा होता है, साँस लेता है, बढ़ता है, भोजन करता है, बूढ़ा होता है, जरा-जीर्ण होकर क्षय होता है। अधिभूत की व्यवस्था के अन्दर ही सूर्य अन्तरिक्ष में समस्त सौर-मण्डल के ग्रहों को साथ लेकर घूम रहा है, प्रकाश का वितरण कर रहा है गुरुत्वाकर्षण का कानून (Law of gravitation) जिसके द्वारा पृथ्वी हर चीज़ को अपनी ओर खींचती है, और हर ग्रह एक दूसरे को अपनी ओर खींच रहा है व समस्त ग्रह बैलेन्स होकर अन्तरिक्ष में घूम रहे हैं, ये सब विराट् के धर्म अथवा अधिभूत के नियम हैं।

विराट् के धर्म
या
Laws of creation

ये इतने नियमित हैं कि विज्ञान के द्वारा, गणित के द्वारा इनकी प्रक्रियाओं का पूरा पता लगाया जा सकता है। कौन ग्रह कितनी देर में कितनी दूर घूम जायेगा इसकी गणना की जा सकती है। समस्त विज्ञान भूत-सृष्टि में अलक्ष्य तरीकों

से कार्य करते हुये, व्यापक नियमों को ध्यान से देखकर (Observe) उनका सूक्ष्म निरीक्षण कर निरूपित हुआ है। प्रकृति के सूक्ष्म-जगत् में छिपे हुए जो अपौरुषेय नियम हैं उन्हें समझा गया है। वे सूक्ष्म रूप से कार्य करते हुए दृश्य-जगत् को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं यही विज्ञान के विषय हैं।

टैक्नोलोजी आफ साइन्स

विज्ञान प्रकृति के अपौरुषेय नियमों को बदल नहीं सकता लेकिन इन नियमों को समझकर मानव हित में प्रयुक्त कर सकता है यहीं टेक्नोलोजी विकसित हो रही है। प्रकृति में विद्युत् है विज्ञान इस विद्युत् को सयमित (Harness) कर बड़े पैमाने पर बड़ी-बड़ी फैक्टरियां और मशीनें चला रहा है। कूलर, फ्रिज आदि बना रहा है। अन्तरिक्ष और पृथ्वी के चारों ओर के वायुमण्डल का अध्ययन हो रहा है, विमान और अन्तरिक्ष-यान बन रहे हैं। जलयान, सागर के वक्ष पर अजेय बन कर डोल रहे हैं। शरीर यंत्र के शुद्धीकरण के लिए हर प्रकार की औषधियाँ बन रही हैं। तो मैटीरीयल आर्डर का अध्ययन कर उसमें निहित अटल नियमों को निकाल कर उनको मानव हित में प्रयुक्त करना ही विज्ञान का विषय है ? इस प्रकार अपौरुषेय को पौरुषेय बनाया जा रहा है, पुरुष के द्वारा क्योंकि मानव स्वयं पुरुष है (Spirit) परात्पर का चिदंश, इसलिए जहाँ परात्पर विराट् प्रकृति को कण्ट्रोल कर सकता है। वहाँ नन्हा सा परात्पर अथवा उसका चिदंश मानव अपने परिवेश की प्रकृति को कन्ट्रोल कर सकता है।

अव्यक्त-प्रकृति
या
The un manifest nature

अव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या

भून-जगत् जो कि दृश्य है manifest है उसके पीछे एक अव्यक्त अदृश्य सत्ता है जो कि इस दृश्य जगत् का कारण स्रोत है। प्रकृति भी अपने मूल रूप में निराकार है। प्रकृति की एक वह अवस्था भी होती है जिसे हम Universe potentate कहते हैं। वह अवस्था जिसमें चीजें दिखाई नहीं देतीं किन्तु जिसमें से दिखाई देने वाली चीजें निकलने बाली हैं। जैसे बीज में पेड़ दिखाई नहीं दे रहा है किन्तु पेड़ का सम्पूर्ण ढाँचा उसमें अन्तर्निहित है और उसी बीज से निकलेगा जिसमें कि वह अव्याकृता स्थिति (unmanifest) में छिपा है। अव्याकृता प्रकृति unmanifest nature के पीछे महाशून्य, कुछ नहीं की अवस्था है। (great void)

यह महाशून्य भी जिस परमसत्ता से निकल रहा है उसे मैं परात्पर कहता हूं (the transcendental existence) इस महाशून्य से ही समस्त मूल प्रकृति आकारहीन और आकार सहित प्रकट हो रही है।

अध्यात्म-धारा

The purest spirit या शुद्ध चेतना

चिन्मयी महाशक्ति इस महाशून्य से भी परे है वह निराकार मूल प्रकृति और कुछ नहीं, की अवस्था वाले महाशून्य से भी सूक्ष्म है, परे है। यह परात्पर महासत्ता, शुद्ध स्पिरिट या आत्मा देश-कालातीत अवस्था में अनन्त अव्यय अक्षय स्रोत की तरह निरंतर बह रही है। इस चिन्मयी (Spirit) महासत्ता का एक अंश देशकाल सापेक्ष होकर विश्व के रूप में परिणत हो रहा है। बल्कि कहना चाहिये यही विशुद्ध चेतना (pure spirit) महाशून्य को अपने में लय करती हुई पहले मूल प्रकृति या अव्याकृता प्रकृति बनती है (Unmanifest reality) फिर दृश्य जगत् (manifest world) के रूप में परिणत हो रही है वस्तु-जगत् का रूप धारण कर रही है। चेतना की इस शुद्ध धारा को हम आत्मा अथवा Spirit कहते हैं।

आत्मा के इस अनन्त क्षेत्र को जिसका एक छोर अनन्त युगों के इस ओर (अनिर्दिष्ट-भूत) है और दूसरा छोर अनन्त काल की दूसरी ओर (भविष्य) है जो समस्त-युगों, समस्त काल, समस्त (Space) आकाश में गुंथी हुई है। इस अनन्त चेतना को ही मैंने अध्यात्म का नाम दिया है।

जब प्रकृति ही इतनी रहस्य मय इतनी असीम है तब उसके भी सूक्ष्म रूप की कारण यह अव्यक्त अनादि अपरिसीम चेतना (Spirit) कितनी विराट् कितनी अज्ञेय (beyond comprehension) होगी। बेचारे वैदिक ऋषि नेति नेति कह हार गये। तो क्या गलत था।

आत्मा या पुरुष तत्व

The spiritual order या आत्माओं की व्यवस्था

अभी तक मैं आप का ध्यान सृष्टि के एक ही रूप की ओर आकर्षित कर पाया हूं और वह है मैटर या वस्तु या पदार्थ। सम्पूर्ण सृष्टि, या जिसे मैंने विराट् का नाम दिया है वह phenomenon मैटर या पदार्थ का बना है और मैटर

भूत-सृष्टि के विशेष अदृश्य नियमों से संचालित हो रहा है। ये नियम विश्व के मैटीरियल आर्डर अथवा वस्तु-व्यवस्था के अन्तर्गत काम कर रहे हैं।

लेकिन सृष्टि में सिर्फ मैटर ही नहीं है। जहाँ जहाँ जीवन के चिन्ह हैं जहाँ जहाँ जीवन प्रकट हो रहा है वहाँ मैटर से एक तत्त्व और मिल रहा है जिसे हम आत्मा, पुरुष या Spirit कहते हैं।

जीवित सृष्टि Matter और Spirit पुरुष और प्रकृति, आत्मा और पदार्थ के संयोग से प्रकट हो रही है।

खाली मैटर अपने आप में जीवित होने की क्षमता नहीं रखता। पत्थर का टुकड़ा पत्थर का टुकड़ा ही रहेगा। वह कीड़ा बनकर रेंगेगा नहीं। पदार्थ तत्व (प्रकृति) में जीवन उत्पन्न हो रहा है, आत्म तत्व पुरुष तत्व या (Spirit) के प्रवेश से। अव्यक्त, सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा प्रकृति निर्मित पदार्थीय (material) शरीरों में प्रवेश कर रही है और जड़ शरीरों में जीवन का विकास हो रहा है। चाहे मनुष्य की देह हो या भैंस की, कुत्ते की अथवा गाय की, सब जगह यही फारमूला दृष्टिगोचर हो रहा है।

प्रकृति निर्मित शरीर में चेतना प्रवाहित हो रही है आत्मा के प्रवेश के कारण। आत्मा और प्रकृति के संयुक्त (Matter and Spirit) होकर कार्य करने का फल है जीवन का निर्माण। यह हँसते खिलखिलाते शिशु, ये चहकते हुए मनमोहक पक्षी, ये विविध-पशु, सबके सब प्रकृति-निर्मित शरीरों में आत्मा देवी के पदार्पण का शुभ फल है। प्रकृति और आत्मा के मिलन के फलस्वरूप ही एक विशेष प्रकार के चैतन्य का निर्माण होता है (Consciousness), जीवन का विकास होता है। जीवित प्राणी श्वास-प्रश्वास लेता है, हिलता-डुलता है, बड़ा होता है, अपने जैसे ही बच्चे उत्पन्न करता है। जीवित प्राणी में मैटर और स्पिरिट पुरुष और प्रकृति के मिलन के फलस्वरूप एक विशेष प्रकार की चेतना का (consciousness) निर्माण होता है जिसे आजकल की भाषा में मन कहते हैं। यह चेतना (Spirit) अपने को एक विशेष शरीर में सीमित, एक विशिष्ट जीव समझती है अहं या ego से मंडित होती है और प्रखरतम रूप में चेतना ही बुद्धि बन जाती है जो प्राणियों में चिन्तन की शक्ति तथा निर्णय लेने की क्षमता उत्पन्न करती है।

अब समझना है यह भूत सृष्टि और इसमें अठखेलियाँ करती हुई अव्यक्त आत्मा कहाँ से आई जिसके आगमन का आभास जीवन्त चेतना के द्वारा मिलता है।

आत्मा या पुरुष तत्व को समझने के लिये—हमें सनातन अव्यक्त—परम आत्मा की शरण में जाना होगा जो आत्माओं के अक्षय स्रोत, अव्यय चेतना के महा पारावार हैं।

सनातन-अव्यक्त (अल्लाह) या परात्पर
The eternally unmanifest

मूल सृष्टि जो कि दृश्य है, Manifest उससे भी परे Unmanifest अव्यक्त, अव्याकृता (निराकारा) मूल प्रकृति है। यह मूल प्रकृति महाशून्य है, कुछ भी नहीं, इसमें आकार नहीं है फिर भी सारे आकार इस महाशून्य से उत्पन्न होने वाले हैं। मूल प्रकृति (Universe potentate) महाशून्य तथा अव्याकृता (formless) है फिर भी सारा विश्व, सारे रूप (forms) इसी मूल प्रकृति से निकलकर आकार ग्रहण कर रहे हैं।

वह अव्याकृता मूल प्रकृति (formless unmanifest nature) भी जिस अक्षय अव्यय चित् पारावार से (Unlimited ocean of spirit) निकल रही है वह आत्मा की सूक्ष्माति सूक्ष्म अवस्था चेतना को अव्यक्त से भी अव्यक्त अवस्था है अव्यक्त-सनातन। विश्व के पार अपनी परिपूर्ण अवस्था में, आनन्द की, अस्तित्व की लहरों में अठखेलियां कर रहे हैं यह सनातन अव्यक्त देव उनके एक अंग में सैकड़ों व्यक्त विश्व बन रहे हैं और लय हो रहे हैं फिर भी वे सदा सर्वदा अव्यक्त हैं और रहेंगे। साथ ही इनके असीम महार्णव के फव्वारों से अनन्त अगणित आत्मायें बूंदों की तरह छिटक रही हैं फिर भी वे अव्यय (unending) हैं। सनातन अव्यक्त आत्माओं के महापारावार हैं। अनन्त-अनन्त आत्मायें उनमें से निकल कर प्रकृति-निर्मित विग्रहों में प्रवेश कर रही हैं, जीवित प्राणियों का निर्माण कर रही हैं। अनन्त-अनन्त युगों से ऐसा होता आया है और अनन्त-अनन्त युगों तक ऐसा होता रहेगा लेकिन ये सनातन अव्यक्त देव हमेशा-हमेशा परिपूर्णतम अव्यय तथा अक्षय हैं।

उनकी अव्यक्तता की कल्पना नहीं की जा सकती है।

सदा-सदा अपरिणामी, सम्पूर्ण सृष्टि को अपने चिदंशों द्वारा (Drops of spirit) जीवन प्रदान करने वाले चेतना के अव्यय भण्डार सनातन अव्यक्त परम आत्मा (The eternally unmainfest the supreme being) को मैं प्रणाम करता हूं। वे मेरे परम-धाम हैं मैं उनमें स्थित हूं साथ ही वे सबकी परम गति भी

हैं। वे नेगेटिव सत्ता नहीं हैं। वे सत् हैं। पोज़िटिव हैं। वे प्राणवान् हैं, निष्प्राण नहीं हैं। वे महान् शक्तियों के आगार हैं निष्क्रिय, निरीह नहीं हैं। असीम चेतना के महासागर में उनका असीम अहम् ego है। चित्शक्ति (Spirit) के इस अनन्त महार्णव को जिसमें ज्ञान की, आनन्द की, अमरता की, शक्ति की, पराक्रम की अनन्त लहरें उठती रहती हैं, यह चेतना सागर जो अपने में मस्त हैं तथा जितनी भी शक्तियों, क्षमताओं की कल्पना कर सकते हैं उनका मूल स्रोत है, अक्षय अव्यय महार्णव है, यह चेतना का महासागर (Ocean of spirit) स्वयं चित्शक्ति (Spirit) होने के कारण एक आत्मा के रूप में कार्य करता है। ये एक व्यक्ति, एक देवता यह एक person है और Supreme person पुरुषोत्तम है। यह निष्क्रिय अंध प्रकृति शक्ति नहीं है बल्कि चेतना का यह सागर मानव तुल्य अहं और बुद्धि-गरिमा से मंडित है, मनुष्य से अगणित गुणा उसका एक Sureme ego भी है, अहंकार। इस चेतना सागर की Divine will है। चेतना के, क्षमताओं के असीम अक्षय महासागर को ही हम भगवान् कहते हैं, अक्षर-ब्रह्म या Absolute कहते हैं।

एकांशेन स्थितो जगत्

यह चिन्मय अधिदेव Lord of Spirit संसार की कल्पित अकल्पित हर व्यवस्था से परे है।

बुद्ध का महाशून्य उनसे उत्पन्न हो रहा है, वैज्ञानिकों का Universe potentate उनसे उत्पन्न हो रहा है। व्यक्त प्रकृति से पूर्व की अव्यक्त, अव्याकृता प्रकृति भी उन्हीं से उत्पन्न हुई है।

मैं इन चिन्मय देव को (Lord of Universe) प्रणाम करता हूँ। साथ ही मैं आप को बताना चाहता हूँ मैं स्वयं ही चिन्मय देव हूँ।

एक बहुत बड़ा दावा में आपके सामने कर गया हूँ। मैं स्वयं ही अव्यक्त अनादि चिन्मय देव हूँ। शायद अपको बड़ा अजीब सा लगे। एक बात और आपके कानों में डाल रहा हूँ। आप भी स्वयं वही चिन्मय अधिदेव है। आप भी अनादि हैं, आप भी अनन्त हैं, आप भी अव्यक्त हैं। जो व्यक्त है वह तो आप का शरीर है।

आप महानदी गंगा के उदाहरण से समझिये। गंगा की धारा में उनके जलमय शरीर में गंगा देवी कह सकती हैं—"मैं स्वयं विद्यमान हूँ।"

गंगा से नहरें निकल रही हैं—उन नहरों में गंगाजल चल रहा है। नहरें गांवों और कस्बों के बीच से बहती हुई जा रही हैं। गंगा कह सकती है—"मैं इन नहरों में हूँ। नहर भी कह सकती है। मैं ही गंगा हूँ।" इन नहरों में से और छोटी-छोटी गूल निकाली गई हैं। छोटे-छोटे नाले-नालियाँ निकाले गये हैं। ये नालियां गांवों के किसानों के छोटे-छोटे खेतों तक पहुँच रही हैं। पवित्र गंगाजल, गंगा से निकल कर गगा नहरों में बहता हुआ, इन गूलों में पहुंच रहा है। गूलों में से खेतों की नालियों में अब इस नाली में पवित्र गंगाजल बह रहा है। गंगा देवी कह सकती हैं, "मैं इस नाली में विद्यमान हूँ। नाली स्वयं कह सकती है—"मैं ही गंगा हूँ'।

इस युग के प्रखर चिन्तकों-दार्शनिकों, मैं तुम्हें सम्बोधित कर रहा हूँ। तुम स्वयं अपने में चिन्मय, परात्पर अधिदेव हो। तुम्हीं Lord of spirit हो। मैं भी वहीं हूँ।

खेत की नाली को यह मालूम है मैं स्वयं गंगा हूं।

विश्व की आत्म-व्यवस्था

आत्मा की महान् व्यवस्था

THE SPIRITUAL ORDER

या

अध्यात्म-धारा

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्ट धा"
अपरेयमित स्त्वन्यां प्रकृति विद्धि मे पराम्
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत"

"गीता"

अध्यात्म-धारा

आत्मा की अनन्त चिन्मयी धारा चार शाखाओं में बह रही है।

(१) परात्पर सनातन अव्यक्त।
(२) विश्वात्मा।
(३) अन्तर्यामी आत्मा।
(४) बहिर्यामी आत्मा।

तो सनातन अव्यक्त परात्पर प्रभु के चिन्मय संकल्प से और उनके दिव्य उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये जिस व्यवस्था के अन्तर्गत अनन्त-अनन्त आत्मायें सनातन अव्यक्त (Spirit) के महान पारावार से निकल कर प्रकृति-निर्मित शरीरों में प्रवेश कर जीवित व्यक्तियों के रूप में परिणत हो रही है, वह व्यवस्था अध्यात्म कहलाती है। यानी आत्मा की व्यवस्था। The spiritual order या विश्व की आत्म-व्यवस्था।

जिस प्रकार भूत-सृष्टि में अपौरुषेय नियम चल रहे हैं उसी प्रकार आत्मायें भी विश्व की आत्म-व्यवस्था (Spiritual order) से संचालित हो रही हैं। पूरा तन्त्र (System) परात्पर द्वारा नियोजित और सङ्कल्पित है। विशिष्ट विधान के अनुसार ही सनातन अव्यक्त चिद् पारावार (Ocean of spirit) से चिदश आत्मायें निकल रही हैं। विधान के अनुसार ही वे भूत-जगत् में भौतिक शरीरों में प्रविष्ट हो रही हैं। विधान के अनुसार ही भौतिक देह में आत्मा के प्रवेश से जीवन उत्पन्न होता है। मनश्चेतना बनती है (Consciousness)। जिस प्रकार मैटीरियल आर्डर के नियम अटल और अकाट्य है और अकाट्य है उसी प्रकार स्पिरिचुएल आर्डर के नियम भी अपनी जगह पर अटल हैं। उनमें कोई छेड़-छाड़ नहीं कर सकता। स्पिरिचुएल आर्डर आत्म-व्यवस्था) के नियमों के अनुसार ही जब तक आत्मा शरीर में रहती है तभी तक शरीर संगठित रहता है। आत्मा के शरीर छोड़ते ही शरीर विगठित हो जाता है। चाहे शरीर खण्डित हो तब आत्मा शरीर छोड़े, या शरीर का विखण्डन बाद में हो आत्मा पहले शरीर छोड़े बात एक ही है। शरीर एक मंदिर है, आत्मा इस मन्दिर में प्रकट देवता है। शरीर स्थूल उपकरणों कैमिकल्स का बना है किन्तु उसमें आया हुआ देवता अव्यक्त है (Unmanifest)। और उसी की वजह से सारा जड़ शरीर जगमगा रहा है। देवता मन्दिर में तभी तक रहेगा जब तक मन्दिर उसे अच्छा लगेगा और जब तक देवता उसमें है तभी तक वह मंदिर है वरना मिट्टी का ढेर है। मन्दिर खण्डित हो जायेगा तो भी देवता वहां उठ

जायेगा। यही बात शरीर और आत्मा के सम्बन्ध में है। यदि शरीर खण्डित हो गया तो भी आत्मा नहीं रहेगी और आत्मा स्वयं उस शरीर में सुखी नहीं है तो भी छोड़ देगी उस शरीर को। अध्यात्म या स्पिरिचुएल आर्डर का यह भी नियम है कि आनन्द-भोगी आत्मा दुख पाने के लिए खण्डित शरीर में नहीं रहेगी।

विश्वात्मा या विराट् चेतना
The cosmic spitit

वैराज: पुरुष: पर: योऽसौ स भगवान् धारणा श्रय: ।

अनन्त चेतना के महार्णव (The transcendental spirit) की उस धारा को हम समझने की कोशिश करेंगे जो दृश्य जगत् (Phenomenon) के रूप में परिणत हो रही है। परात्पर ब्रह्म अक्षर (Absolute) और अव्यक्त है (Unmanifest) किन्तु उसमें व्यक्त होने वाली शक्ति निहित है या हम कह सकते हैं उनके अन्दर से विविधि प्रकार की शक्तियाँ या क्षमतायें या प्रकृतियाँ हैं।

(१) एक क्षमता के द्वारा चिन्मय परात्पर (The transcendental spirit) अपने को परिवर्तित करता हुआ भूत-जगत् के तत्वों के रूप प्रकट करता है। भूत-जगत् के तत्व यानी मैटर अपने सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपो में। पृथ्वी, जल, अग्नि, गैस, विद्युत् आदि बनते है। इन सब तत्वों के संगठन स्वरूप विश्व का विराट शरीर बनता है (Cosmos) क्योंकि विश्व, पदार्थ अथवा मैटर बना है। विश्व में रहने वाले समस्त प्राणियों के शरीर भी मैटर अथवा पदार्थ से ही बने हैं। इस तरह अपनी एक क्षमता के द्वारा परात्परा चित्शक्ति (Pure spirit) इस विश्व के मैटर या पदार्थ के रूप में परिणत हो रही है।

अपनी दूसरी क्षमता के द्वारा वही स्पिरिट अथवा आत्मा ज्यों की त्यों मैटर से बने हुये विराट् के शरीर में (Phenomenon) प्रवेश कर जाती है। स्पिरिट अथवा पदार्थ जीवन्त हो जाता है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड में (Cosmos) में एक ही शुद्ध चिन्मयी आत्मा (Cosmic spirit) परिव्याप्त हो जाती है।

यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे

अध्यात्म का सबसे बड़ा फारमूला यह है कि इस सम्पूर्ण विश्व में (Cosmos) जो कि मैटर (पदार्थ) का बना है, या हम कह सकते हैं कि जिसकी पदार्थ मयी देह है विराट की इस देह मे परात्पर सनातन-अव्यक्त से परम पुरुष से (The supreme being) निकलती हुई एक ही चेतना-धारा परिव्याप्त है।

यदि सृष्टि की एक मैटर या पदार्थ की बनी हुई देह है तो इस सारे असीम ब्रह्मांड में एक ही आत्मा व्याप्त है। जिसे मैंने 'विश्वात्मा' का नाम दिया है। आज की भाषा में Cosmic spirit।

विराट् में एक ही आत्म तत्व है इसलिए सारे ब्रह्मांड में एक ही विराट् चेतना भी। (Cosmic consciousness) परिव्याप्त है विश्वात्मा का एक ही मन (Cosmic mind) है और एक ही हृदय है और एक ही जीवित व्यक्तित्व स्पन्दित है।

विराट् के पदार्थ-मय शरीर में (Material body of the phenomenon) व्याप्त (Spirit) चैतन्य को विराट् चेतना कहते हैं। सुनने में शायद आश्चर्यजनक लगे किन्तु यह एक तथ्य है कि विराट् विश्व में एक जीवन-शील व्यक्तित्व स्पन्दित हो रहा है जैसे एक प्राणी शरीर में एक जीवित व्यक्तित्व होता है। विराट् विश्व भी आपके समान अपने विराट् व्यक्तित्व से मण्डित है, जीवित है। सृष्टि के छोटे से छोटे अणु-परमाणु से लेकर बड़े से बड़े ग्रह-नक्षत्र तक विश्वात्मा के आकाशीय शरीर में स्थित है। विश्वात्मा सृष्टि के हर अंग के स्पन्द का अनुभव करते हैं। जैसे आप अपनी देह के हर अंग का स्पन्दन का अनुभव करते हैं। पैर के अँगूठे में चोट लगे तो आप दर्द का अनुभव करते हैं, आँख में चोट लगे तो भी आप दर्द महसूस करते हैं इसी प्रकार यह विश्वदेव विश्वात्मा, यह विश्वमयी जगदम्बा अपनी देह के अणु-परमाणु तक में अपनी चेतन-शक्ति का प्रसार किये है। विश्वमयी जगदम्बा अपने सृष्टि-शरीर के अंग-प्रत्यंग का नियमन करती हैं जिस प्रकार एक हद तक आप अपने शरीर के अंगों को हिलाते-डुलाते कण्ट्रोल करते हैं। विश्वात्मा की विश्वमयी देह में सब कुछ पिरोया हुआ है, समाया हुआ है। चराचर जगत् इन्हीं विश्वात्मा की पदार्थीय आकाशीय देह में समाया हुआ है और इन विश्वात्मा की आत्मा इस संपूर्ण ब्रह्मांडीय शरीर में व्याप्त है, जैसे आप की आत्मा आपके शरीर में।

विश्व में बसने वाली इस महान् व्यापक आत्मा को मैं विश्वात्मा, विश्वदेव या स्त्रीलिंग प्रयोग कर विश्वमयी जगदम्बा कह कर पुकारता हूं। ये विश्वदेव बड़े खिलाडी हैं, बड़े सौंदर्य-प्रिय हैं। बड़े पराक्रमी हैं "अमित-विक्रम स्त्वं पुरुषो मतो मे" पृथ्वी और आकाश के सम्पूर्ण अन्तराल में ये स्वयं विराजमान हैं। प्रकृति के सौंदर्य में सूर्योदय से चमचमाते हुए ओस कणों में, बादलों में, चांदनी में, फूलों में उनकी उन्मुक्त हँसी बिखर रही है। ये पेड़, ये पोधे, ये पर्वत, नदियाँ उनके स्थूल शरीर हैं। आप भगवान् के दर्शन करना चाहते हैं? वे एकदम आपके सामने ही

खड़े हैं आप उन्हें क्यों नहीं पहचानते। वे आपके एकदम पास और अनन्त दूरियों तक फैले हुए हैं। वे सर्व-भूताधिवास हैं। सारे जीव उनके अन्दर बसे हुए हैं। उनकी विराट चेतना सब जीवों के अन्दर-बाहर प्रवाहित हो रही है। सूत्रे मणिगणा इव, जैसे सूर्य से अनन्त-अनन्त किरण निकल रही हैं। इसी प्रकार परात्पर (The unlimited reservoir of spirit) की चिद्धारा (Spiritual current) विश्व रूप में प्रवाहित होकर विश्वात्मा कहलाई फिर अनन्त-अनन्त जीवों में अलग-अलग पहुंच रही है। हर जीव में विश्वात्मा या परात्पर की एक किरण है। हर प्राणी परम आत्मा। (Supreme being) सनातन अव्यक्त की एक-एक किरण पाकर आलोकित हो रहा है।

अन्तर्यामी

चिति की (Spirit) धारा परात्पर से निकल कर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गई और विश्व शरीर में एक आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। विश्व-शरीर (matter immanent in the creation) में व्याप्त आत्मा को मैंने विश्वात्मा का नाम दिया था, विश्वमयी जगदम्बा के नाम से पुकारा था फिर विश्वात्मा से चिति या (Spirit) की छोटी-छोटी अनन्त किरणें निकलीं और हर जीव के अन्दर प्रविष्ट हो गईं। इस प्रकार परात्पर से लेकर हर जीव तक यह आत्म-धारा (Spiritual stream) चल रही है।

परम आत्मा (Supreme Spirit) का जो चिदंश (spark) मेरे अन्दर आया हुआ है वही मेरा अन्तर्यामी प्रभु है।

यह चेतना धारा मेरे अन्दर दो प्रकार से कार्य कर रही है। अन्तश्चेतना के रूप में वह ज्यों की त्यों परमात्मा का निर्मल अंश है—जो न तो कभी संसार के सम्पर्क से गन्दा होने वाला है, न परिवर्तित होने वाला है अन्तश्चेतना अपने अन्दर विराट-प्रभु के सारे गुण लिये हुये है। यह अपरिवर्तन-शील, अप्रमेय-आत्मा मेरे शरीर का देवता है। यह साक्षी के रूप में मेरे शरीर में रहता है, सदा ही इसका सम्पर्क विश्वात्मा से है और विश्वात्मा के माध्यम से यह सनातन-अव्यक्त से सम्बन्धित है। इसी चेतना का कुछ अंश बाहर प्रकृति की ओर निकला है और दैवी माया (divine will) द्वारा विस्मृति का पर्दा पड़ा हुआ चिदंश आज की भाषा में बहिश्चेतना कहलायेगा। यानी जो बाहरी जगत् का प्रतिबिम्ब ले रही है, वह चेतना वहिश्चेतना है। वहिश्चेतना ही जीव चेतना है। मैटर के सम्पर्क में आत्मा जब आती है—यानी आत्मा का चिदंश (Spark of pure spirit) तथा मैटर जब

सम्पर्क में आते हैं तब आत्मा में स्पिरिट (Spirit) चेतना की तरंगे उठने लगती है। शुद्ध आत्मा का कुछ अंश तरंगायित चेतना (consciousness) के रूप में परिणत हो जाता है। बहिश्चेतना इन्द्रियों के द्वारा संसार के घात-प्रतिघात (sensations) ग्रहण करती है तथा अन्तःकरण के पर्दे पर (Consciousness) पड़ते हुये प्रतिबिम्बों (reflections) को अनुभव कर दुखी या सुखी होती है। चेतना की तरगों में समाई हुई आत्मा अपने शुद्ध रूप को भूली रहती है व अपने को एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप मे समझ कर सीमित चेतना के रूप में कार्य करती है।

बहिरात्माएँ अथवा बहिर्यामी

जैसे मेरे शरीर में मेरी अन्तरात्मा अपने दोनों रूप में है एक अन्तश्चेतना शुद्ध निर्मल चेतना, दूसरा संसार के प्रतिबिम्वों से आक्रान्त बहिश्चेतना है वैसे ही दूसरे प्राणियों के शरीरों में भी वैसे ही विश्व-चेतना की किरण दोनों रूपों में स्थित है। दूसरों का अन्तर्यामी, उसे मैं बहिर्यामी कहूंगा। इस प्रकार विश्व-चेतना अपनी एक किरण के द्वारा या कह लीजिये एक लहर के रूप में सब शरीरों में विद्यमान् है।

एक छोटे से छोटे कीड़े की देह से लेकर परात्पर तक, अध्यात्म जगत का (spiritual order) यह ताना बाना, wiring system बना हुआ है। इसी व्यवस्था को समझ कबीर बोले थे—

"चींटी की पख बेजर बाजे सो भी साहब सुनता है"।

अन्तश्चेतना तथा बहिश्चेतना

अन्तर्यामी तथा जीव

अध्यात्म-व्यवस्था (Spiritual order) बड़े कायदे से काम करती हैं। एक ही प्राणी में आत्मा (Spirit) दो प्रकार से काम करती है। अन्तर्यामी के रूप में वह शुद्ध चेतन परम आत्मा है लेकिन मौन है। वह संसार के सम्पर्क में नहीं है बल्कि विश्वात्मा के सम्पर्क में है। वह बराबर जीव चेतना के कर्मों तथा उद्देश्यों (Motives) को चुपचाप देखती रहती है और विश्वात्मा को सब कुछ बताकर जीव का प्रारब्ध और परिवेश (माहौल) बनाने में भाग लेती है। अन्तर्यामी के माध्यम से जीव की छोटी से छोटी हरकत भी विश्वात्मा की नजर में रहती है। कहीं भी चूक नहीं पड़ती और तदनुकूल प्रारब्ध बनता चलता है।

अन्तर की आवाज (inner voice) के रूप में अन्तर्यामी जीव-चेतना का पथ निर्देश करता है, गलत कामों को करने से रोकता है। कभी स्पष्ट संकेत भी देता है कभी स्पष्ट आवाज़ों में उसका आदेश सुनाई पड़ता है। जीव देह में विराजमान वह स्वयं भगवान् है और जीव-देह में इसलिये स्थित है क्योंकि उसके वहाँ रहे बिना जीव-चेतना का अस्तित्व नामुमकिन है। वह अपरिणामी व संसार से अप्रभावित है।

जीव-चेतना, चेतना का बाहर की ओर उभड़ा हुआ (Projected) रूप है। मैंने पहले भी बताया था कि जब शुद्ध चेतन आत्मा मैटर के अन्दर प्रवेश करती है तो शुद्ध आत्मा का कुछ अंश, चेतना के रूप में (consciousness) परिणत हो जाता है। मानव शरीर में वह मानवीय चेतना (human consciousness) कहलाती है। इसके तीन उपकरण या aspects हैं। मन, बुद्धि और अहं। अन्तःकरण या आत्मा का Psychic mechanism जिसके द्वारा आत्मा संसार से सम्पर्क स्थापित करती है।

The Psychic mechanism of the spirit, How the spirit operates in the world. यानी

अन्तःकरण

अन्तःकरण का यन्त्र Psychic mechanism संसारोन्मुख आत्मा के लिये अत्यन्त आवश्यक है। अन्तःकरण आत्मा का संसार की ओर प्रसारण projection है। इसी के माध्यम से शुद्ध चेतना या आत्मा संसार या प्रकृति से सम्पर्क स्थापित करती है। अन्तःकरण के यंन्त्र Psychic mechanism के विना आत्मा पूर्ण जीवित व्यक्तित्व का रूप धारण नहीं कर सकती। दृश्य जगत् को शुद्ध आत्मा अन्तःकरण के रंगीन पर्दे से ही देख पाती है।

इसलिये आध्यात्मिक नियम (Spiritual law) के हिसाब से एक अपौरुषेय नियम यह भी है कि शुद्ध चेतन आत्मा जब जब प्रकृति निर्मित शरीर के सम्पर्क में आयेगी उसका कुछ अंश consciousness मनश्चेतना के रूप में परिवर्तित हो ज़ायेगा। मानव शरीर में वह मानवीय चेतना (human consciousness) के रूप में प्रकट होता है। इस चेतना का कुछ अंश दैवी नियमों के अनुसार मन, बुद्धि, अंह के रूप में सक्रिय हो जाता है। चेतना का यह यान्त्रिक सा पर्दा शुद्ध आत्मा के चारो ओर झिलमिलाने लगता है और इसी अन्तःकरण के पर्दे पर (Psychic veil) पर संसार के चित्र अंकित होते रहते हैं। चेतना या consciousness इन्हीं

प्रतिबिम्बों में खोई हुई दुखी सुखी होती रहती है। अन्तःकरण के पर्दे पर गुजरते हुये प्रतिबिम्बों (reflections) को ही अपना तात्कालित जीवन समझकर व्यस्त और खोई हुई रहती है।

भीतर की अन्तश्चेतना अन्तःकरण के पर्दे से उस पार होने के कारण अप्रभावित रहती है। वह मानव देह में परमात्मा की शुद्ध किरण है ज्यों की त्यों। परमात्म-धारा।

आत्मा या स्पिरिट की कार्य-पद्धति

पदार्थ और आत्मा Matter और स्पिरिट का यह मिलन केवल विश्वात्मा के स्तर पर (cosmic level) ही नहीं हो रहा है अपितु जैविक स्तर पर भी हो रहा है और इसी मिलन के फलस्वरूप जीवित व्यक्तियों और प्राणियों का निर्माण हो रहा है। छोटी से छोटी गिटार और घुन से लेकर सुन्दर सुसंस्कृत मानव प्राणी तक सब जगह जीवित प्राणी इसी जैविक मैटर और आत्मा (Spirit) के मिलन से बन रहे हैं। अध्यात्म जगत का एक नियम यह भी है जहाँ जहाँ जैविक मैटर आत्मा के संयोग में आता है वहीं वहीं जीवन के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

जीवन के लक्षण

प्राण और चेतना

(Life force and Consciousness)

चित्शक्ति (Spirit) दो रूपों में प्रकृति-निर्मित शरीरों में प्रवाहित होती है।

(१) प्राण Eeergy.

(२) चेतना, प्रज्ञान या होश, या Consciousness.

प्राण

शरीर के प्रत्येक कोषाणु में प्राण स्पन्दित होकर उसे जीवन शक्ति प्रदान करता है। शरीर में हरकत, तमाम प्रकार की शारीरिक क्रिया-शीलताएँ प्राण के द्वारा ही हो रही हैं। शरीर के अगों की क्रियाएँ दिल की धड़कन, खून का दौरा श्वास-प्रश्वास आदि क्रियाएँ भी (आन्तरिक भी) इसी प्राण के द्वारा संचालित हो रही हैं।

चित्शक्ति (Spirit) की दूसरी धारा चेतना या आत्मा प्राणियों के शरीर में प्राण को वाहन (vehicle) बनाकर ही आती है। मुख्यत: यह धारा स्नायु (Nerves) सुषुम्ना, तथा मस्तिष्क के अन्दर नियम बद्ध तरीकों से प्रवाहित होती है और जैविक (organic) मैटर के सम्पर्क में आकर स्नायुओं में दौड़ती हुई मानव मस्तिष्क की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति चैतन्य या प्रज्ञान या होश (consciousness) के रूप में प्रकट होती है। चित्शक्ति अथवा (Spirit) का यह बदला हुआ रूप ही प्राणियों के बन्दर चेतना या होश या (consciousness) बनकर प्रकट होता है। इसके बिना प्राणी सम्पूर्णतया जीवित—जाग्रत नहीं माना जायेगा।

भूतानामस्मि चेतना

चेतना की अभिव्यक्ति The projection of the Spirit.

ममैवांशो जीव-लोके जीव-भूत: सनातन:,
मन: षष्ठानि इन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति। —गीता

जब चिदात्मा का एक छोटा सा टुकड़ा जैविक मैटर से बने हुए शरीर में प्रवेश करता है, चित्शक्ति स्नायुओं के तारों पर दौड़ती है, तब आत्मा, चेतना या Consciousness के रूप में प्रवाहित होने लगती है और एक अजीब सा करिश्मा होता है। यद्यपि इस शरीर में बहने वाली चेतना परात्पर चेतना का ही एक अंश है तथापि फिर भी सृजन के नियमों से बंध कर वह एक विशेष प्रकार का लक्षण उत्पन्न करने लगती है। वह चेतना जो इसी शरीर में प्रवाहित हो रही है अपने को इसी शरीर में सीमित मानने लगती है उसके अन्दर सीमित अहं का प्रकटीकरण हो जाता है। (Finite ego) वह चेतना समझती है, मैं यह कीड़ा हूं, मैं यह शेर हूं, मैं यह नारी हूं, मैं यह पुरुष हूं। यद्यपि यह चेतना विश्व-चेतना का ही एक अंश है तथापि यह अपने को अन्य टुकड़ों से अलग एक विशिष्ट अंश, एक भिन्न व्यक्ति समझने लगती है। यानी समष्टि चेतना में से (Cosmic consiousness) व्यक्ति-चेतना (Individual units of consciousness) निकल पड़ो। इस व्यक्तिगत चेतना से प्राणी के सीमित अहंकार (ego) का निर्माण हुआ। तो यह है Psychic Mechanism अन्त:करण का पहला रूप 'अहं' (ego)।

चेतना का दूसरा रूप मन (Mind)
Projection of Spirit

विशिष्ट-चेतना शरीर में स्थित होकर बहिर्मुखी होती है (Out side projection) और बाहरी प्रकृति से सम्पर्क स्थापित करती है। परिवेश से प्रभावित

होती है, संवेदनायें ग्रहण करती है और संवेदनायें बाहर भेजती है। प्रभावित भी होती है और प्रवाहित करती भी है। प्राणी चेतना में प्रकृति के सम्पर्क से कई प्रकार के गुल खिलते हैं। विश्व-प्रकृति बाहर विविध रूपों में बिखरी हुई है। शब्द के रूप में, दृश्य के रूप में। सुगन्धि के रूप मेंस्पर्श योग्य पदार्थों के रूप में। साथ ही प्राणी की चेतना में उस क्षमता के उपकरण हैं जिनसे यह चेतना भूतजगत् की, प्रकृति की, विभूतियों (तन्मात्राओं) को अनुभव कर आनन्दित होती है। चेतना की धारा विश्व के जिस स्तर पर सम्पर्क करती है उसी स्तर पर प्रकृति की विभूतियों को भोगती है। दृश्यों को देख लेती है, शब्दों को सुन लेती है, सुगन्धियों को सूंघ लेती है, खाद्यों के स्वाद से छक लेती है। चेतना की यह क्षमतायें इन्द्रिय कहलाती हैं। इन आनन्दों को चेतना जिन शरीर के अवयवों से प्राप्त करती है वे यंत्रों का काम करते हैं। जैसे कान के यत्र से चेतना सुनती है, आँख के यंत्र से देखेगी। जीभ से स्वाद ग्रहण करेगी, नाक से सूंघेगी। सब मिलाकर प्रकृति और चेतना में एक बहुत ही जटिल किन्तु मनोरंजक तालमेल बैठा हुआ है।

यह हुआ चेतना का दूसरा कार्यकारी (Operational) रूप "मन"। चेतना का तीसरा कार्यकारी रूप 'बुद्धि' है। प्राणी शरीरों में दौड़ने वाली चेतना का यह सबसे प्रखरतम रूप है। यह वह टौर्च है जो जीव के हाथों में थमा दी गई है। जिस जगह यह टार्च पड़ेगी वहीं प्रकाशित हो जायेगी। मानवीय चेतना में चिदात्मा का (Cosmic spirit) यह सबसे तेजस्वी रूप है। बुद्धि तेज से समन्वित जीव परात्पर के (Sureme spirit) सब विशिष्ट गुणों से युक्त हो जाता है इसके अन्दर।

ज्ञान शक्ति (Perception)

इच्छा शक्ति (Will)

भावना शक्ति (Feelings and Emotions)

या (Feeling, willing and understanding) उत्पन्न हो जाती है। मानवीय जीवन में बुद्धि परात्पर चिदात्मा का सबसे प्रखर व्यक्तीकरण है और निर्मल बुद्धि ज्यों की त्यों परात्म धारा है। बुद्धि चेतना की सबसे सूक्ष्म और तेजवान धारा है।

चेतना के कार्यकारी रूप

Operational Aspects of the conciousness, चेतना के सारे कार्यकारी रूप, मन बुद्धि और अहं (ego) मिलकर ही विशुद्ध आत्मा को (Spirit) चेतना का रूप (Consciousness) देते हैं और यह कार्यकारी रूप एक मानसिक यंत्र

(अन्तःकरण) के रूप में चिन्मयी आत्मा को मिला हुआ है। इसी यंत्र के द्वारा वह (Psychic mechanism) वाह्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करती है। अन्तःकरण आत्मा का ही संसार की तरफ बढ़ा हुआ Projection विस्तार है।

मैंने पहले भी बताया था चिदात्मा का कुछ अंश (Cosmic spirit) जीव में रिजर्व के रूप में ज्यों का त्यों रहता है। उसे मैंने 'अन्तर्यामी' नाम दिया था वह ज्यों की त्यों परात्म धारा है और चिदात्मा का जो अंश बहिर्मुख होकर प्रकृति के सम्पर्क में आ रहा है, जो जगत् के प्रभावों को ग्रहण कर रहा है, सुख-दुख की अनुभूति कर रहा है, प्रकृति के सम्पर्क में आई हुई यह वाह्य-चेतना (Outer layer of consciosness) ही जीव-चेतना है। और चिदात्मा का वह छोटा सा टुकड़ा (Spark of cosmic spirit) अपने सीमित अहं में, प्रकृति से ग्रहण की हुई संवेदनाओं और उनके रंगों में खूब मग्न है। समष्टि-चेतना का यह नन्हा सा अंश (व्यष्टि-चेतना) अपने जीवन में (Limited ego) खूब मस्त है और अपने को व्यापक चेतना या परात्पर से किसी प्रकार कम नहीं समझता है। इस प्रकार परात्पर चिदात्मा (Cosmic spirit) की धारायें विराट् विश्व में समाती हुई जीवों के अन्तःकरणों में मन और बुद्धि के रूप में झर रही हैं और हर जगह एक नये ही अहं या व्यक्तित्व का निर्माण हो रहा है।

दैवी ही एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया

व्यापक-चेतना (Cosmic spirit) किस प्रकार अपने व्यापक रूप को भूल कर अपने को एक विशिष्ट जीव समझने लगती है। "और क्यों" यह एक प्रश्न है जो अध्यात्म के जिज्ञासु के सामने आकर उपस्थित होता है। क्योंकि अपने उन्मुक्त और व्यापक रूप में चेतना न केवल विराट् विश्व में व्याप्त है अपितु विराट् से भी परे जाकर वह सीमाहीन विस्तार में है। परम अव्यक्त है।

चिदंश यानी (Spark of cosmic spirit) अपने परिवेश के अनुसार अपना सीमित अहं बना लेती है उसी में उसका राग भोग चलता है ? ऐसा क्यों और किस प्रकार।

व्यापक चेतना, सीमित व्यक्तित्व (ego) बनती है परात्पर (Cosmic spirit) के दैवी अनुलंघनीय नियमों के कारण जीव को अपने व्यापक रूप का विस्मरण ईश्वरीय आदेश से (Divine will) होता है। ईश्वर की इस दैवी इच्छा को ही उस युग में हमने 'माया', नाम दिया था। माया भगवान की शक्ति, माया भगवान की इच्छा।

दैवी माया से ही विशुद्ध आत्मा या Spirit के ऊपर एक Hypnotic veil या सम्मोहन का पर्दा पड़ जाता है परात्पर के अंश विशुद्ध आत्मा के ऊपर भगवान की दैवी माया से तरंगायित चेतना का पर्दा सा पड़ जाता है, और चिदंश इस पर्दे की तरंगों में प्रतिबिम्बत प्रकृति के विविध चित्रों को देखकर मस्त हो जाता है। आत्मा के ऊपर सम्मोहन (Hypnotism) यहाँ तक बढ़ जाता है कि मानवीय चेतना पर पड़े हुए तरंगायित अन्तःकरण के पर्दे पर जो प्रतिबिंब दिखाई देता है वही उसके लिए तात्कालिक सत्य बन जाते हैं। उन तात्कालिक सत्यों के साथ चेतना का घात-प्रतिघात चलता रहता है और वह व्यापक महा चेतना के साथ अपने सम्बन्ध को भूल जाती है।

इस विस्मरण में बुरा या गलत कुछ भी नहीं है क्योंकि जीव को यह विस्मरण स्पिरिचुएल आर्डर के दैवी नियमों के अनुसार होता है। विशुद्ध आत्मा व्यापक गुणेव ली चेतना सम्मोहित होती है, दैवी नियमों के कारण, सनातन अव्यक्त की इच्छा से यह पर्दा चेतना के ऊपर पड़ा है और वह अपने व्यापक रूप को, भूलकर सीमित बनी है इसलिये यह पर्दा अनुलंघनीय है, दुरत्यय है। उस सम्मोहन के फलस्वरूप सृष्टि में विविध चरित्र वाले जीवों का प्रकटीकरण हो रहा है। इसमें अकल्य णकारी कुछ भी नहीं है क्योंकि सृष्टिकर्त्ता की इच्छा अपनी सृष्टि को नुकसान पहुंचाने की नहीं हो सकती। माया के सम्मोहन का मुख्य लक्ष्य जीव-चेतना का निर्माण है। इस लिए माया जीव की शत्रु नहीं बल्कि निर्माण कर्त्री है।

चूंकि माया का पर्दा जीव-चेतना पर सनातत अव्यक्त की इच्छा से पड़ा है इसलिए सनातन अव्यक्त के ही आदेश से यह पर्दा जीव-चेतना (consciousness) से हट भी सकता है और सीमित-चेतना माया के पर्दे के पार महाचेतना में झाँक सकती है, उसमें समा सकती है।

सनातन अव्यक्त (Total transcendental spitit) की कृपा (grace) से सब कुछ सम्भव है। जब माया पति अपने किसी जीव चिदंश को व्यापक, चेतना की अनुभूति कराना चाहते हैं तो यह पर्दा हट जाता है और जीव परात्पर चेतना में लय होने की अनुभूति प्राप्त कर लेता है। (समाधि)।

जो कुछ भी है जहाँ कहीं भी जड़ चेतन या सार असार,
विश्व चेतने, प्राण शक्ति तू करती सबमें नित्य बिहार।
अणु-अणु में स्पन्दित होती भगवति तेरी जीव कला,
आत्म-शक्ति तू अखिल-विश्व की स्तुति कैसे करूँ भला ।।

———

विश्व की नियामक नीति-व्यवस्था या धर्म-व्यवस्था

Moral Order

अभी हम विश्व को व्यवस्थित ढंग से चलाने वाली दो व्यवस्थाओं को समझ चुके हैं। वस्तु-व्यवस्था या अधिभूत या मैटीरियल आर्डर। दूसरी अध्यात्म-व्यवस्था या स्पिरिचुएल आर्डर। मैटीरियल आर्डर अधिभूत के सुदृढ़ अटल नियमों से संचालित है, किसी की मजाल नहीं कि अधिभूत के अटल नियमों का उल्लंघन कर सके। बड़े से बड़ा योगी भी बिजली के नंगे तार को हाथ से नहीं छू सकता। वह नष्ट हो जायेगा। अध्यात्म व्यवस्था, आत्म-धारा भी, परात्पर, विश्वव्यापी, अन्तर्यामी बहिर्यामी धाराओं में अपने सनातन नियमों के अनुसार वह रही है। इन दोनों व्यवस्थाओं के नियम अटल हैं। कोई दुस्साहस कर इन्हें बदल नहीं सकता।

तो एक तरफ तो सनातन-अव्यक्त परम-पुरुष ने अपनी ही एक शक्ति मूल-प्रकृति से चराचर जगत् का निर्माण किया और यह व्यवस्था मैटीरियल आर्डर कहलायी। दूसरी तरफ चिति के महा पारावार से (Reservoir of spirit) असंख्य आत्मायें निकल कर प्रकृति-निर्मित शरीरों में प्रवेश करने लगीं। यह व्यवस्था अध्यात्म व्यवस्था कहलाई। विराट की विश्वमयी देह से लेकर छोटे से छोटे अणु परमाणु तक परात्पर की चित्धारायें प्रवाहित हो रही हैं और इस प्रकार एक विलक्षण जीव-जगत् का निर्माण हुआ जो जीव प्रकृति के तत्वों को भी धारण किये हुए है और भगवान् के चिदंश को भी (Spark of spirit)। पुरुष और प्रकृति के पारस्परिक प्रेमाकर्षण और मिलन से सृष्टि चल रही है और आश्चर्य जनक रूप से सुव्यवस्थित है।

धर्म व्यवस्था या ईश्वरीय-व्यवस्था

Moral Order

सृष्टि को सुचरु रूप से संचालित करने के लिये और भूत-सृष्टि के अन्दर खेलते हुए परात्पर प्रभु के चिन्मय चेतन बालकों को सुखी व समन्वित जीवन प्रदान करने के लिए ईश्वर की इच्छा से एक नयी व्यवस्था का संचार हो रहा है जिसका नाम है, मौरल आर्डर या धर्म।

जिस प्रकार मैटीरियल आर्डर और स्पिरिचुएल आर्डर के नियम शाश्वत और अटल हैं उसी प्रकार मौरेल आर्डर या धर्म व्यवस्था के नियम भी अटल और अनुलंघनीय हैं। नीति व्यवस्था के नियमों में गड़बड़ी

होने पर स्वयं परात्पर को हस्तक्षेप करना पड़ता है। जब कभी जीव-जगत में नीति का, धर्म विधान का उल्लंघन सामूहिक और संगठित रूप से होने लगता है तब तब विश्वात्मा का दृढ़ हस्तक्षेप मानव-जगत् में होता है, और मोरेल आर्डर या नीति व्यवस्था की नीतियाँ कठोर रूप से दुरुस्त की जाती हैं और मानव जाति को पुनः सही मार्ग पर लाकर खड़ा किया जाता हैं। नीति-व्यवस्था, वे सही कायदे या नियम हैं जिनके द्वारा सृष्टि कर्त्ता सृष्टिको चलाना चाहता है और चला रहा है व चलायेगा और उसके विधान या इच्छा के रास्ते में हिम्मत नहीं किसी की कि चूं चपड़ कर जाय, या अव्यवस्था उत्पन्न कर सके। ईश्वर की इच्छा या डिवाइन विल अपने मन्तव्यों को निश्चित रूप से पूरा करती है इसलिए मैंने नीति-व्यवस्था को भी अटल और अनुलंघनीय कहा है। नीति-व्यवस्था को ही पुरानी भाषा मे धर्म-विधान कहा गया है। धर्म यानी धारण करने वाले नियम। वे नियम जिनके द्वारा विश्वात्मा विश्व को धारण करते हैं। हम उन नियमों को और विश्वात्मा के उसके उद्देश्यों को समझने की कोशिश करेंगे, आखिर ईश्वर की इच्छा क्या है या हो सकती है।

ईश्वर की इच्छा या
Divine will

तो सुनिये, जब इतनी योजनाओं और व्यवस्थाओं के साथ इस सृष्टि का निर्माण हुआ और संचालन हो रहा है तो सृष्टि-कर्ता यह कभी नहीं चाह सकता कि उसकी बनाई हुई सृष्टि में किसी प्रकार का विघटन हो, खराबी उत्पन्न हो। वह तो यही चाहेगा कि सृष्टि पहले की अपेक्षा अधिक विकसित, समुन्नत अधिक श्रेष्ठ और अधिक सुन्दर बनती जाये। सृष्टि-चक्र में (Grand design of universe) जो परिवर्तन नजर आ रहे हैं, जिन्हें हम मृत्यु और विनाश समझते हैं वह भी सृष्टि को चिर नूतन, चिर युवा, चिर सुन्दर बनाने के लिये हैं। पुराने पत्ते झड़ कर नये आ जाते हैं। पुरानी पीढ़ी की जगह नयी ले लेती है। यह सृष्टि के अन्दर चलने वाली नवीनीकरण की प्रक्रिया है। यह विघटन नहीं है। सृष्टि-कर्ता तो हमेशा यही चाहेगा कि उसकी सृष्टि में तरह-तरह के फूल खिलते रहें, तितलियाँ नाचती रहें, मानव शिशु प्रफुल्ल मुख खेलते रहें। तो ईश्वर का मन्तव्य (Divine purpose) यही है कि उसकी बनाई हुई सृष्टि हमेशा उत्तरोत्तर खिली रहे, पूर्ण विकास की ओर अग्रसर होती रहे। इस मन्तव्य को पूरा करने का स्वप्न देख रही है ईश्वर की इच्छा (Divine will)। ईश्वर अपनी सृष्टि को सुसंगठित, समन्वित, सुसंचालित देखना चाहता है। इसके लिए उसकी अपनी प्रेरणायें और आज्ञायें चालू हैं। कोई यह नहीं चाह सकता कि उसकी बनाई हुई वस्तु नष्ट हो और बिगड़े इसी नियम के

अनुसार एक दैवी व्यवस्था को सर्वेश्वर ने जन्म दिया है जो उसकी सृष्टि का सर्वांगीण और समुचित विकास कर रही है और इस भूत सृष्टि में रहने वाले चिन्मय जीवों को सुखी और समन्वित जीवन की ओर ले जा रही है। ईश्वर की इच्छा सृष्टि को सुचारु रूप से संचालित करने और विकसित करने की है। वह स्वय इस व्यवस्था के रूप में मानव हृदय तक आ रही है।

तो वह व्यवस्था जिसके द्वारा या जिसके अन्तर्गत विश्व का कल्याण हो, सृष्टि सुन्दर से सुन्दरतर शिव से शिवतर बने तथा इस सृष्टि में रहने वाले जीव सुखी और समन्वित जीवन बिताने योग्य बने वह व्यवस्था है मोरेल आर्डर, धर्म विधान या नीति-व्यवस्था। अर्थात् वे कायदे कानून जिनके द्वारा सृष्टि को परम प्रभु पूर्ण विकास और समन्वय की ओर ले जाना चाहते हैं यह व्यवस्था मोरेल आर्डर (Moral order) धर्म विधान इसलिये कहलाती है क्योंकि इससे विश्व धारण होता है (Sustain), विनाश से बचता है। ईश्वर की प्रेरणा हो धर्म के विधान या नियमों के रूप में ससार में आ रही है। इस व्यवस्था का जन्म अव्यक्त परमात्मा के संकल्प में हुआ या उनकी अव्यक्त इच्छा ही इस व्यवस्था के रूप में प्रकट हो रही है। दोनों बातें एक ही हैं। Moral order must have its genesis in pure intellect.

नीति व्यवस्था
Moral order

मनुष्य अपनी मेधा का प्रयोग करके ही मैटीरियल आर्डर के रहस्यों को कुछ हद तक समझ पाया है और समझता जा रहा है। बुद्धि योग के द्वारा ही मनुष्य कुछ हद तक प्रकृति से बनी हुई वस्तुमयी देह में खेलते हुए आत्म-तत्व की कुछ झलक पा सकता है। विश्व के कल्याण के लिए, चिन्मय जीवों को समन्वित व सुखी जीवन प्रदान करने के लिए, ईश्वर की प्रेरणा किस ओर संकेत कर रही है इसको जानने के लिए हमें अपनी ज्ञान शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा। किस परिस्थिति में हमे क्या कदम उठाने होंगे, कौन से कदम सही होंगे, किन कदमों से हमारे आस-पास फैली हुई सृष्टि लाभान्वित होगी, इसका निर्णय मनुष्य के अन्त:करण में स्थित ज्ञान-शक्ति, या बुद्धि करेगी क्योंकि ईश्वर की प्रेरणा या आदेश प्राप्त करने का स्थान वही है। इसलिए नीति व्यवस्था को समझने के लिए अथवा किस वक्त क्या नीति है या अनीति moral या immoral हमें ईश्वरीय योग से युक्त होकर अन्त:करण की ज्ञान शक्ति का आश्रय लेना पड़ेगा। तभी सही रास्तो, सही नियमों का पता चलेगा।

एक मोटा सा नियम-प्रेम

मौरेल आर्डर या धर्म विधान का मूल-सिद्धान्त प्रेम है। प्रेम के रूप में स्वयं ईश्वर पृथ्वी पर उतर रहा है। प्रेम ही वह महाशक्ति हैं जिससे विश्व-मानवता धारण हो रही है। जो तत्व मानव हृदय में प्रेम के रूप में प्रकट हो रहा है वहीं विश्व के स्तर पर (Cosmic level) पर, ग्रहों में आकर्षण शक्ति और पदार्थों में चुम्बक-शक्ति बनकर प्रकट हो रहा है। सारी सृष्टि के लिए भगवान् ने प्रेम और ज्ञान के नियम बनाये हैं मनुष्य जीवन के सार रूप इन तत्वों को भुलाकर पाखण्ड वाद में फँस जाता है तो घर, परिवार, देश, सम्पूर्ण मानवता विनाश के कगार पर पहुंच जाती है। आप परिवार में आपसी व्यवहार से प्रेम हटा दीजिए, परिवार विघटित हो जायेगा, पिता पुत्र का शत्रु, पति पत्नी का उत्पीड़क बन जायेगा। घरों की सुरक्षित दीवारें टूट जायेंगी। एक जाति दूसरी जाति के प्रति प्यार की भावना छोड़ दे, गृह-युद्ध की आग में जलकर दोनों जातियाँ भस्म हो जायेंगी। सारा राष्ट्र प्रम के आधार पर बनता है। न भाषा, न संस्कृति, न जाति न संविधान केवलमात्र प्रेम ही वह सीमेंट है जो विभिन्न जातियों को एक राष्ट्रीयता में जोड़ता है। राष्ट्र राष्ट्र के बीच प्रेम का सूत्र तोड़ दीजिए, विश्व-युद्ध के अंगारे छिटकने लगेंगे। सम्पूर्ण मानवता के विनाश की भूमिका बनने लगेगी। न केवल राष्ट्र बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत् भी प्रेम के आधार पर ही चल रहा है। इसीलिये नीति व्यवस्था के महान् नियम प्रेम की ओर मैं आप का ध्यान आकर्षित कर रहा हूं। यह प्यार, यही सत्य है, यही भगवान् है इस तत्व को जिस दिन आप अन्तःकरण में धारण कर लेंगे, ईश्वर की इस महान् व्यवस्था को आप बहुत कुछ समझ लेंगे। प्रेम वह राज मार्ग है जो (high way) सीधा आपको को ईश्वर के पास ले जाता है प्यार, धर्म की महान शक्ति है।

Moral order प्रेम का वितरण
Love the creation

यह सृष्टि आपका प्यार माँगती है। आपका परिवेश आपका प्यार माँगता है—

सनातन-अव्यक्त का चिन्मय लाड़ला पुत्र है जीव। वह प्रकृति (nature matter) और पुरुष (आत्मा, spirit) के पारस्परिक आलिंगन से व्यक्त हुआ है। इसलिये उसके कोषाणु प्रकृति या भूत जगत् से सम्बन्धित हैं, उसके अन्दर का चिदंश (spark of spirit) परात्पर से निकलती हुई आत्मधारा का अंश है अतः वह मैटीरियल आर्डर

के प्रति भी ऋणी है और स्पिरिचुएल आर्डर के प्रति भी। उसे अपने जीवन में दोनों के प्रति ही अपना आभार प्रकट करना है। यह उसका धर्म है जिस सृष्टि में उसने जन्म लिया है उसे सुन्दर और मनोरम बनाने के लिये कुछ न कुछ अवश्य करना पड़ेगा। सृष्टि कर्त्ता स्वयं अपनी सृष्टि के निर्माण और विकास की क्रिया में व्यस्त हैं आप उनके सृष्टि कर्म में हाथ बटायें। सृष्टि की मुख्य धारा से हटकर भागें नहीं। जो कुछ भी क्षमतायें लेकर आप उस विश्व में आये हैं उनका उपयोग आप अपने चारों ओर फैली सृष्टि को सजाने सवाँरने में लगायें। सृष्टि को मनोरम बनाने में अपना रचनात्मक सहयोग दें, अपने सत्प्रयत्नों से कुछ न कुछ नई सुन्दरता प्रदान करें। चाहे आप एक आम की गुठली ही बो दें, या अमरुद का एक पेड़ लगा दें या एक चित्र बनाकर दीवार पर टाँग दें। सृष्टि का मनोरम बनाने के शुभ काय में रचनात्मक सहयोग देना जीव का फर्ज है। उसका धर्म है। ऐसा क्यों?

विश्वात्मा का महान् सृष्टि-चक्र

विश्वात्मा के महान सृष्टि-चक्र में सब एक के लिये और एक सबके लिये है (all for one & one for all)। एक नन्हें से बच्चे के पालन-पोषण में पूरी विराट् सृष्टि लगी हुई है। एक प्याला दूध भी जो बच्चा पीता है वह न जाने कितनी गौवों, कितने ग्वालों कितने किसानों, कितने दुकानदारों के त्याग, तपस्या व सेवा के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। रोटी का एक ग्रास जो वह खा रहा है न जाने किन-किन खेतों, किसानों, मज़दूरों, मज़दूरनियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप तैयार होकर उसके हाथ में आया है। जो कुर्त्ता वह पहन रहा है वह न जाने किन किन कपास के पौधों के आत्म दान का फल है कितने कितने जुलाहों के श्रम का सुन्दर रूप है। जीव अपनी छोटी सी छोटी सुविधा के लिये न जाने कितनी दूर दूर तक फैली विराट् सृष्टि का ऋणी है। सारी समष्टि मिलकर एक इकाई (जीव) का पालन कर रही है। न जाने कितने माता, पिता, आचार्य, नौकर, भाई बन्धु, एक बालक को पालने और बढ़ाने में लगे हैं। हर कदम पर सृष्टि आप पर निछावर हो रहीहै। आप सृष्टि का, जिसमें जड़ और चेतन दोनों शामिल हैं, सहयोग प्राप्त कर रहे हैं।

इसीलिये यह जीव का फर्ज़ है कि वह सृष्टि को भी अपना सहयोग प्रदान करे। सम्पूर्ण सृष्टि, यह विराट् यह Creation जब इतने प्यार से आप का पालन कर रहा है तब क्या आप का, जीव का यह कर्तव्य नहीं है कि आप उस प्यार को लौटायें। सनातन अव्यक्त के पुत्रो, यह सृष्टि आप का प्यार माँगती है वैराग्य नहीं। आप का परिवेश आप का प्यार मांगता हैं। देखिये जिसे आप जड़-जगत् समझते हैं, वह भी परमेश्वर के चिदंश जीव का स्पर्श प्राप्त करने के लिये लालायित

है। फरनीचर को कपड़ा लेकर साफ कर दीजिये फरनीचर चमक जावेगा, पौधे को सींच दीजिये फूल खिल जायंगे, मनुष्य का स्पर्श न मिलने पर अच्छी से अच्छी बिल्डिग भाँय भाँय करने लगती है। इस प्रकार विश्वात्मा के सृष्टि-चक्र में जीव और प्रकृति का सहयोग चक्र अन्योन्य है।

देखिये आत्म केन्द्रित होकर जीव समझता है कि विश्व का केन्द्र वही है। वह विश्व को अपने चारो ओर नाचता हुआ महसूस करता है। उसे मुगालता होता है कि सारी सृष्टि, सारी प्रकृति सारा संसार उसको सुख-सुविधा आनन्द देने के लिये है। सृष्टि का केन्द्र मैं हूं बाकी सारी सृष्टि मेरे लिये है। (All for one)

अगर आप ऐसा महसूस करते हैं तो जरा इसे उलट कर भी देखिये। अगर यह परिवेश यह सृष्टि आप के लिये है तो यह भी सत्य है आप भी उसके लिये हैं। उसके प्रति आप के भी कुछ फर्ज हैं। अगर यह कमरा आप के लिये है तो यह भी सच है कि आप इस कमरे के लिये हैं। कमरे को सुन्दर सुव्यस्थित करने के प्रति आप के भी कुछ फर्ज हैं। आप कमरे को साफ करिये, सजाइये सुन्दर बनाइये, कमरा आप को अच्छी तरह रहने का वरदान देगा। यदि गाय आप के लिये है तो आप भी गाय के लिये। गाय को नहलाइये, धुलाइये, थपथपाइये, प्यार कीजिये, चारा दीजिये, आप के सत्प्रयत्नों से खुश होकर वह गौ माता आप को प्रचुर दूध का वरदान देगी। यदि यह पेड़ आप के लिये है तो यह भी उतना ही सत्य है कि आप भी पेड़ के लिये हैं। पेड चाहता है, आप उसे सींचे, खाद दें आप की सेवाओ से तृप्त होकर वह आप को स्वादिष्ट फल प्रदान करेगा। इस तरह आप देखेंगे हर कदम पर सृष्टि आपके ऊपर प्यार के फूल बिखेर रही है और आप से बदले में आप का प्यार माँग रही है। क्योंकि सृष्टि अपने स्वामी परात्पर को प्यार करती है और संसार में आप परात्पर के प्रतिनिधि पुत्र हैं। जिस तरह परात्पर सृष्टि का पालन करते हैं उसी तरह उनके पुत्र होने के नाते आप भी अपने चारों ओर की सृष्टि को परिवेश को प्यार करिये, उसको सजाइये, सवाँरिये मनोरम बनाइये। उसके ऊपर अपना प्यार बिखेरिये। ईश्वर-पुत्र जीव का प्रकृति से यही नाता है। सृष्टि को प्यार करिये, प्यार। यह सृष्टि कर्त्ता की अनुपम निधि है।

[illegible]रेल आई का दूसरा नियम

बहिरात्माएं भी आप का प्यार माँग रही हैं।

आप के परिवेश में जड़ प्रकृति ही नहीं, चैतन्य प्राणी भी हैं। वे भी आप के प्यार के आकांक्षी हैं। आप को अपने प्यार का प्रसार प्रकृति जगत् तथा

जीव जगत् दोनों के लिये करना होगा। आप देख चुके हैं एक एक जीव के निर्माण और पालन में अगणित माता पिता, अध्यापक, सेवक, डाक्टर, सखा, इष्ट, मित्र, सम्बन्धी और अनजान व्यक्ति लगे हुये हैं। सारी समष्टि जुट कर एक बालक का निर्माण करती है पालन करती है। तब बालक का क्या फर्ज है—

समष्टि काम करती है आप के लिये—आप करेंगे समष्टि के लिये। यह जो व्यक्ति आप के सामने बैठा है आप का फर्ज है उसे सुखी करने का, आनन्दित करने का। उस चक्र में आप जो भी करेंगे वह समष्टि के लिये होगा, लोक-कल्याण के लिये। समष्टि आप को प्रसन्न करने के लिये कार्य कर रही है, आप समष्टि को प्रसन्न कीजिये। यदि इतने अनगिनती रिश्तेदार, अध्यापक, डाक्टर, बन्धु मिलकर एक बच्चे को समर्थ बनाते हैं तो बच्चे का फर्ज़ क्या समर्थ होकर अन्य लोगों को सुखी और प्रसन्न बनाने का नहीं है।

समष्टि-कर्म

अनजाने ही संसार में जीवन का यह चक्र इसी प्रकार चल रहा है। खेत में किसान गेहूं बोता है तो क्या सारा गेहूं खुद ही खा जाता हैं। उसका गेहूं जाने कितने परिवारों तक पहुंच रहा है। कपड़ा एक जुलाहा बुनता है तो क्या सारा कपड़ा खुद ही पहन लेता है—वह न जाने कितने कितने शरीरों की शोभा बनाता है। संक्षेप में हर व्यक्ति समष्टि-कर्म (one for all) लोक-संग्रह में लगा हुआ है हाँलाकि वह ऐसा समझता नहीं है। विश्वात्मा की सृष्टि में सब कोई (all) एक (Unit) के लिये काम कर रहे हैं और एक को सबके लिये खुशी-खुशी काम करना है। जीव का यही धर्म है, (Morality) बाध्य होकर समष्टि के लिये, सबके लिये काम करना निरानन्द का श्रोत बन जाता है और ज्ञान पूर्वक विश्वात्मा के इस महान चक्र को (grand design) समझकर अपनी क्षमतायें, सेवायें समस्त सृष्टि और अन्य आत्माओं के प्रति अर्पित करना लोक-संग्रह बन जाता है। सब एक के लिये हैं और एक सबके लिये है, सृष्टि के इस अटल सिद्धान्त को समझकर कि सृष्टि आप के लिये है और आप सृष्टि के लिये है। वही काम, कर्म योग और आनन्द का श्रोत बन जाता है।

चूंकि समस्त आधि-भौतिक शरीरों में एक ही चिदात्मा या cosmic spirit, अन्तर्यामी, बहिर्यामी रूप से प्रविष्ट है अतः हमें ऐसे कर्म करने चाहियें जिनसे बहिरात्माएँ हमसे प्रसन्न और तृप्त हों और विश्व का कल्याण हो।

हम अपने अन्तर के प्रेम की धारा सारे विश्व के प्रति, बहिरात्माओं के प्रति प्रवाहित करेंगे। यह प्रेम, मैत्री करुणा, श्रद्धा आदि बहुत से रूपों में प्रकट होगा। हम सबको प्रसन्न करने की कोशिश करेंगे—(मुदिता) अनुराग हमारे व्यवहार के मूल में होगा। आप खुद ही सोचिये बन्धुत्व की भावना का प्रसार और सृष्टि के अन्य जीवों के प्रति गहरे प्रेम की भावना के अलावा धर्म का और कौन सा आधार हो सकता है? जब कि सारी ही आत्माएँ एक ही common source स्रोत सनातन अव्यक्त से निकल रही हैं। अन्तरात्मा, बहिरात्मा, विश्वात्मा और परात्पर की शाश्वत् धारा बह रही है इस एक ही धारा में बहते हुए हमारी एकात्मता अगणित रिश्तों में, माता, पत्नी, पुत्र, बहिन, भाई, स्वामी, सेवक आदि में अगणित रूपों में महकेगी। प्यार के आदान प्रदान से बढ़कर न कोई धर्म है न कोई होगा। यह जरूर है कि प्यार के प्रसार में सम्पूर्ण विश्व के कल्याण, समष्टि के सुख की ओर हमें नजर रखनी होगी और एक व्यक्ति के ऊपर समष्टि को तरजीह देनी होगी। व्यक्ति का प्यार यदि मानवता के प्यार के रास्ते में आये तो हमें व्यक्ति के ऊपर जाकर मानवता तथा विश्व के कल्याण के लिये अपना प्यार और ममत्व अर्पित करना होगा। यही धर्म अथवा मौरल आर्डर (Moral order) का आदेश है।

———

टेक्नोलौजी आफ स्पिरिट

"Technology of spirit"

"मानव हित में आत्म-ज्ञान का प्रयोग"

The Technology of science

"टेक्नालौजी आफ साइन्स"

मैं आज आप को एक ऐसी बात बताना चाहता हूं जो आप को चौंका देगी। इस चीज पर शायद ही कभी आप ने गौर किया हो।

आप साइंस के युग में पैदा हुये हैं। वैज्ञानिक पद्धतियों से तैयार की हुई चीजें जीवन पर छाई हुई हैं। छोटी सी दियासलाई की सींक से लेकर वायुयान और अन्तरिक्ष यान तक सब कुछ विज्ञान की देन है। ये पंखे, ये हीटर, ये फ़्रिज, ये मोटरें, रेडियो, सिनेमा स्कोप, ये सब अनोखी-अनोखी चीज़ें कहाँ से उतरती आ रही हैं। विज्ञान क्या है ? विज्ञान कैसे इन चीजों का सृजन करने में समर्थ हुआ ?

आप ने देखा होगा, विराट् भूत-जगत में (phenomenon) जो स्वत: प्रेरित क्रियायें (cosmic activities) हो रही हैं मनुष्य उनमें छेड़छाड़ नहीं कर सकता। न पुराने नियम तोड़ सकता है, न नये बना सकता है। प्रकृति के नियम अपौरुषेय हैं (Laws of nature are immaculate) भूत-जगत् में आग है, विश्वविद्युत् है, जल है, बादल हैं, ग्रह है, नक्षत्र हैं। इनकी क्रियाओं में भूत-जगत् के जो नियम चल रहे हैं वे अपौरुषेय हैं यानी मनुष्य के बनाये हुये नहीं हैं। इलैक्ट्रिसिटी, इलैक्ट्रिसिटी के नियमों से चलती है, चलती रहेगी, साउण्ड, हीट, मैग्नेट सब अपने-अपने नियमों से चलते हैं। मनुष्य की मजाल नहीं कि इन नियमों में उलट-पुलट कर सके। बड़े से बड़ा योगी नंगे हाथों में विद्युत् नहीं समेट

सकता। ऐसा करेगा तो मर जायेगा। अच्छे से अच्छा आत्म-ज्ञानी आग में खड़े होकर जले बिना नहीं रह सकता। ये भूत-जगत् के अटल नियम हैं।

टेक्नोलौजी

प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर मानव-मस्तिष्क भूत-जगत् में प्रकृति के छिपे हुए नियमों का ज्ञान अवश्य प्राप्त कर सकता है और इन नियमों का ज्ञान प्राप्त कर वह इतना सावधान और सतर्क हो जायेगा कि उन नियमों का उल्लंघन कर वह अपने ऊपर आफत नहीं बुलायेगा। वह प्रकृति के अन्तर्जगत् में झांक सकता है और झाँककर देख सकता है कि कैसे भूत-जगत् के नियम कार्य करते हैं। वह इन नियमों और कानूनो को समझकर मानव-हित में उनका प्रयोग कर सकता है। यह हुई टैक्नोलाजी आफ साइंस। ऐसा करने से उसे रोकने वाला कोई नहीं है।

इस चीज को आप इस तरह समझ सकते हैं। नदी का जल प्रकृति के नियमों से बाध्य होकर पर्वत से निकल कर समुद्र की ओर बह रहा है। इस स्रोत के बहाव के अपने नियम हैं अपने कानून हैं। आप के कहने से यह धारा रुकने वाली नहीं है। किन्तु यदि आप जल के बहाव के अन्तर्निहित नियमों को समझकर उस पर तैरने लगें तो उन नियमों को साधते हुये आप पार उतर सकते हैं। लकड़ी की नाव बनाकर उसमे बैठकर, आप उस धारा के ऊपर नौका-बिहार भी कर सकते हैं। यह नोका, यह तैरना, यह युक्ति हुई Technology टैक्नोलोजी, जिसके द्वारा आप भूत-जगत् के नियमों को साध कर फायदा उठा सकते हैं।

आग को ही लीजिये, यह भी भूत-जगत का (world of matter) एक विशेष पदार्थ है। बड़े से बड़े योगी अथवा ज्ञानी पर आग रहम नहीं खायेगी। यदि उसकी लपेट में आ गया तो जला ही डालेगी। लेकिन युक्तियाँ हैं विराट् के इस महा पदार्थ को साधने के लिये और मानव हित में प्रयुक्त करने के लिये। उसे युक्ति के साथ जलाकर उससे खाना भी पकवाया जा सकता है और कुछ दूरी पर रखकर तापने पर शरीर के लिये सुख-दायक गर्मी भी प्राप्त की जा सकती है और भी हजारों काम हैं जो आग से ही मनुष्य कर पाता है।

विराट के स्तर पर देखिये—विश्वात्मा की प्रेरणा से क्षितिज पर बादल आते हैं। सारे आकाश पर छा जाते हैं। अदृष्ट, भूत-जगत् के किस नियम से ये बादल वक्त पर आते हैं, वक्त पर बरसते हैं हम नहीं जानते लेकिन हम इतना कर सकते हैं कि अपनी फसलें इस वर्षा-क्रम के कैलेन्डर के अनुकूल बोयें। वर्षा पानी का लाभ हमें तभी प्राप्त होगा।

यह भी हम देखते हैं विराट् के स्तर पर होने वाली इन हलचलों में एक अजीब Matthematical Accuracy पूर्व निर्धारित क्रम है Systematic rhythmic movements) है, विराट् के स्तर पर (cosmic level) होने वाली भूत-जगत की क्रियाएँ एक अदृष्ट पर सुनिर्दिष्ट विधान से सचालित हो रही हैं जिनमें मनुष्य अणु मात्र भी गड़बड़ नहीं कर सकता है। तभी तो फिजिक्स के, कैमिस्ट्री के, गणित के अटल (inexorable laws) नियम निकले हैं। मानों विश्वरूप विश्वात्मा का एक मस्तिष्क है एक मन है और वह बड़ी योजना के साथ इन laws of matter भौतिक जगत के नियमों को स्थापना करता है और फिर बड़े नियमित तरीके से इन कानुनों (Laws) का पालन अपनी प्रजा से कराता है। वस्तु-जगत में सब जगह विश्वात्मा की महान् योजना (grand design) परिलक्षित है। इस ग्रैन्ड डिज़ाइन में, विश्वात्मा के इस सृष्टि चक्र में, आकाश में ग्रह नक्षत्र एक दूसरे के चारों ओर घूम रहे हैं। एक दूसरे के ऊपर गिरकर नष्ट नहीं हो रहे हैं। विश्व-देव की अदृष्ट-आज्ञा का पालन करती हुई नदियाँ निर्दिष्ट-पथों पर बह रही हैं। विश्वदेव के कठोर अनुशासन के कारण ही सागर अपनी अगाधता के बावजूद पृथ्वी की वेला पर सिर पटकता रहता है लेकिन भीतर घुसने का दुस्साहस नहीं करता है। सूर्य उतना ही ताप पृथ्वी पर भेज रहा है जितना कि जीवन के लिये आवश्यक है। अनावश्यक ढग से ताप का पृथ्वी पर प्रक्षेप कर वह जीवन का विनाश नहीं करता है। विराट् के अधिदेव विश्वात्मा का कठोर अनुशासन ही मानों अधिभूत वस्तु जगत् के (Material order) अटल अपरिहार्य नियम बन कर प्रकट हो रहे हैं।

मैंने आपको बताया था कि युक्तियों के द्वारा भूत-जगत् (Material order) के in exorable अटल नियमो को साधा जा सकता है उन्हें मानव-हित में प्रयुक्त किया जा सकता है। अपौरुषेय को पौरूषेय बनाया जा सकता है। कपास का पौधा अपौरुषेय है। प्रकृति अथवा वस्तु-जगत् के अपौरूषेय-नियमों के अनुसार जन्म लेता है लेकिन इस कपास के पौधे से कपास निकाल कर रुई बनाकर, कपड़े बना सकना पौरूषेय है मानव टैक्नोलोजी है। रेशम का कीड़ा अपौरूषेय है लेकिन उससे रेशमी कपड़े बनाना, साड़ियाँ आदि बनाना पौरूषेय टैक्नोलोजी है। इस प्रकार भूत-जगत् के नियमों (Laws) के अनुसार चलने वाले-पदार्थों को मानव हित में मानवीय युक्तियों द्वारा (Human technology) प्रयुक्त कर मनुष्य फायदा उठा सकता है। चाहे वह रेडियो या ट्रान्जिस्टर हो जिसे आप गले से लटकाये फिरते हैं। चाहे मोटर हो या मोटर-बोट हो, हीटर हो या कूलर, फ्रिज या पंखे हों सर्वत्र एक ही काम किया गया है, विश्व की व्याकृता या अव्याकृता प्रकृति का अध्ययन

किया गया है (manifest और unmanifest) फिर उसके महान् नियमों को खोज निकाला गया है और तब फिर उन नियमों को मानव-हित में प्रयुक्त किया गया हैं।

आप साइन्स के युग के इंसान हैं इसलिये आप को साइन्स की शब्दावली में समझाना पड़ रहा है। वरना यदि आप मेरी द्वापर वाली भाषा के आदी होते तो मैं आपको बताता कि विश्वात्मा के कठोर आदेश ही वस्तु-जगत् (world of matter) के अटल नियमों के रूप में प्रकट हुये हैं। कोई योगी, कोई चमत्कारी बाबा प्रकृति के material order के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। वह उल्लघन करेगा तो नष्ट हो जायगा। वस्तु जगत् सिर्फ प्रकृति के अन्तर्निहित सिद्धांतों को जानकर ही साधा जा सकता है।

सब जगह भूत-जगत् सूक्ष्म-प्राकृतिक नियमों के अनुशासन में आवद्ध है। प्रकृति का सारा खेल भौतिक नियमों के अन्तर्गत है (within the laws of nature) प्रकृति के नियम अपौरूषेय अवश्य हैं। विराट् के स्तर पर प्रकृति परात्पर प्रभु को प्रसन्न करने के लिये विविध रूपों में प्रकट हो रही है, चूंकि सनातन अव्यक्त परम पुरुष (The supreme being) मैटर और स्पिरिट, प्रकृति और पुरुष दोनों के स्वामी हैं इसलिये जीव भी सनातन अव्यक्त का चिदग पुत्र (spark of Spirit) होने के कारण वह बुद्धि और शक्ति रखता है कि प्रकृति के कानूनों को समझ सके और उन्हें अपने हित में प्रयोग कर सके। इसी प्रक्रिया के द्वारा मानव सभ्यता का विकास होता है।

Technology of Spirit
आत्मा की टैक्नोलौजी

जब भूत-जगत् या मैटर इतने अटल सूक्ष्म नियमों से आबद्ध होकर कार्य कर रहा है तो स्पिरिट या आत्मा तो मैटर से कहीं सूक्ष्म और स्पन्दन-शील है। उसके स्पन्दन कितने प्रबल, कितने शक्तिशाली और जीवन पर प्रभाव डालने वाले होंगे। आत्मा के स्तर पर भी जो सूक्ष्म अव्यक्त कानून या नियम काम कर रहे हैं, उनका भी बारीकी से निरीक्षण और अध्ययन हो सकता है। भगवान ने जीव-पुत्र को ऐसी क्षमता दी हैं कि वह उन सूक्ष्म, अदृष्ट किन्तु परम-शक्तिशाली आत्मिक नियमों को समझकर एक ऐसी प्रभावी आचार संहिता या कानून-व्यवस्था विकसित करे जो आत्मा के मूलभूत अन्तर्निहित गुणों (qualities) के आधार पर निर्मित हो रही है। तथा जो मानव हित में प्रयुक्त होकर मानव को चरम विकास की ओर

ले जा सकती हो। इसी को मैंने गीता में ज्ञान और विज्ञान कहा था। ज्ञान या आत्मज्ञान, आत्मा के नियमों की जानकारी, विज्ञान यानी आत्मा के परात्पर आदेशित कानूनों विधानों का मानव कल्याण में प्रयोग। यह हुई टेक्नोलौजी आफ स्पिरिट या आत्म विज्ञान।

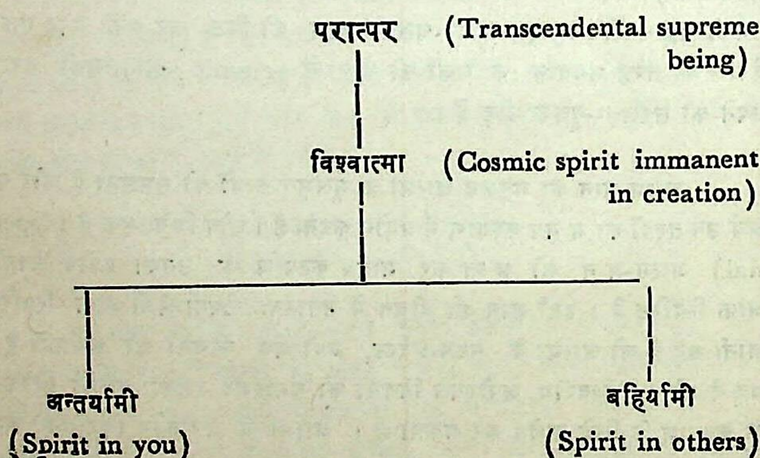
जिस प्रकार मैटर के नियमों में झांककर मनुष्य उनका प्रयोग (manipulation) अपने हित में कर सकता है उसी प्रकार वह आत्मा सम्बन्धी दैवी नियमों को व Hierarchyof spirit (आत्मा के क्रमान्तर) को समझकर अपने को दिव्य बना सकता है। अपने कर्मों से ईश्वरत्व का प्रसार कर सकता है—(ईश्वरीय विधान और संकल्प के अनुकूल ही) आत्मिक कानूनों को जानकर (Spiritual laws) समझकर मनुष्य उन कानूनों के अनुसार अपने को इस प्रकार ढाल सकता है जैसे कुशल तैराक पानी की लहरों पर। मैं पहले ही बता चुका हूं परात्पर (transcendental Spirit) के आदेश ही मैटर और स्पिरिट के प्रकृति और पुरुष के अनुल्लंघ्य नियमों के रूप में प्रकट हुये हैं। परात्पर की सर्वोपरि इच्छा (Paramount will) ईश्वर की मर्जी ही विश्व का संचालन कर रही है। सारी आत्मा की टेक्नोलौजी ही इसलिये हैं कि हम परात्पर के आत्मिक और भौतिक (Spiritual and material) आदेशो को समझकर उनकी दिव्य मर्जी (divine will) के अनुसार उनकी महान योजना, इस सृष्टि चक्र में अपने को फिट कर सकें और एक कुशल तैराक की तरह भगवान की मर्जी की धारा में (cosmic will) उसकी तरगों पर अपने को सरलता-पूवक छोड़ दें।

आत्म-ज्ञान का मतलव आत्मा के मूलभूत तत्वों को समझना हैं और योग का अर्थ उन तत्वों का मानव कल्याण में प्रयोग करना है। योग क्रियात्मक है (Operational) आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर मानव कल्याण में उसका प्रयोग टेक्नोलौजी आफ स्पिरिट है। इसी ज्ञान को जीवन में उतारना टेक्नोलौजी आफ स्पिरिट है। ज्ञानी वह है जो आत्मा के सूक्ष्म-अदृष्ट, अपौरुषेय कानूनों को समझता है, योगी वह है जो उन ईश्वरीय, अपौरुषेय नियमों को समझकर उनका सम्पूर्ण विश्व-मानव के कल्याण के लिये प्रयोग कर सकता है। आत्मा के अपौरुषेय चिरन्तन रूप और उसके काम करने के सूक्ष्म अव्यक्त नियमों को समझना तथा उनको मानव-कल्याण में प्रयुक्त करना "टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट" है (आत्म-विज्ञान) है। हज़ारों-हज़ारों सालों से मैं बार-बार सन्तों और अवतारों के मुँह से इस वार्ता का आरम्भ करा चुका हूँ। हर युग के सन्त और पैगम्बर टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट के एक न एक सिद्धांत को समझाकर इस ज्ञान को आगे बढ़ाने की कोशिश करते रहे हैं। फिर इस

बार यह बात बहुत विस्तार से आपको समझा रहा हूँ। यह वह 'टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट' है जिसके ज्ञान और प्रयोग द्वारा आप अपने जीवन को सुखी और दिव्य बना सकते हैं तथा औरों के जीवन में भी प्रकाश और आनन्द की किरणें बिखेर सकते हैं। टेक्नोलौजी तो टेक्नोलौजी है चाहे वह साइंस को हो या आत्म-ज्ञान हो। आप चाहे संसार के किसी भी प्रचलित धर्म को मानते हों, यह कतई जरूरी नहीं है कि आप अपने परम्परागत धर्म को छोड़ें बिना ऐसा किये ही आप टैक्नोलोजी आफ स्पिरिट के नियमों को समझ सकते हैं और अपने जीवन में उतार सकते हैं। उसी प्रकार जैसे बिना धर्म बदले एक वैज्ञानिक टेक्नोलौजी आफ साइंस का ज्ञान प्राप्त करता है और प्रयोग करता है। उसी प्रकार अपने परम्परागत धर्मों को बिना बदले ही एक मानवतावादी, आत्मा की टेक्नोलौजी को समझ सकता है और तब देखिये कि विश्व समाज में आत्मा की टेक्नोलौजी के प्रयोग की क्या सम्भावनायें हैं ?

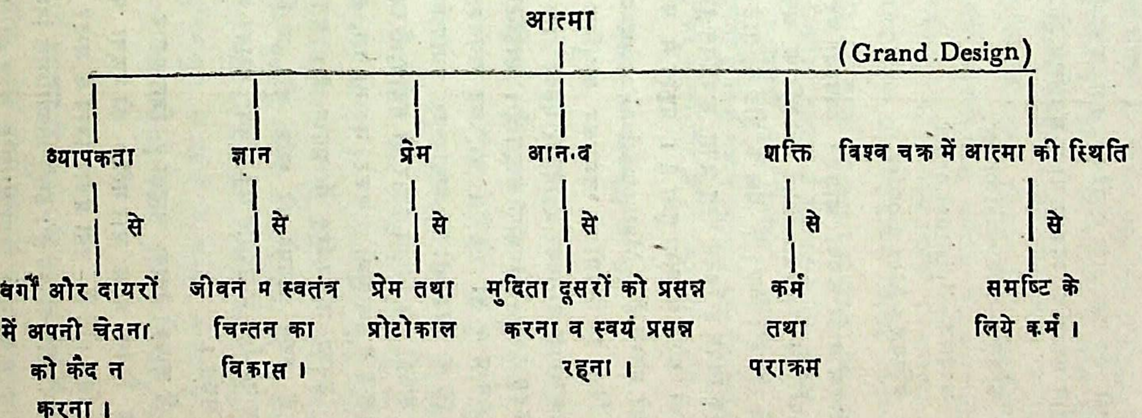
HIERARCHY OF SPIRIT

आत्मा का क्रमिक अवतरण



आत्मा के विशिष्ट तत्व तथा उनसे निर्मित होने वाली टैक्नालौजी ऑफ स्पिरिट

(TECHNOLOGY OF SPIRIT)



आत्म विज्ञान या
The Technology of Spirit

मैं काफी हद तक आप लोगों को बता चुका हूँ कि यह समस्त विश्व (cosmos) तीन प्रकार की व्यवस्थाओं से संचालित हो रहा है।

(१) अधिभूत—Material order.

(२) अध्यात्म—Spiritual order,

(३) अधियज्ञ—Moral order.

मैटीरियल आर्डर अथवा अधिभूत व्यवस्था अथवा विश्व-प्रकृति के नियम अटल और अपरिहार्य (inexorable) हैं प्रकृति के अपने नियम हैं जिनसे अव्यक्त सत्ता व्यक्त हो रही है। विद्युत के, जल के, हीट के, साउण्ड के, अणु के, परमाणु के सबके प्राकृतिक नियम हैं जिनसे वस्तु जगत् संचालित हो रहा है। विज्ञान निरंतर इन नियमों की खोज में लगा हुआ है। प्रकृति में परियाप्त नियम गणित की कसौटी पर खरे उतरते हैं (Mathematical accuracy) उसमें परिवर्तन करना संभव नहीं है किन्तु इन नियमों को समझकर आधुनिक टेक्नोलोजी के द्वारा जीव जगत् में मानव समाज में उसका प्रयोग कर मनुष्य जाति लाभान्वित हो सकती है। यही आधुनिकतम टेक्नोलोजी आफ साइस है। साइन्टिफिक टेक्नोलोजी के प्रयोग सारे मानव समाज म हो रहे हैं। चाहे वह सोवियत रूस हो या अमेरिका। जहाँ भी साइस के सिद्धान्तों के आधार पर प्रयोग किये जायेंगे वहीं टेक्नोलोजी विकसित हो जायेगी। ये विविध प्रकार की मशीनें, रिकार्ड. सिनेमा, हेलीकाप्टर से लेकर अन्तरिक्ष-यान तक, पुलों से लेकर मकानों तक, सब प्रकृति के अटल नियमों को समझकर उनका मानव-हित में प्रयोग है। इस तरह निरंतर वस्तु-जगत् (Matter) के अटल नियमों की खोज और उन नियमों का मानव समाज में प्रयोग और मानव-हित में उपयोग यह प्रक्रिया बराबर जारी है। इस विषय में दो मत नहीं हो सकते।

अब मैं आपको बताना चाहता हूं जिस प्रकार वस्तु-जगत् के (world of matter) के नियम अटल और गणित की गणना पर खरे (mathematical accurecy) सिद्ध होते हैं—उसी प्रकार विश्व के अन्दर परिव्याप्त आत्म-धारा भी वैज्ञानिक नियमों से संचालित है। इन्हीं आध्यात्मिक नियमों को मैंने द्वापर कालीन भाषा में, अध्यात्म का नाम दिया था और आज की भाषा में spiritual order कहलाते हैं। सारे विश्व में जो एक अखण्ड आत्मा (चेतना) प्रवाहित हो रही है

(cosmic spirit) और जिसमें से अगणित किरणें फूट-फूट कर हर प्राणी शरीर में प्रविष्ट हो रही हैं—ये आत्मा के चिदंश (Sparks of Spirit) भी एक खास नियम के अनुसार विश्व चेतना से निकल कर शरीरों में प्रवेश कर रहे हैं, अटल नियमों के अनुसार ही परात्पर चेतना (Transcendental spirit) का एक अंश विश्व-चेतना में बदल कर विश्व में व्याप्त हो गया है। अटल नियमों के अनुसार ही विश्व-चेतना की किरणें जीव-देहों में प्रविष्ट हैं (अन्तर्यामी, बहिर्यामी या अन्तरात्मा, बहिरात्मा) परात्पर चेतना स्वयं विश्व चेतना तथा जीव चेतना के रूप में परिणत होकर निरंतर मैटर के अन्दर प्रविष्ट होकर अपना करिश्मा दिखा रही है। उसके विशिष्ट गुण भी चेतना (Spirit) के अटल नियमों से अनुशासित हैं। जो बात मैं ज़ोर देकर बताना चाहता हूं वह यह है कि आत्मा के अटूट अटल सिद्धान्तों को समझ कर "टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट" आत्मा की टेक्नोलोजी उसी प्रकार विकसित की जा सकती है जिस प्रकार साइंस की टैक्नोलोजी, वस्तु जगत् के अटल नियमों को समझ कर मानव-हित में विकसित हो रही है।

Religion मजहब या धर्म

मैं रिलीजन शब्द से डरता हूं। संसार में मानवता का अहित अगर किसी ने किया है तो इन्हीं रूढ़ रिलीजनों ने। असीम चेतना को, अनन्त अबाध आत्मा को अगर किसी ने डिब्बों में बन्द करने की कोशिश की है तो वह रिलीजन ही है। मनुष्य को मनुष्य से लड़ाने में, मनुष्य की प्रखर मेधा को कुन्ठित करने में इन तथा-कथित धर्मों के अन्ध विश्वासों का पूरा-पूरा हाथ रहा है। इसीलिये मैं रिलीजन शब्द को दूर से प्रणाम करता हूं। टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट को किसी समय मैंने अधियज्ञ का नाम दिया था। मौरेल आर्डर या नीति व्यवस्था के नाम से भी मैं उसकी व्याख्या कर चुका हूं लेकिन अधियज्ञ शब्द भी परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों में खो चुका है। यह शब्द भी मेरे उन विचारों को व्यक्त न कर सकेगा जिन्हें मैं इस समय आधुनिक-युग के संदर्भ में करना चाहता हूं। गीता में भी 'ज्ञान'-विज्ञान-सहितं' (pure knowledge and its technology) कह कर यह वार्ता उठाई गई थी।

आधुनिक भाषा में आत्मा के Spirit के अटल नियमों को समझ कर उनका मानव-हित में प्रयोग, इसी को मैं आत्मा की टेक्नोलौजी कहूंगा।

'टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट' के सिद्धान्त, चूंकि सार्वदेशिक, सार्वकालिक चिरंतन सत्ता का गहरा अध्ययन और मनन करने से समझ में आ रहे हैं इसलिये

वे पृथ्वी के किसी भी खण्ड के लिये एक से ही कल्याणकारी और सत्य हैं चाहे वह भारत हो या सोवियत रशिया। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने वाली जातियाँ हों या निरीश्वरवादी, कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। जिस तरह साइंस की टेक्नोलोजी विश्व-व्यापक (Universal) है उसी प्रकार 'टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट, आत्मा की ठेक्नोलोजी सम्पूर्ण मानवता के लिये है। मानव हित में प्रयुक्त होने पर यह सम्पूर्ण मानवता का कल्याण करेगी और याद रखिये ससार की नीति व्यवस्था या मोरल आर्डर (Moral order) टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट तथा टेक्नोलोजी आफ मैटर दोनों को मिलाकर बनता है (Technology of spirit and technology of matter) प्रकृति और परम पुरुष का पुत्र जीव, प्रकृति और आत्मा दोनों का कर्ज़दार है इसलिये—

(१) यह विश्व, प्रकृति और पुरुष दोनों के मिलने से बना है। मैटर और स्पिरिट पुरुष और प्रकृति दोनों के पारस्परिक प्रेमाकर्षण और मिलन से सृष्टि बनी है और चल रही है और आश्चर्यजनक रूप से व्यवस्थित है। मैं जो एक जीव हूं, मेरे अन्दर शरीर के रूप में प्रकृति या पदार्थ (Matter) है और चेतना के रूप में विशुद्ध आत्मा (Pure spirit) जो कि ईश्वर का चिदंश है। इसलिये मेरे ऊपर प्रकृति का भी ऋण है और पुरुष का भी। मैं भूत-व्यवस्था (material order) का भी कर्ज़दार हूं और अध्यात्म व्यवस्था का भी (spiritual order) मैं प्रकृति के अपने ऊपर उपकार को मानकर, प्रकृति को प्यार करुँगा और यह प्रकृति मेरे चारों ओर मेरे परिवेश के रूप में फैली हुई है। ईश्वर के सृष्टि-चक्र में, उनकी विराट् योजना (grand design) में जो कुछ भी परिवेश मुझ मिला है उसे मैं अपने प्रयासों से और भी अधिक सुन्दर और रम्य बनाने की कोशिश करूँगा। यही मेरा और प्रकृति का नाता होगा (Man and nature) मैं, परिवेश का, प्रकृति का संसार का, वस्तु-जगत का मान करूँगा, इसे माया या झूठा सपना कहकर अपमानित नहीं करूँगा। सृष्टि का तिरस्कार कर सृष्टि को अपमानित नहीं करूँगा। यह सृष्टि मेरे प्रभु की सबसे सुन्दर कृति है। मैं जीव को, अपने अन्दर प्रकृति और आत्मा दोनों के गुण लिये हुये हूं, अपने चारों ओर फैली हुई इस मनोरम सृष्टि को और भी अधिक मनोरम और कल्याण-मय बनाने में सहर्ष अपना योगदान दूँगा। क्योंकि प्रकृति का मेरे ऊपर ऋण है, मैं प्रकृति के प्रति आभारी हूं। यह आभार परिवेश को सुन्दर-तर, सुन्दर-तम बनाने के, प्रयास में प्रकट होगा। यही छोटे से चिदंश का इस सीमित परिवेश में अपना योगदान होगा और इस छोटे से योग-दान का विराट् सृष्टि चक्र के प्रवर्तन में पूरा-पूरा महत्व है। एक बड़ी विशाल इमारत बन रही है, उसमें एक छोटी सी ईंट भी महत्व अपनी

जगह पर रखती है उसके हटने पर पूरी इमारत के गिरने का भय रहता है। जैसे ख्रुश्चेव ने एक समय कहा था यदि हम इस इमारत में अपनी तरफ से कुछ ही ईंट लगा दें तो हमारा योगदान हो जायेगा। यह जो अगाध अनन्त सागर है इसमें बूंदे अलग-अलग भी अपना महत्व रखती हैं और सब मिलकर एक सागर बनती हैं। इसी तरह यह जो सृष्टि का विराट रथ युग-युग से अनन्त भूत से से अनन्त भविष्य तक चल रहा है. इस सृष्टि रथ को चलाने में छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा जीवन लग रहा है। हर जीव उसे चलाने में अपने श्रम, अपने प्रयासों का योगदान दे रहा है। विराट्-सृष्टि चक्र में सभी इकाइयां अपनी-अपनी जगह पर काम कर रही हैं। हर एक का महत्व है। इसलिये इस बात को समझकर, मैं अपने परिवेश को संसार को अधिक समुन्नत तथा सुन्दर बनाने का प्रयत्न करूँगा, जीव जहाँ भी खड़ा है, वही उसका परिवेश है। आप एक माली हैं तो बगीचा ही आपका स्वाभाविक परिवेश है। आप उसी में एक नया पौधा लगा दें। एक नये किस्म का फूल लगाकर उसे अधिक मनोरम बना सकते हैं। याद रखिये यह सृष्टिआपके पिता परात्पर की बनाई हुई अद्भुत कृति है, अद्भुत इमारत है। उनका बनाया हुआ भवन है। और पिता अपने उसी पुत्र से खुश रहता है जो उसके बनाये हुये घर की अच्छी तरह देख-भाल करता है उसे सुन्दर-स्वच्छ रखता है, उसकी सजावट में चार चाँद लगाता है और उसको और अधिक उन्नत करने के प्रयास करता है।

आपका परिवेश आपका प्यार मांगता है।

एक सावधानी अपेक्षित है जिसकी ओर मैं संकेत करता हूं। आप अपने परिवेश को सुन्दर बनाने का प्रयास करें लेकिन दूसरों को कष्ट पहुंचाकर, उनके परिवेश को बिगाड़कर यह कार्य नहीं होगा। आप यह ध्यान रखें आप यह किसके लिये कर रहे हैं। मात्र अपने लिये नहीं। आपका लक्ष्य सम्पूर्ण सृष्टि को रम्य बनाने का है इसमें आप योगदान करते हैं। आपका परिवेश केवल भौतिक दृश्यात्मक नहीं है अपितु आपके परिवेश में वे बहिरात्मायें भी हैं जो किसी न किसी प्रकार आपको घेरे हुये हैं। हमें सावधानी यह रखनी है कि अपना परिवेश सजाने के लिये हम दूसरी आत्माओं का परिवेश बिगाड़ न दें। अपना कमरा आप साफ कर रहे हैं, करिये लेकिन उसका कूड़ा-करकट उठाकर सामने वाली सड़क पर न फेंके। यह सोचकर कि इस सड़क से हमें क्या मतलब ? या अन्य बहिरात्माओं को मजबूर कर उन्हें कष्ट पहुंचाकर अपने मकान को उनसे सुसज्जित करवायें। अगर जीव अपना सीमित परिवेश सुधारने के लिये दूसरी आत्माओं के परिवेश की

परवाह न कर उन्हें कष्ट पहुंचाकर अपने परिवेश को उजाड़ता है तो वह विश्वात्मा से सीधी टक्कर मोल ले लेता है क्योंकि सम्पूर्ण विश्व उनका परिवेश है। यह एक अनधिकृत कुचेष्टा है। ऐसा व्यक्ति विश्वात्मा का कोप भाजन बन सकता है। इस प्रकार की चेष्टा जीव के लिये घाटे का सौदा बनेगी।

इसलिये आत्मा की टेक्नोलोजी का प्रथम सिद्धान्त है। आपका परिवेश आपका प्यार माँगता है।

टैक्नोलौजी आफ स्पिरिट का सिद्धान्त नं० २

एकता की अनुभूति या प्रेम

अध्यात्म का दूसरा अटल नियम यह है कि चेतना अखण्ड और एक है। आत्मा अपने विराटोत्तर अव्यय भण्डार (reservoir) से एक अखण्ड-धारा व सत्ता के रूप में विश्व के सम्पूर्ण वस्तु-जगत् में (matter) में परिव्याप्त हो रही है और वही एक अखण्ड-धारा सहस्त्र-सहस्त्र वर्षा की बौछारों की तरह जीव-देहों में बरस कर उतर रही है।

इसलिये हमें अपने मानव जीवन में उस अखण्ड चेतना की एकात्मता की अनुभूति करनी होगी। व्यक्त विराट् में अव्यक्त विराट् सत्ता की अनुभूति ही प्रेम है इसके आधार पर टैक्नोलोजी आफ स्पिरिट का दूसरा सार्वभौम सिद्धान्त सामने आता है—

"अनेकता में एकता की अनुभूति ही प्यार है। प्यार सत्य है, प्यार धर्म है—ईश्वर स्वयं प्यार के रूप में जीव-चेतना में प्रविष्ट है।"

चूँकि सारे ही शरीरों, समस्त सृष्टि में एक ही अखण्ड-चेतना धारा (cosmic spirit) बह रही है, उसी की नन्हीं-नन्हीं फुआरें चिदंश बनकर जीव के अन्दर गिर रही हैं तो मनुष्य के सामने कोई रास्ता नहीं रहा जाता कि वह जिस प्रकार अपने से प्यार करता है उसी प्रकार दूसरों से भी करे। क्योंकि वस्तुतः दूसरा कोई है ही नहीं। एक शरीर में स्थित आत्मा दूसरे शरीर में स्थित अपने को ही देख रही है, उसके सम्पर्क में आ रही है तो कोई कैसे अपने से घृणा या नफरत कर सकता है। परायेपन की भावना इसलिये उत्पन्न हुई क्योंकि भिन्न-भिन्न शक्लें और स्वभाव भिन्नता का भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं।

वस्तुतः हर इन्सानी ढांचे के अन्दर मैं स्वयं बैठा हुआ हूं। मेरी ही चेतना

दूसरे के अन्दर भी है जो अन्तर्यामी आत्मा है वही बहिरात्मा भी है। प्राणी एक दूसरे के अन्दर अपने ही प्रतिबिम्बों को देख रहे हैं। अनेकता में एकता को देखना ही प्यार है। ईश्वर की तौहीद निश्चय रूप से इन्सान की भी तौहीद है। यदि ईश्वरीय शक्ति एक एवं अखण्ड है तो मानव मात्र में भी वही एकत्व अखण्ड रूप से व्याप्त है। ईश्वर एक है इसके कहने का मतलब ही है कि इन्सान भी एक है। पाँच भौतिक चौखटों में एक ही चेतना तरंगायित हो रही है। हमारे सामने इसके अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाता कि हम हर आत्मा के साथ प्यार की अनुभूति करें। किसी से घृणा करना, द्वेष और नफरत के स्फुल्लिंग छोड़ना, अन्त में उसी तरह विनाश को आमन्त्रित करेगा जिस तरह बिजली की करेन्ट को नंगे हाथों से छूने की कोशिश करना। प्रेम अध्यात्म-व्यवस्था (spiritual order) का सबसे अनुलंघनीय नियम है। मनुष्य-मनुष्य के बीच, जाति-जाति के बीच, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच, मनुष्य और पशु-पक्षियों के बीच, मनुष्य और उसके परिवेश के बीच, मनुष्य और प्रकृति के बीच, जीव और सृष्टि के बीच प्यार की अव्यक्त चेतना धारायें बड़े प्रबल वेग से बहती हैं। जो लोग मूर्खता और हठधर्मी के वश होकर प्रेम की इन प्रबल शक्तिशाली धाराओं का उलटने की कोशिश करते हैं वे न केवल व्यर्थ श्रम करके पराजित होंगे बल्कि ईश्वरीय आध्यात्मिक नियमों के अनुसार (spiritual laws) विनष्ट हो जायेंगे। एक छोटी सी बात है यदि कोई व्यक्ति पास-पास खड़े मकानों में से एक मकान में आग लगा देता है तो क्या वह आग उन्हीं में से एक, उसके मकान को नहीं पकड़ लेगी। वैमनस्य और घृणा के विचार अन्त में उन्हें फैलाने वाले पर ही उलट पड़ते हैं और उनका विनाश कर देते हैं।

ईश्वर अपने उस ज्ञानी पुत्र को प्यार करता है जो ईश्वर के नाते समस्त विश्व को प्यार करता है। जाति, वर्ण, धर्म और स्वार्थों के वर्ग भेद को भुलाकर समस्त विश्व के प्रति निर्वैर अद्रष्टा हो चुका है। ईश्वर उसे प्यार नहीं करता जो ईश्वर का नाम लेकर दूसरों के ऊपर तलवार लेकर टूट पड़ता है और अपने छोटे-मोटे तुच्छ स्वार्थों और अहंकारों के विवादों में ईश्वर को घसीटना चाहता है ईश्वर उनसे दूर, बहुत दूर है वह उनमें फँसने वाला नहीं है।

प्रोटोकाल या प्रेम का शिष्ट-रूप

प्रेम आत्मा का तेज है। इस आन्तरिक तेज का प्रकाश जीवन में प्रोटोकाल और प्यार के शिष्ट नियमों के रूप में फैलेगा। प्रोटोकाल के नियम न केवल मानव-मानव के बीच बल्कि मनुष्य और पशु-पक्षी के बीच, मनुष्य और प्रकृति के बीच

(परिवेश) भी प्रकट होगा। प्रोटोकाल (Protocal) के नियम मानव-मानव के बीच, सम्मान और आदर, मैत्री, दूसरों को प्रसन्न करने की कला व करुणा के रूप में प्रकट होंगे।

प्रोटोकाल व प्यार के नियम न केवल मानव समुदाय में अपितु सम्पूर्ण प्राणी-जगत् के साथ लागू होंगे। हम उन्हें वही आदर और प्यार देंगे जो हम मनुष्य साम्प्रदाय को देते हैं। वनस्पति जगत् के साथ भी हमारा लालन-पालन और करुणा-मिश्रित प्रोटोकाल चलेगा। हम जा रहे हैं बगीचे में तो यह नहीं कि व्यर्थ फूलों को मसलते हुये जा रहे हैं। पौधों को कुचल रहे हैं। लताये उखाड़ रहे हैं। यह वनस्पति-जगत् के प्रति व्यर्थ की हिंसा और प्रोटोकाल के नियमों के खिलाफ है।

पशुओं के प्रति प्रोटोकाल (शिष्ट व्यवहार) उनकी प्रकृति के अनुकूल होगा। हिंसक अहिंसक सभी तरह के जानवर ससार में रह रहे हैं। अगर साँड दनदनाता हुआ हमारे सामने से जा रहा तो हम चुपचाप उसके रास्ते से हट जायेंगे। उसके गले में माला नहीं पहनाने जायेंगे। पशु-पक्षी जगत् तक हमारे प्यार का प्रकाश पहुंचेगा। यह नहीं कि हम व्यर्थ में पशु-पक्षियों को मार रहे हैं। पशु-पक्षियों के साथ उनकी प्रकृति के अनुसार व्यवहार किया जायेगा और यथोचित लालन-पालन। उसी प्रकार सम्पूर्ण मानव समुदाय में अन्तर के प्रेम का एक ही रंग है। एक ही शुभ्र ज्योति है। लेकिन वह मानवीय रिश्तों के प्रोटोकोल में बदलती हुई भिन्न-भिन्न रंग धारण कर लेती है। प्रेम वही है जो हृदय को हृदय से जोड़ता है, लेकिन कहीं वह दाम्पत्य प्रेम की शक्ल ले लेता है, कहीं वात्सत्य का तो कहीं दो मित्रों के बीच की मित्रता का तो कहीं भाई-बहिन के प्रेम का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि मूल तत्व प्रेम सबसे एक ही है—किन्तु वाह्य आचरण में उसका रूप परिवर्तित हो जाता है। इस तरह प्रेम ही प्रोटोकाल के नियमों में ढ़लता हुआ शिष्ट और मधुर आचरण का रूप ले लेता है। इस तरह आत्मा की टैक्नोलौजी में एक सिद्धान्त वह सामने आता है –

"अनेकता में एकत्व का अनुभव ही प्यार है और यह प्यार प्रोटोकाल के नियमों में ढलता हुआ बहता है। प्रोटोकाल प्यार का व्यवहारिक रूप है (Protocal is applied love) जब हम प्यार को, सम्बन्धों या रिश्तों में ढालते हैं तब वह प्रोटोकाल का रूप धारण कर लेता।

स्वतन्त्र-चिन्तन

"टैक्नोलोजी आफ स्पिरिट" का तीसरा सार्वभौम नियम "स्वतन्त्र चिन्तन" के रूप में सामने आता है। चेतना ज्ञानमयी है। ज्ञान आत्मा का विशिष्ठ तत्व

है । शुद्ध आत्मा या spirit तो ज्ञानमयी है ही, जीव चेतना (बहिश्चेतना) भी ज्ञानात्मक है । बहिर्जगत का ज्ञान या अनुभव ही उसका लक्ष्य होता है । अन्त: चेतना के रूप में जब यह बहिरोन्मुखी नहीं होती अपने ही में केन्द्रित होती है तब भी चेतना का मूल रूप ज्ञानात्मक होता है । यह स्वयं अपने अस्तित्व का ज्ञानात्मक अनुभव करती है और जब बाहर की ओर बढ़ती है (Projects) तो वाह्य जगत् का ज्ञान प्राप्त करती है ।

चेतना के विशुद्ध ज्ञानात्मक रूप को दृष्टिगत रखते हुए हमें मानवीय-जीवन में एक ऐसी शिक्षा-पद्धति का विकास करना चाहिये जिसमें मानव-मन ज्ञान या समझ (Understanding) के आधार पर समुन्नत मानव-जीवन का निर्माण कर सके । इस बात का ख्याल करके कि मनुष्य की चेतना ज्ञानमयी है और किसी भी वस्तु का ज्ञान-प्राप्त करके आनन्दित होती है । हमें बालकों की शिक्षा में ज्ञान या समझ या understanding को लक्ष्य बनाना पड़ेगा और यह तभी सम्भव होगा जब हम बच्चे को स्वतन्त्र चिन्तन (independent thinking) करने की आदत डालेंगे । इसकी ट्रेनिंग देंगे । जिन तरीकों से मानव शिशु ज्ञान प्राप्त कर सके, विषयों की समझ-बूझ (understanding of subjects) प्राप्त कर सके वही तरीके कल्याणकारी होंगे । ज्ञानात्मक चेतना को मानव जीवन में खुलकर निखरने देने का सबसे अच्छा तरीका गम्भीर और स्वतन्त्र चिन्तन है । स्वतन्त्र और गहरा चिन्तन, ये सभी दो टॉर्चें हैं जिनके प्रकाश में अगम से अगम रास्ते आलोकित हो उठते हैं ।

अफसोस की बात तो यह है कि जितने भी परम्परागत रिलीजन (धर्म) हैं वे श्रद्धा, विश्वास, फेथ और ईमान की बातें तो करते रहे हैं लेकिन स्वतन्त्र चिन्तन से कतराते रहे हैं क्योंकि उनको फैलाने वाले जानते हैं कि उनके बनाये हुए कल्पना के हवा महल, काल्पनिक मान्यतायें स्वतन्त्र चिन्तन की प्रखर धार पर चढ़कर एक मिनट में कट कर गिर पड़ेगी । ये स्वर्ग, ये भूत, ये प्रेत, ये दोजख ये अजाब, ये जन्नत, ये अप्सरायें, ये देवदूत, चमत्कार, इनकी हस्ती स्वतन्त्र चिन्तन की अग्नि में एक क्षण में जलकर राख हो जायेगी । फिर वह सिद्धान्त कितनी ही खूबसूरती से किसी भी रिलीजन में क्यों न पेश किया गया हो । जन्नत के बारे में गालिब ठीक कहते हैं—"हमें मालूम है जन्नत की हकीकत, दिल के बहलाने को गालिब ख्याल अच्छा है" ।

इसलिये मैं यही ठीक समझता हूं कि आप स्वयं अपने जीवन में स्वतन्त्र चिन्तन की आदत डालें और अपने बच्चों को स्वतन्त्र चिन्तन करने की ओर प्रेरित

करें। मानव-आत्मा को अपने ज्ञान रूप को समझने का अवसर दें। कोई भी बात यदि मानवीय मेधा को (human intelligence) खटकती हो तो तुरन्त अपनी विचार शक्ति का प्रयोग करना चाहिये। कोई भी बात केवल मात्र इसलिये ग्राह्य नहीं होनी चाहिये क्योंकि वह फलाँ किताब, पुस्तक अथवा ग्रन्थ में लिखी है। किताबें भी दूसरे व्यक्तियों के द्वारा किया हुआ चिन्तन है जो अंग हमारी (understanding) बुद्धि को स्वीकृत नहीं होगा, जो बात हमारे दिमाग में न बैठे उसे हम केवल इसीलिये ग्रहण नहीं कर सकते क्योंकि वह किसी किताब या ग्रन्थ में लिखी है। यदि वह मानवीय बुद्धि (human intelligence) को खटकती है तो स्वतन्त्र चिन्तन के द्वारा सत्य की खोज होनी चाहिये। आज जो साइन्स की टेक्नोलोजी में खोज और प्रयोग के तरीके चले हैं वहीं 'टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट" में भी चलेंगे। तभी हम छूंछी और भद्दी अटकलबाजियों के जगल से मानव की ज्ञानमयी चेतना को बाहर निकाल सकेंगे जिनमें कि अन्ध विश्वास और पाखण्ड से भरे हुए धर्म के आडम्बरों ने उसे फँसा रक्खा है। यदि परात्पर की कृपा का आव्हान और स्वतन्त्र चिन्तन का आधार हो तो मानवीय-चेतना के अन्दर से ज्ञान के सोते फूट पड़ेंगे क्योंकि शुद्ध चेतना स्वयं ज्ञानात्मक है। सबसे महत्वपूर्ण और महान् ग्रन्थ यह संसार है और सबसे महान् धर्म-ग्रन्थ मनुष्य की आत्मा स्वयं है। हम जो भी अन्य लिखित ग्रन्थ पढ़ेंगे उनका उद्देश्य संसार और आत्मा को समझने के लिये ही हो सकता है। इसीलिये आवश्यकता इस बात की है कि बालक को शुरू से ही किसी भी विषय पर स्वतन्त्र चिन्तन करने की आदत डालनी चाहिये। किसी भी पढ़ी या सुनी बात को मानवीय बुद्धि की टार्च के प्रकाश में देखकर तब ग्रहण करना सीखना होगा। वरना अन्ध विश्वासों और काल्पनिक मान्यताओं के जंगल में वह खो जायगा।

एक बात और रिलीजन ने मनुष्य को गलत सिखाई है। पहले रिलीजन अपनी-अपनी धारणाओं और मान्यताओं को लेकर मैदान में आये फिर उन मान्यताओं को मानने या न मानने वालों के बीच में वर्ग भेद किया। फर्क पैदा किये और उन्हें अलग-अलग वर्गों में करके लड़वा दिया। हज़ारों-हज़ारों मान्यताऐं इन तथाकथित रिलीजनों के माध्यम से फैली हैं और इन मान्यताओं को मानकर मानवता का एक खण्ड दूसरे खण्ड को, जो दूसरी मान्यताओं को मानता है उसका विरोधी होता गया। कुछ मान्यताओं को मानकर कुछ लोग हिन्दू बन गये। कुछ मान्यताओं को मानकर कुछ लोग मुसलमान बन गये। कुछ दूसरी मान्यताओं को मानकर ईसाई अथवा पारसी बन गये। अपनी ही मान्यताओं को सही मानकर ये लोग दूसरों को गुमराह मानने लगे। ये रिलीजन मानव-आत्मा को इतना कुंठित

क्यों कर रहे हैं। मनुष्य की आत्मा के मूल-भूत गुणों को न समझ पाने के कारण सारी मानवता इतने-इतने वर्गो और विदेशों के दलदल में जा फँसी है।

आत्मा की असीमता और व्यापकता

(Transcendental spirit) जिसे आप परात्मा कहते हैं वह अनन्त अव्यय चित्-शक्ति असीम विराट् और अक्षय है। वह देशकाल से परे अनिर्दिष्ट भूत से अनिर्दिष्ट भविष्य तक बह रही है। ऐसी अनन्त चेतना के चिदंश हैं हम। हम असीम के बेटे हैं, विराट् के पुत्र है। हमें अपने को किसी भी तुच्छ सीमा में नहीं बाँधना चाहिये। चाहे वह भोगोलिक सीमा हो, चाहे देश-प्रान्त, जाति भाषा या धर्म की सीमायें हों ये सभी चीजें मनुष्य की आत्मा को बन्धन में डालने वाली और सीमित करने वाली हैं। जब मनुष्य की चेतना में ईश्वरत्व का गुण है, वह व्यापक ब्रह्म की औलाद है तो वह अपनी चेतना को क्यों किसी सीमा के डिब्वे में वन्द करे जबकि उसकी चेतना विराट् के हर छोर को छू सकती है।

व्यापक ब्रह्म की औलाद होने के कारण मनुष्य की चेतना भी विराट् और व्यापक है। शरीर में कार्य (operate) करती हुई भी वह शरीर में आबद्ध नहीं है। वह दायरों में वँधने वाली चीज नहीं है। रिलीजन के, जाति के, राष्ट्रीयता के, प्रान्तीयता के, दायरे मनुष्य की व्यापक और विराट् चेतना को सीमित करने के गलत तरीके हैं। चेतना इन सबमें आवद्ध होने वाली नहीं है। मनुष्य की आत्मा, जाति, धर्म, वर्ग, राष्ट्रीयता आदि से बहुत ऊंची चीज है। वह इन सब घेरों में बँधने वाली नहीं है। सीमाओं को वेधकर वह दूर दूर तक अनन्त दिशाओं में अनन्त कालों में बह रही है। इसलिये मानव-जीवन में तुम्हें अपनी चेतता को इन छोटी-छोटी सीमाओं में कैद नहीं करना चाहिये। बल्कि सम्पूर्ण मानवता और विश्व के साथ अपने को एक समझना चाहिये। बल्कि तुम उससे भी बड़े हो। उससे भी अधिक हो। तुम अनन्त अछोर परात्पर चेतना से एकाकार हो।

आत्मा का अनन्त पराक्रम

अव्यक्त अखण्ड आत्मा महान शक्तिशाली है या कहना चाहिये वह स्वयं शक्ति है प्रचण्ड शक्ति। आत्मा का निहित गुण प्रेम, आनन्द तथा ज्ञान और शक्ति है। यह विराट् संसार परम-आत्मा (Cosmic spirit) के अन्दर छिपी हुई प्रचण्ड शक्ति का प्रकटीकरण है। जरा सोचिये तो सही, उस विराटोत्तर शक्ति की कल्पना तो कीजिये, जिसका प्रबल पराक्रम इस सम्पूर्ण संसार के रूप में प्रकट हो रहा है।

ये गगन चुम्बी पर्वत, ये उत्ताल तरंगों वाले महासागर, यह निस्सीम गगन उसमें तैरने वाली मेघ मालायें, ये विद्युत भण्डार, ये हवायें, ये तूफान, यह वनस्पति, ये ग्रह नक्षत्र, ये तारे, ये सूर्य सब उसी अमित पराक्रमी परम-आत्मा (Supreme spirit) की अद्भुत शक्ति के विस्फोट हैं।" अमित-विक्रम एवं पुरुषों मतो में" एक जीव के रूप में हमारे अन्दर भी चित्शक्ति का (स्पिरिट का) परमात्मा का एक अंश (चिदंश) आत्मा के रूप में उतरा है। आत्मा अतुल विक्रम-शालिनी, अनन्त शक्ति रूपा, परमात्म शक्ति की किरण है उसका dynamism, पराक्रम हमारे अन्दर भी उतरा है। हमारी आत्मा का तेज, हमारी आत्मा की निहित शक्ति कर्म के रूप में प्रकट हो रही है। हम स्वय शक्ति के पुत्र हैं।

अगर विराट्-चेतना की शक्ति इतनी प्रचण्ड है उसका dynamism इतना बड़ा चमत्कार कर सकता है कि उसका अन्तर्निहित पराक्रम इस अनन्त असीम अछोर सृष्टि के रूप में प्रकट हो रहा है तो छोटे चिदंश के अन्दर अन्तर्निहित शक्ति भी उसी तरह के गुल खिला सकती है। उसने बड़े पैमाने पर नहीं तो अपने सीमित पैमाने पर ही सही। नन्हा चिदंश (spark of point) क्या नहीं कर सकता? अपने कर्मों के द्वारा वह भी सृष्टि-निर्माण कर सकता है और कर रहा है। अगर परमात्मा इस सृष्टि का बडा इन्जीनियर है तो जीव भी अपनी सीमित क्षमताओं को लेकर उसके छोटे-छोटे टैक्नीशियन अवश्य हैं।

अगर वह बड़ी अनन्त आत्मा, अपनी क्षमता के द्वारा सृष्टि निर्माण कर सकती है। अपने प्रचण्ड पराक्रम (dynamism) के द्वारा तो यह जीव भी अपनी क्षमताओं के द्वारा, अपनी शक्ति के द्वारा जो कार्य के रूप में प्रकट हो रही है, नव निर्माण कर सकती है।

परमात्मा के विराट् सृष्टि-कर्म में (creation) हमें अपनी क्षमताओं के द्वारा योगदान देना है। अपने कर्मों को उनके महान् कर्म (creation) में लगाना है। इस प्रकार हज़ारों हज़ारों व्यक्तियों के छोटे-छोटे जीव टैक्नीशियनों के योगदान करने पर उस विराट् क्षमता वाले महान् इन्जीनियर की यह महान् प्रोजेक्ट (सृष्टि) बड़े ठाठ के साथ सम्पूर्णता की ओर अग्रसर होने लगेगी।

विराटोत्तर सत्ता (Supreme being) की चेतन-शक्ति पोज़िटिव और नैगेटिव दोनों रूपों में प्रकट हो रही है। वह सृजनात्मक और विध्वंसक दोनों है। एक तरफ विराट के स्तर पर (cosmic level) सृजन चल रहा है—नये-नये पेड़ पौधे उग रहे हैं, नये-नये प्राणी अस्तित्व में आ रहे हैं। दूसरी तरफ अनावश्यक

पदार्थों का विध्वंस हो रहा है। भूखण्ड टूट टूट कर विलीन हो रहे हैं। तारे गिर रहे हैं, ग्रहों में प्रलय आ रही है। असंख्य असंख्य प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं, बड़े बड़े वृक्ष धराशायी हो रहे हैं।

यह विध्वंस और विनाश भी सृजन की भूमिका है। नया मकान बनाने से पहले पुरानी बिल्डिंग को गिराना पड़ता है। मैदान साफ करना पड़ता है। विनाश के द्वारा प्रस्तुत वस्तुओं का वर्तमान रूप नष्ट हो जाता है वे अपने मूल तत्वों में विलीन हो जाती हैं और पुन: नवीन रूप में प्रकट होती हैं। विनाश और सृजन, पोज़िटिव और नैगेटिव दोनों ही तरीकों से सृष्टि पुर्ननवीन होती रहती है उसका सौंदर्य और यौवन अक्षय बना रहता है। इसी प्रकार जीव में भी विराट् की सृजनात्मक और विध्वंसात्मक शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं। विराट् की तरह वह भी जीव का नव निर्माण कर सकता है। अगर विराट् ने अपनी सृजनात्मक शक्ति के द्वारा इस सृष्टि का निर्माण कर दिखाया तो उसका चिदंश (spark of spirit) कुछ कम जौहर नहीं कर गुज़रा है। मानवीय सृष्टि, मानवीय निर्माण अपौरुषेय सृष्टि कार्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है। अगर महाशक्ति ने ग्रह, नक्षत्र और लोक निर्माण करके डाल दिये हैं तो उसके चिदंश ने (छोटे टुकड़े) भी गाँवों, नगरों, बस्तियों और निवासों का निर्माण अपने पराक्रम से कर डाला है। अगर विराट शक्ति ने समुद्रों, नदियों, बादलों और झीलों के रूप में जल के अक्षय श्रोत प्रकट कर रक्खे हैं तो उनके छोटे से अंश जीव ने जो उनका ही पराक्रम रखता है बाँध, कुएँ, जलकूप, सरोवर, नहरें और नाले बनाकर पानी का पूरा इन्तजाम कर रक्खा है। यह मानव जीव सच ही अपने विराट् पिता का योग्य पुत्र है। वह आकाश में विश्व विद्युत को छटा दिखा सकता है। बादलों की रगड़ से बिजली की कौंध और लपक उत्पन्न कर सकता है तो यह भी पानी के विशाल रैज़रवॉयर (reservoir) बनाकर जल का अगाध भण्डार तैयार कर सकता है—प्रबल वेग से गिरती हुई जल की धाराओं को नियन्त्रित (harness) कर विद्युत् उत्पन्न कर सकता है। पावर हाउस बनाकर, उसे ठोंक पीट कर एक स्थान पर एकत्रित कर सकता है। तारों पर दौड़ा कर उसे घर-घर में भेज सकता है। उससे प्रकाश उत्पन्न कर सकता है उसे तरह तरह से मानव के उपयोग में ला सकता है। यही है कर्म की शक्ति, दैवी वरदानों (gifts) को मनुष्य के उपयोग में ढालने की महान् कला। साइंस की टेक्नोलौजी वास्तव में आत्मा की ही टेक्नोलोजी है।

The technology of science is really the technology of spirit.

The technology of action

मनुष्य की कर्मशक्ति उसका पराक्रम (dynanism) विश्व के कल्याणकारी और पालन कर्मों में ही प्रयुक्त होनी चाहिये। विध्वंस का कार्य विराट् का है, अंश का नहीं। हम परमात्मा के अंश होने के नाते उसके सृष्टिकर्म में उसके में अपने सम्पूर्ण बल से, शक्ति से भाग लेंगे। अपना नन्हाँ सा योगदान करेंगे, उसकी पालनात्मक, सृजनात्मक क्रियाओं में भाग लेंगे, उसकी योजनाओं को बढ़ायेंगे ताकि विश्व के कल्याण का, आने वाली वर्तमान पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त हो। हम अपने कर्मों के द्वारा विश्वात्मा का अर्चन करेंगे और समस्त सृष्टि के लिये कल्याणकारी कामों में अपने प्रयत्नों को जोड़ेंगे। विध्वंस और विनाशशील कार्य हमारी कार्य-परिधि से बाहर ही रहेगें। क्योंकि यह कार्य विराट् का है। हम जीव पुत्रों का जन्म सृष्टि के निर्माण कार्य में योगदान देने का है न कि सृष्टि के विध्वंस में भाग लेना। विराट् अगर विनाश करता है तो साथ साथ उन्हीं चीजों को लेकर नवीन निर्माण भी कर सकता है। लेकिन मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता है। वह अगर अपने क्षुद्र शारीरिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये किसी जीवित व्यक्ति को मार बैठे तो क्या उसे फिर से जीवित कर सकता है। अत: मानव जीवन का लक्ष्य सृजन तो हो सकता है लेकिन विनाश नहीं।

अत: परमात्मा की ही अन्तर्निहित शक्ति के आधार पर उसकी dynamic पराक्रमी परम शक्ति-शाली किरण के जीवित-व्यक्ति में उतरने के कारण टेक्नोलोजी आफ स्पिरिट का यह प्रमुख सिद्धान्त सामने आता है कि मनुष्य को अपने कर्मों के द्वारा विराट् के सृष्टि कर्म में योगदान देना है। लोक के लिये कल्याणकारी सृजनात्मक कार्यों में भाग लेना है। नव निर्माण करना है। विराट् की यही प्रेरणा है, विराटोत्तर शक्ति का जीव-पुत्र के प्रति यही निर्देश है।

महाशक्ति कहती है

तुम शक्ति के पुत्र हो। तुम विश्व के निर्माणात्मक कार्यों में जमकर भाग लो। क्योंकि यह इमारत मेरी बनाई हुई है। मेरे पुत्र होने के नाते इस सृष्टि की इमारत की देख-भाल, रख-रखाव और सुन्दर स्वच्छ रखने की व्यवस्था में भाग लेना तुम्हारा कर्तव्य है। जो पुत्र पिता की जायदाद की रक्षा और विकास करते हैं, पिता उन्हीं से खुश होता है। पिता उनसे खुश नहीं होता जो उसकी जायदाद के प्रति लापरवाही दिखाते हैं। उसकी रक्षा और सुसज्जित करने के काम से जी चुराते हैं। और याद रक्खो यह सृष्टि मेरी जायदाद है। तब मेरे पुत्रों बताओ तो सही तुम्हारा क्या कर्तव्य है जरा सोचो तो सही।"

इस तरह कर्म की (Technology) टैक्नोलोजी समझिये।

एक तरफ विराटोत्तर शक्ति इस विराट शक्ति के रूप में स्वयं प्रत्यक्ष हो रही है, विराट् की चेतना, विराट् का मन, सुनियोजित ढंग से सृष्टि का सृजन और पालन कर रहा है और दूसरी ओर जीव के रूप में वह अपने ही विराट् मन का (Cosmic mind) का एक बिन्दु रख देता है। दूसरी तरफ उसके परिवेश के रूप में विराट् प्रकृति स्वयं बैठी है। कुण्डली मार कर घेरा डालकर। अब यह छोटा सा भगवान् अपने मन की शक्ति को समन्वित कर प्रकृति में निहित नियमों को समझकर उनका मानव हित में प्रयोग कर डालता है। इस तरह चेतन जीव के रूप में स्वयं भगवान् अपनी पसन्द के अनुसार अपनी सृष्टि को सजाने और सँवारने तथा सुधारने में लगे हैं।

विराट् पुरुष ने संसार में तरह तरह की जड़ी-बूटियाँ (Herbs) औषधियाँ और वनस्पतियाँ पैदा की हैं।

जीव-पुत्र इन वनस्पतियों के गुण-दोषों की परख करके, औषधियों और दवाओं का निर्माण करके मानव-हित में प्रयुक्त करता है। यह हुआ चिकित्सा विज्ञान। चिकित्सा विज्ञान एकदम टैक्नोलोजी आफ स्पिरिट है। (आत्म विज्ञान)। विराट् पुरुष ने अपनी तरफ से वन्य प्रकृति में हर तरह के बीज डालकर तरह-तरह के पौधे उगा डाले। जीवपुत्र ने अपनी खोज और परख से उन्हें चुना, खेत तैयार किये, फसलें उगाईं। फसल में पैदा हुये खाद्य पदार्थों को खाद्य वस्तु के रूप में प्रयुक्त किया। ये भुट्टे, ये गेहूं, ये धान, ये दालें, ये फल विराट की विभूति का जीव-पुत्र के द्वारा सुन्दर मानवीय उपयोग है। कृषि-विद्या, सीधी सादी आत्मा की टैक्नोलौजी है। ये जो कृषि वैज्ञानिक तरह-तरह के प्रयोग करके नये नये ढग के गेहूं और धान का श्रेष्ठ किस्में, मक्के की विभिन्न उपजाऊ जातियाँ निकाल रहे हैं, याद रखिये ये परमात्मा के सबसे बड़े योगी हैं। वैज्ञानिक महान् योगी होता है क्योंकि वह विराट् पुरुष के निर्माण कार्य में अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ लगा हुआ है।

ये बड़े-बड़े संगीतकार जो फिल्मों में नई-नई लोकप्रिय धुनों के निकालने में लगे हुये हैं वे भी विराट् पुरुष के टेक्नीशियस हैं। यदि विराट् पुरुष ने ध्वनि दी है तो ये अपनी मेहनत और बुद्धि बल से उसे और हृदयग्राही बनाने में लगे हुये हैं। उनके प्रयासों से जितना ही ज्यादा लोक रंजन होता है विश्वात्मा उनसे उतना ही प्रसन्न होता है।

वैज्ञानिक विराट्-पुरुष के सक्रिय मस्तिष्क हैं। उनके माध्यम से विराट् की विस्तृत योजनायें मूर्त रूप धारण करती हैं। वे सही अर्थों में योगी हैं। आत्म विज्ञान (Technology of spirit) के सच्चे ज्ञाता। मैं वैज्ञानिकों, स्वरकारों, लेखकों, विचारकों, चिन्तकों, नई-नई खोजों में लगे हुये मेधावियों का अभिनन्दन करता हूं। सही अर्थों में आत्म विज्ञान उन्हीं ने समझा है और वे मानव हित में उसका प्रयोग भी कर रहे हैं। वे विराट् के सृष्टियाँ कर्म में सच्चे सहायक (assistants) और विराट् की विभूति हैं अन्ततोगत्वा इन्हीं महान आत्माओं को प्राप्त होंगी। चाहे जीवन काल में चाहे उसके पश्चात्। किसी भी देश के विधान, संविधान, कानून ये सभी धर्मशास्त्र हैं क्योंकि ये मानव व्यवहार को लोक हितकारी धाराओं में ढालने के प्रयास हैं। संविधानों, विधानों और कानूनों के रूप में और कोई नहीं विराट-पुरुष का मस्तिष्क ही बोलता है, क्योंकि नीति व्यवस्था का प्रणेता वह स्वयं है।

समष्टि-कर्म

All for one, one for all
सब आप के लिये हैं, आप सबके लिये हैं

अब मैं आपको आत्मा की टैक्नोलौजी का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त समझाता हूँ जिसके समझने पर आप का सीधा रिश्ता विश्वात्मा-प्रभु से जुड़ जायगा। स्पिरिचुएल आर्डर का वह नियम है—

All for one, one for all.

"आप सम्पूर्ण विश्व के लिये हैं और सम्पूर्ण विश्व आप के लिये है"।

हमने आप को बताया था सम्पूर्ण विश्व में एक बिन्दु के समान ही सही जीव की स्थिति है। सारी समष्टि एक जीव, एक इकाई के लिए कार्य कर रही है। सारी सृष्टि, सारा विराट् मिलकर एक जीव-शिशु का पोषण कर रही है और वह एक इकाई (जीव) भी सारी समष्टि के लिये कार्य कर रही है, जाने अनजाने, चाहे वह इस बात को समझे या न समझे। अनजाने में सभी समष्टि-कर्म में लगे हुए हैं हालांकि वे इस प्रकार इस बात को नहीं जानते हैं। समष्टि कर्म अनजाने ही हो रहा है। हर इकाई विश्व के लिये काम कर रही है और सारा विश्व एक इकाई के लिए। अगर आप सूक्ष्म-दृष्टि से देखेंगे तो समझेंगे एक किसान खेत में मेहनत करता है, फसलें उगाता है, गेहूँ बोता है, मक्का बोता है। फसल उगती है जितना अनाज बोया जाता है उससे कई गुना होकर खलिहान में आता है। इस सारे अनाज

को क्या वह खुद अकेले खा जाता है उसकी ज़रूरत से ज्यादा गेहूं जाता है। बाज़ार में वहाँ से जाने कितने परिवारों में पहुँचता है। कुछ ठीक है, साथ ही खेत में रहते-रहते ही जाने कितनी चिड़ियाँ, कीड़े जानवर उससे भरण पोषण पाते हैं कुछ गिनती है ?

एक माली एक आम का या पपीते का पौधा लगाता है कालान्तर में उसके बड़े होने पर न जाने कितने आम उसमें निकलते हैं क्या वह सारे आम माली खुद ही चट कर जाता है। अरे नहीं भई ! आम तोड़े जाते हैं, झब्बे के झब्बे भरकर मण्डी जाते हैं। ठेले पर मोहल्ले मोहल्ले बिकते हैं। सैकड़ों आदमी उन आमों को खाकर खुश होते हैं, दसियों घरों में अचार पड़ते हैं, दसियों घरों में मुरब्बे।

इस प्रकार एक आदमी पेड़ की सेवा करता है और सैकड़ों विश्व मानव तृप्ति होते हैं। यही है विराट् भगवान का महान चक्र (grand design) जिसमें एक व्यक्ति का श्रम प्रतिफलित होकर सैकड़ों सैकड़ों को तृप्त करता है।

खाने की चीजों को छोड़ दीजिये, मान लीजिये एक धनवान व्यक्ति ने सड़क के किनारे एक सुन्दर बगीचा लगा रक्खा है. वह लाख तार (Barbed wires) चारों ओर लगा ले क्या वह फूलों की खुशबू को चारों ओर फैलने से रोक सकता है। उस खुशबू को सूंघकर लोगों को प्रसन्न होने से रोक सकता है। रात की रानी आप के घर लगी है और महकती है लेकिन उसकी तेज़ खुशबू चारों ओर पड़ोस के घरों में घुस जाती है, बहुत से आदमी उस खुशबू से आनन्वित हो उठते हैं। कौन उन्हें आनन्दित होने से रोक सकेगा। इस तरह एक व्यक्ति के कर्म का विस्तार दूर-दूर तक हो रहा है। हो सकता है करने वाला इस प्रक्रिया को न जानता हो लेकिन विश्वात्मा का नियम यही है। ईश्वर के ग्रैन्ड डिजाइन में सृष्टि-चक्र में एक एक इकाई की क्रियाओं का फल दूर दूर तक हजारों हजारों लोगों तक पड़ता है। एक छोटी सी चीज़ को लेकर हम पूरे विश्व से बँधे हुए हैं। अनन्त अनन्त प्राणियों से हमारे सम्बन्ध जुड़े हुए हैं क्योंकि-……

एक विराट् जीवन जिया जा रहा है और हम उस विराट् जीवन के अंग हैं integral part हैं। यह कलम जिससे आप लिख रहे हैं देखिये यह मेड इन जापान है। इस कलम के इस्तेमाल करते ही आपका सम्बन्ध उन श्रम जीवियों से जुड़ गया जो जापान की पैन-फैक्ट्री में काम करते हैं।

आप यह बाटा का जूता पहन रहे हैं इस जूते के पहनते ही आप का सम्बन्ध उन सब कारीगरों से जुड़ गया जो यह जूता बनाने में लगे थे। बाटा कम्पनी स्थापित

करने वाले उस बाटा से जुड़ गया जिसने अपना रुपया और अक्ल उस फैक्टरी में लगाई। उन बेचारे जानवरों से जुड़ गया जिन्होंने आप की चरण-पादुका बनाने के लिये अपनी भौतिक देह अर्पित की, दुकान के उन सेल्स मैन, कलर्क आदि कामगरों से जुड़ गया जो बाटा की दुकान पर काम करते थे। देखा आप ने एक जूता आप का सम्बन्ध कहाँ कहाँ तक किस किस से आप का सम्बन्ध जोड़ता है। अब यदि बाटा की फैक्टरी के कुछ मजदूर भूखे हैं और हड़ताल करते हैं तो आप का क्या कर्तव्य होता है ? क्या आप के दिल में उनके लिए दर्द नहीं उठेगा ? अरे दूर मत जाइये यह जैसूर की कंघी जिससे आप अपने बाल काढ़ रही हैं—यह आप के प्रिय बँगला देश से आप का सम्बन्ध जोड़ रही है। ये कारीगर जो जैसूर की कंघियाँ तैयार कर आप के लिये भेजते थे उनके दुख-सुख, जंगे-आजादी क्या आप की अपनी नहीं हैं। बहुत सूक्ष्म, बहुत अदृष्ट-तारों से एक एक मनुष्य, एक एक प्राणी सम्पूर्ण विश्व से बँधा हुआ है। ये तार विश्वात्मा के बनाये हुए हैं। सम्पूर्ण विश्व चक्र में उसकी एक स्थिति है। जो जहाँ है वहीं जम कर विश्व के समष्टि-कर्म में मदद दे रहा है। एक मशीन है विराट् मशीन जिसमें छोटे से छोटा पुर्जा अपनी जगह पर कार्य कर रहा है। पूरी मशीन के चलाने में योगदान दे रहा है। हम लाख छोटे चिदंश हैं लेकिन हमारे ही नन्हें हाथों पर विराट् का यह रथ, यह चक्र टिका है। हम कैसे अपनी पोजीशन से हटकर भाग सकते हैं हमें मजबूती से अपनी वह स्थिति संभालनी होगी जो विराट् ने हमें दी है। हमें खुशी से, बड़े साहस से, बड़े आनन्द से वह रोल (role) करनी होगी जो अदृष्ट शक्तियों से प्रेरित परिस्थितियाँ हमारे सामने लाकर प्रस्तुत कर रही हैं। हमें अपना पूरा सचेत, सक्रिय सहयोग उस कार्य में देना होगा जो विश्वात्मा ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। मेरा अकेले का कर्म भी उस महान विश्व-कर्म का, समष्टि-कर्म का एक भाग है जो अनन्त सत्ता के द्वारा किया जा रहा है, जो बचकर भागने का तो कोई प्रश्न ही नहीं जो जीवन की कर्ममयी धारा से बचकर भागते हैं, सन्यास लेते हैं, जंगल में कुटी बनाकर भजन करते हैं, विश्वपिता उन कामचोर भगोड़े बच्चों से कैसे प्रसन्न हो सकता है। उसकी दी हुई शक्तियों और क्षमताओं को जंग लगाकर जीवन की मुख्य धारा से भगकर निष्क्रिय जीवन बिताने वाले शठ पुत्रों पर निश्चय रूप से ही पिता का डन्डा पड़ता है।

अब हम सृष्टि-चक्र (grand design) के दूसरे पहलू को समझने की कोशिश करेंगे। अभी तक मैंने आप को एक ही पहलू समझाया था। ज्ञान पूर्वक या अज्ञान पूर्वक एक एक इकाई (unit) पूरे विश्व के लिये कार्य कर रही है। एक विराट्-समष्टि कर्म हो रहा है जिसमें एक एक यूनिट लगी हुई है। इसी बात का दूसरा पहलू भी

है एक एक यूनिट (जीव) को पालने में पूरा विराट लगा हुआ है। आप अपने को ही ले लीजिये। आप एक युवक हैं। एम० ए० तक पढ़े हैं, एक आफिस में आप कार्य करते हैं। एम० ए० तक पढ़ने में जरा ख्याल तो कीजिये, नर्सरी कक्षा से लेकर कालेज तक कितने मास्टरों, कितने अध्यापकों, कितने टीचरों, कितने पंडितों और प्रोफेसरों ने आपको पढ़ाया होगा। तब जाकर वह आप बने होंगे जो आप अब हैं। कितनी स्त्रियों, कितनी माओं, बहिनों ने दादियों, चाचियों, ताइयों ने आपके लालन पालन में भाग लिया होगा कितनी कितनी मुश्किलों से इन सबने आपको रोते से चुप कराया होगा, लोरियाँ सुनाई होंगी, दूध पिलाये होंगे, जो खाना आपने इन वर्षों में खाया होगा, जाने दूर दराज़ में और पास के किन किन किसानों ने बोया होगा। मेहनत की होगी, किन किन हाथों ने अनाज के दानों को छाँटा फटका होगा। किस किस ने पकाया होगा। एक पिक्चर जो आप देखने जाते हैं, तीन घण्टे तक देखकर खुश होते हैं उसमें कितने कितने पात्रों ने ऐक्टर, ऐक्ट्रेसों ने उसमें काम किया होगा, कितने कितने फोटोग्राफर, डाइरेक्टर, टेक्नीशियन लगे होंगे उसके बनाने में। एक गीत जो आपको कर्ण प्रिय है और जिसका रिकार्ड आप बड़े चाव से खरीदकर लाये हैं वह न जाने कितने हाथों से गुजरा होगा? गायिका, म्यूज़िक डायरेक्टर, वाद्य यंत्र बजाने वाले, कवि आदि सभी का तो इस सुन्दर रिकार्ड में योगदान है।' रिकार्डिंग करने वाले टेक्नीशियन्स के अलावा। समझे मिस्टर, अकेले आप के पालने-पोसने में पूरा विश्व लगा हुआ है। तब जाकर आप दिख रहे हैं।

हर कदम पर सृष्टि आप पर निछावर है। आप सृष्टि का जिसमें जड़ और चेतन दोनों ही हैं सहयोग प्राप्त कर रहे हैं और सृष्टि (जड़ और चेतन) आप का सहयोग माँग रही है।

यह चक्र ईश्वर-निर्दिष्ट है यही grand design of universe है जिसमें सम्पूर्ण विश्व एक इकाई की रक्षा करता है और एक इकाई सम्पूर्ण विश्व की सेवा में अपने अस्तित्व को खो देती है। जीव और प्रकृति का सहयोग चक्र अन्योन्य है।

समष्टि काम करती है—आपको प्रसन्न करने के लिए,
आप काम करेंगे समष्टि को प्रसन्न करने के लिए।

विश्वात्मा के इस महान् चक्र में सब एक के लिये है और एक सबके लिये है।

All for one, one for all.

'सब एक के लिये है और एक सबके लिये है' यह विश्व चक्र का अटल नियम है। इसी सिद्धान्त को मैंने अर्जुन को समझाया था। ऐसे ही मनुष्य को मैंने गीता में "सर्व-भूत-भूतात्मा" कहा था। विश्वरूप-दर्शन यही है। यह नहीं जैसा कि कुछ लोग समझते हैं कि मैंने अपने भौतिक शरीर में सम्पूण विश्व समेट कर दिखा दिया होगा। वह कल्पना मायाविनी है।

विश्वरूप–दर्शन–या विराट् दर्शन

हमारे चारों ओर एक विराट जीवन जिया जा रहा है। यह विराट जीवन अनन्त अनादि भूत से (past) अनन्त अनिर्दिष्ट भविष्य तक चल रहा है। हम इस विराट् जीवन के एक अग हैं। हम स्वयं विराट् में खड़े हुए हैं। मैं जो एक जीव हूँ जिसके अन्दर प्रकृति और पुरुष दोनों केन्द्रित हो रहे हैं, मेरा पालन विराट अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ कर रहा है। अपने चारों ओर देखिये–यह सुगन्धित शीतल हवायें मेरे लिये बह रही है, यह चाँद-चाँदनी छिड़का रहा है, मेरे लिये। यह पुष्प खिल रहे हैं मेरे लिये। मैं इन्हें देखकर प्रमुदित हो रहा हूँ, यह झरना कल-कल निनाद करता हुआ अपना गाना मुझे सुना रहा है। मैं हूँ विश्व-मयी जगदम्बा का लल्ला-मुन्ना, वे मेरा पालन-लालन कर रही हैं, मुझे सुना रही हैं वे अपनी मधुर लोरियाँ। मुझे खिला रही हैं वे अपनी गोद में।

तब फिर मेरा कर्तव्य क्या नहीं हो जाता कि मैं भी विश्वमयी जगदम्बा की विराट् विश्वात्मा की सेवा में अपनी सेवायें अर्पित कर दूँ और यह सेवायें मैं किस तरह अर्पित करूँगा, जगदम्बा की पाषाणमयी मूर्ति बनाकर उस पर फूल-पत्ते चढ़ा कर नहीं बल्कि सारे विश्व के लिये, समष्टि के लिए अपने कर्मों को नियोजित करके। यानी मैं सबके लिए कार्य करूँगा, केवल अपने लिये नहीं। यह समष्टि-कर्म अनजाने ही हो रहा है। हर इकाई विश्व के लिये काम कर रही है और हर एक इकाई सारे विश्व के लिये खट रही है। समझ कर खुशी खुशी इस विश्व कर्म में सहयोग करना योग हो जाता है, यज्ञ हो जाता है, मौरेल आर्डर का आदेश हो जाता है। सरल शब्दों में यही विश्व–रूप दर्शन है। समष्टि-कर्म आप से अनजाने में अनायास हो रहा है उसमें आप जमकर खुशी खुशी भाग लीजिये, ज्ञान पूर्वक–जानबूझ कर अपना Willing co-operation सहयोग दीजिये, पूर्ण सहयोग दीजिये, यही लोक संग्रह और कर्म योग है।

यदि आप एक मज़दूर हैं तो आपकी बनाई हुई एक एक ईंट न जाने कितने व्यक्तियों का आवास बनेगी यदि आप एक वैज्ञानिक हैं आपकी खोजी हुई औषधि जाने कितने हज़ारों को रोग मुक्त करेगी। आप एक डाक्टर हैं, आपके द्वारा स्वस्थ किया व्यक्ति न जाने कितने व्यक्तियों का पालन करेगा। आपके द्वारा पैदा किया हुआ एक खेत का अनाज न जाने कितने कितने पेटों में पहुँचेगा। आपके द्वारा गाया हुआ एक गाना न जाने कितनों को आनन्दित करेगा। आपकी लिखी हुई एक लाइन न जाने किस किस के जीवन का सम्बल बनेगी।

इस तरह सृष्टि कर्ता के महान् सृष्टि-चक्र में (grand design) सहर्ष सहयोग (Willing co-operation) ही कर्मयोग है। खुशी खुशी समष्टि के लिये कर्म करने पर मनुष्य लोक सग्रह करने वाला बनता है। आत्मा की टैक्नोलौजी का यह सर्वश्रेष्ठ तथा महान् तेजस्वी सिद्धान्त है।

इसका कारण

एक मज़ेदार बात है। हर जीव को यह मुगालता हो रहा है कि यह सृष्टि सिर्फ उसकी प्रसन्नता के लिए बनी है। वह स्वयं सृष्टि का केन्द्र है। वह स्वयं पुरुष है बाकी सब प्रकृति। वह स्वयं भोक्ता (enjoyer) बाकी सब भोग (enjoyment) है उसके लिए। हर व्यक्ति आत्म केन्द्रित होकर सोचता है और विश्व को अपने चारों ओर नाचता हुआ महसूस करता है ऐसा महसूस इसलिए हो रहा है क्योंकि इसके पीछे एक आध्यात्मिक सत्य छिपा है।

यह विश्व मैटर (प्रकृति) तथा स्पिरिट (आत्मा) के मिलन से बना है। Nature dancing to the tune of spirit प्रकृति परम-आत्मा की प्रसन्नता के लिये नाच रही है। परात्पर परम आत्मा में (Supreme spitit) प्रकृति और पुरुष दोनों संयुक्त रूप से विद्यमान हैं। यह संसार उन्होंने अपनी शक्ति से अपनी प्रसन्नता के लिये, निर्माण किया है। इसीलिये प्रकृति की जितनी भी चेष्टायें विराट् के स्तर पर हो रही हैं वे प्रकृति और पुरुष दोनों के स्वामी की प्रसन्नता के लिए हो रही हैं। सम्पूर्ण प्रकृति अपने विविध इन्द्र धनुषी रंगों को प्रकट कर रही है। अपने स्वामी परात्पर पुरुष को (The eternal unlimited reservoir of spirit) प्रसन्न करने के लिये। इसीलिए एक जीव जो अपने अन्दर परात्पर परम-पुरुष के विशिष्ट गुण लिये हुये हैं वह भी ऐसे ही महसूस करता है, वह भी अपने सीमित परिवेश का स्वामी है। चारों ओर की प्रकृति उसे भी प्रसन्न कर रही है। ईश्वर अंश जीव अविनाशी भी अपने को अपनी परिस्थितियों और परिवेश का केन्द्र-बिन्दु समझता है।

लेकिन परात्पर परम-पुरुष (Cosmic spirit) स्वयं इस विश्व का पालन करते हैं। परम आत्मा (Cosmic spirit) स्वयं प्रकृति मे प्रवेश करके उसे सजीव बनाता है, प्राणवान् करता है, विकसित करता है। आत्मा न हो तो प्रकृति मिट्टी का ढेर बनकर खण्ड खण्ड हो जाय। मिट्टी ही में मिल जाय।

जिस प्रकार परम-आत्मा, supreme spitit, अपनी प्रकृति का पालन कर रही है उसी प्रकार आपको यानी जीव को भी अपने परिवेश की, अपने चारों ओर के संसार की (जिसमें जड़ और चेतन दोनों मौजूद हैं) सेवा करनी है क्योंकि आप का भी उसमे वही सम्बन्ध है जो परमात्मा का अपनी सृष्टि से है। परमात्मा उसे सजाता, संवारता और निखारता है, आपको भी अपनी सारी शक्ति विश्व को संवारने, सजाने, निखारने, समुन्नत बनाने में, उसे पहले से अधिक मनोरम और भव्य बनाने में लगानी होगी। यही समष्टि-कर्म है, परमात्मा के सृष्टि कर्म (creation) में सहर्ष योगदान।

अधिदैव
The divinities

स तया श्रद्धया युक्त स्तस्याराधनमीहते
लभते च ततः कामान्ययैव विहितानहि तान्
अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्य मेधसाम
देवान्देवयजो यान्ति मद् भक्ताः यान्ति म मपि
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नो मन्यन्ते माम बुद्धयः
परं भावं अजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥

मुझे यह देखकर बड़ी हँसी आती है, हर आदमी ने एक न एक देवता पाल रखा है। फिर जनाब मजाल है कोई उस देवता की शान में कुछ कह जाय। साहब अपनी जान और उसकी जान एक कर देंगे। कोई माँ काली का दीवाना है, बकरे और भैंस चढ़ रहे हैं, तो कोई बजरंग-वली पर लड्डू चढ़ा रहा है। गाँव का कोई श्रद्धालु पेड़ देवता को ही भोग लगा रहा है, तो कोई गंगा मैया पर बताशे चढ़ाकर पुलकित हो रहा है। कोई शिवरात्रि के दिन शिव शम्भु के ऊपर बेल पत्र आदि चढ़ाकर मगन हो रहा है। देवताओं की इस पंक्ति में बुद्ध, क्राइस्ट, मैं स्वयं, श्रीराम, नरसिंह, काली, दुर्गा, शिव से लेकर पेड़ नदी, (गंगा–कावेरी) पर्वत, गौ सब आ जाते हैं।

ज्ञान के अभाव में इन सब देवताओं को विचित्र प्रकार से खुश किया जाता है। अनोखे-अनोखे बरदान माँगे जाते हैं। हर देवता को पूजने वाले ने एक विचित्र व्यक्तित्व दिया है। किसी के सूँड़ लगा दी है, किसी के चार हाथ, किसी के पाँच मुख।

अभी अभी एक आधे पागल आदमी ने मेरी मूर्ति बनाकर उसके सामने अपना लड़का काट कर चढ़ा दिया। मुझे खुश करने का उसे यही मार्ग दिखाई दिया—मैं अपनी सृष्टि के एक निर्दोष और भाले भोले बालक का रक्त पीकर उस नामाकूल को संसार भर की विभूतियाँ दे डालूँगा। इस देवता-वाद की तह में जो जहालत भरी हुई है वह मुझे बाध्य करती है कि मैं कुछ बातें स्पष्ट रूप से आप लोगों के सामने रक्खूं। किसी ने अपने भगवान को मोर मुकुट वाली फ्रेम में सीमित कर रखा है अजी साहब यहाँ तक जिद है कि अगर साक्षात भगवान भी हाथ में धनुष बाण नहीं लेकर आयेंगे तो भक्तराज उन्हें प्रणाम नहीं करेंगे।

"कहाँ कहूँ छवि आपकी भले बने हो नाथ
तुलसी मस्तक जब नवै धनुष बाण लो हाथ।"

बेचारे भगवान भी झक मारेंगे और हाथ में मोर मुकुट अथवा धनुष-बाण लेकर भटकते हुए आयेंगे वर्ना भक्तराज उन्हें पहचानने से इनकार कर देंगे। मेरे अव्यक्त सनातन भाव से भला उन्हें क्या सरोकार हो भी सकता है। सारा जगत आकारों पर मर रहा है, फिदा हो रहा है। आकाश मण्डल में मेघों के द्वारा बनते हुए इन क्षणिक आकारों को शाश्वत समझकर पागल हो रहा है। सम्पूर्ण चेतना के साथ सुनिये—

अधिदैव

मेरे प्यारे सज्जनों सुनिये—संसार में जितने मनुष्य हैं उतने ही अधिदैव हैं अधिदैव हर मनुष्य के शरीर में ही बैठे हैं—यदि मनुष्य का शरीर अधिभूत है (Matter) तो उस शरीर को संचालित करने वाली आत्मा (पुरुष) उसकी अधिदैवी है। मैंने आपको बताया था हर शरीर में परमात्मा का जो चिदंश (spark of spirit) आया हुआ है उसका कुछ अंश संसारोन्मुख (projected) तो जीवत्व की चादर से ढ़का हुआ है—और कुछ अंश बिलकुल शुद्ध निर्मल चेतना के रूप में विद्यमान है। यही हमारे शरीर का अन्तर्यामी है—ये अन्तर्यामी ही हमारी जीव चेतना के अधिदैव हैं। ये अन्तर्यामी ही हमारी जीव चेतना का जो संसार के सम्पर्क में

आकर व्यवहार कर रही है वक्त पर guide करते हैं हमारे व्यवहार का रूप (reaction pattern) स्थिर करते हैं। शान्त चित्त से सुनने पर उनकी आन्तरिक आवाज भी सुनाई देती है। कभी-कभी स्वप्नादि में अपने संकेत भी देते हैं, वे उपदेष्टा और अनुमन्ता हैं। परात्पर प्रभु के अंशावतार होने के कारण वे हमारे हृदय में ही हमारे स्वामी और सुहृद के रूप में विराजमान हैं। हमारी यानी जीव चेतना के अन्तर की कामनाओं और मन्तव्यों को पहचान कर वे विश्वात्मा से सम्पर्क स्थापित करते हैं, हमारे प्रारब्ध का निर्माण करने में उनका शत प्रतिशत हाथ है। उन्हीं की रिपोर्ट पर विश्वदेव हमारे सामने अनुकूल या प्रतिकूल वातावरण, प्रस्तुत करते हैं। वे हर समय विश्वात्मा के सम्पक में रहते हैं और मनुष्य के सामने जो परिस्थितियाँ आती हैं वे अन्तरात्मा रूपी अधिदेव के संकेत पर विश्वात्मा ही प्रस्तुत करते हैं।

अन्तरात्मा अथवा मनुष्य का Super ego.

आज की भाषा में इसे इस प्रकार समझिये—जीव का अपने ही अन्तर में छिपा हुआ उज्जवलतम रूप है, विकृतियों से अछूता, चिन्मय अविनाशी, शानदार। वही है मनुष्य की अन्तरात्मा अथवा सुपर ईगो। अपने बारे में हमारी जो सर्वोत्कृष्ट कल्पना है, वह कल्पना हमारे अन्दर छिपे हुए अविनाशी अधिदेव पर चिपक जाती है। हमारी चेतना के इस सर्वोत्कृष्ट रूप पर भौतिक शरीर (Material body) के परिवर्तनों का कोई असर नहीं होता। एक वृद्धा अथवा प्रौढ़ स्त्री, अपने अन्तर में यौवन और सौन्दर्य की मूर्ति चिरबाला बनी अक्षय लालित्य और आकर्षण के सरोवर में खेल, मचल सकती है। एक हारा हुआ खिलाड़ी भी अपने अन्दर के पुरुष को समस्त पराक्रमों व विजयों से मण्डित कर लेता है। यह अन्तरात्मा या सुपर ईगो super ego) ही हमारा अधिदैव है। बहुत अशों तक यह अन्तरात्मा ही हमारे व्यवहार को निर्धारित करती है। हमारा बाहरी व्यवहार जितना ही अधिक उस सुपर ईगो के पास पहुँचता जाता है हम उतने ही पूर्ण पुरुष (prefect) बनते जाते हैं। जितना अधिक हम अपनी अन्तरात्मा को (super ego) अपने जीवन में खुलकर प्रकट होने देंगे उसको केवल मात्र कल्पना नहीं समझेंगे उतना ही अधिक हमारे अधिभौतिक जीवन में देवत्व उतरेगा।

अधिदैव का स्वरूप

मेरा अधिदेव, मैं स्वयं हूँ। लेकिन कब ? अपने निर्मलतम, उज्जवलतम रूप में। मेरी अपनी ही सर्वोत्कृष्ट मूर्ति मेरा अधिदैव है और मेरे वस्तु जगत के

(Material life) जीवन का नियामक है। super ego या अन्तर्यामी ही जीव के प्रारब्ध का नियामक है।

सृष्टि का नियमन

सृष्टि अथवा विराट-जगत के अन्दर लक्षित होने वाले (Mathematical Precision) नियमित क्रम को देखकर आभास होता है। सृष्टि का कन्ट्रोल कोई ऐसा अति मानवीय मन Master mind कर रहा जो Mathematical precision नियमों का अचूक अनुशासन पसन्द करता है यानी एक rational mind एक दिव्य-मन सम्पूर्ण सृष्टि के परोक्ष में कार्य कर रहा है। जो हर बात में precision या accuracy करता है। यह Rational super mind ही इस सृष्टि का नियामक अधिदेव है। तो अब आपकी समझ में आया यह अधिदेव महाशय कौन हैं। ये, मैं स्वयं ही हूँ अपने सर्वोत्कृष्ट आदर्श रूप में।

The ideal, as I think of myself as I ought to be.

इष्ट देवों का रहस्य

जब हम अपने इष्टदेवों पर आते हैं। ये प्यारे प्यारे लड्डू गोपाल ये कृष्ण कन्हैया कहाँ से चले आ रहे हैं। ठुमकते हुये, बाँसुरी बजाते हुये। किस अव्यक्त रगमंच से प्रकट होकर फिर किस अव्यक्त नेपथ्य में समा रहे हैं। ये धनुषधारी-नीलाम्बुज श्यामल-कोमलांग सीता समारोपित वाम-भागं कहाँ से मन्द-मन्द मुस्कराते आ रहे हैं कहाँ अन्तर्ध्यान हो रहे हैं। डमरू बजाते शिव शंकर भोले-भाले तुमको लाखो प्रणाम, कैलाश पर रहने वाले तुमको लाखों प्रणाम। ये शंकर, ये मोहम्मद, ये ज़रथुस्त्र, ये मोहिनी लक्ष्मी ये सब किस पर्दे के ऊपर प्रकट हो रही हैं। किसके पीछे छिप रही हैं। ये क्रास को कंधे पर उठाये, प्रकाश मण्डल में खड़े क्राइस्ट कहाँ से प्रकट हो रहे हैं फिर कहां लय हो रहे हैं। इष्ट देवों के अस्तित्व का रहस्य क्या है ?

शुरू में मैंने कहा था हर व्यक्ति ने एक देवता मान रखा है। परात्पर परम-आत्मा (Supreme spirit) जो कि चिति के शुद्ध चेतना के spirit के अनन्त असीम महार्णव हैं—सनातन अव्यक्त, (अल्लाह या eternally unmanifest है तो हर व्यक्ति ने अपने अन्तर की कामनाओं के अनुरूप चिन्मय अव्यक्त (Unmainfest spiritual reservoir) में एक मूर्ति गढ़ ली है। इस मूर्ति को हम उसका इष्टदेव कहेंगे। यह मूर्ति चिन्मय अव्यक्त में मनुष्य की कल्पना से गढ़ी

हुई होने पर भी चिन्मय है। इसलिये जितने मनुष्य उतने इष्टदेव। और सब सही हैं। इष्टदेव की मूर्ति मनुष्य के super-ego अन्तरात्मा की आन्तरिक इच्छा को पूरा करने के लिये होती है। यदि आप की अन्तरात्मा में, super-ego में शिष्यत्व है, यदि आप का अन्तर ज्ञान का जिज्ञासु है तो निश्चय मानिये आप परात्पर (The transcendental supreme spirit) की पूजा जगत् गुरु के रूप में करेंगे। यदि आप के अन्दर प्रेमिका वाला super-ago है तो आप परम-प्रभु की कल्पना महान प्रेमी रासेश्वर के रूप मे करेंगे। यदि आप त्याग और बलिदान के अभिमानी हैं तो आपके इष्टदेव की मूर्ति क्राइस्ट की होगी। यदि आपके अन्दर बाल भाव छिपा है तो आपके इष्टदेव त्वमेव माता च पिता त्वमेव, माता महाकाली अथवा सर्व लोक पिता की होगी इस बात को समझिये। चूंकि सभी इष्टदेव एक चिन्मयी सत्ता में प्रकट हो रहे हैं इसलिये सभी सत्य है। सब अस्ति है। कभी-कभी ऐतिहासिक पुरुष भी अपनी मृत्यु के बाद अपनी अनुयायी जनता के इष्टदेव बन जाते हैं। ऐसे ऐतिहासिक पुरुषों जैसे क्राइट, मोहम्मद, शकर, राम आदि का एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व बन जाता है और उन्हें मानने वाली जनता उन्हें अपना आध्यात्मिक सर्वस्व मानती रहती है।

इष्ट देवों का और जीवों का सम्बन्ध

भौतिक सृष्टि में सम्पदायें और विभूतियाँ बिखरी पड़ी हैं। हर जीव को भौतिक भोगों का अपना हिस्सा (quota fixed) स्थिर है। यह कोटा नियामक शक्तियाँ मनुष्य की परात्पर की आज्ञा से प्रदान करती है। मनुष्य के अन्दर का अन्तर्यामी ईश्वर अंश हर समय विश्वात्मा से (cosmic spirit) सम्पर्क स्थापित किये रहता है। विश्वात्मा को हर व्यक्ति की आवश्यकताओं और हार्दिक इच्छाओं से अवगत कराता रहता है—अन्तर्यामी की रिपोर्ट के आधार पर ही विश्वात्मा उस व्यक्ति के विषय में अपने मत स्थिर करते हैं तथा फिर विश्व प्रकृति को आदेश देकर उस व्यक्ति का परिवेश निर्मित कराते हैं। जीव के आन्तरिक भावों के ज्ञाता होने के कारण वे उसकी कामनाओं के अनुकूल परिवेश में उसे भेजते हैं। यह विश्वात्मा है जो हमारी आन्तरिक अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए हमें मनोरम परि-वेश तैयार करके देते हैं अन्तर्यामी की रिपोर्ट पर। साथ ही वह भी जान रखिये कि जब जीव अन्दर ही अन्दर कुटिलतापूर्ण चालें खेलने की सोचने लगता है तब अन्त-र्यामी और विश्वात्मा मिलकर उसकी ठुकाई भी कर देते हैं और प्रतिकूल वातावरण उपस्थित कर उसका भून भी झाड़ देते हैं। जीव का परिवेश अन्तर्यामी व विश्वात्मा (Inner spirit and cosmic dsirit) मिलकर तय करते हैं। इसी से कहा जाता

है, जीव साहब कि अपने ही अन्तर्यामी के सामने आप की एक भी ट्रिक नहीं चलेगी। उसके सामने आप एकदम exposed हैं, नंगे हैं और आप साहब बचकर जायेंगे कहाँ, आप उन्हीं के तो बाहरी (Projected form) हैं।

इष्ट देव और जीव

अपने सामने अपनी मन चाही चीजों को न पाकर जीव कोलाहल करते हैं, रोना धोना करते हैं। अपने अपने इष्ट देवों की आफत करते हैं। कभी आरोग्य माँगते हैं कभी धन माँगते हैं कभी विद्या माँगते हैं कभी कवित्व माँगते हैं। कोई कम्पटीशन में पास होना माँगता है तो कोई व्यवहार में सफलता। कामनायें सबकी पूरी होती हैं लेकिन कायदे से। लगता है इष्टदेव हनुमान जी या मां काली या सांई बाबा मनोकामना पूरी कर रहे हैं पर असल में तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इष्ट देवों के रूप में स्वयं चिन्मय परात्पर सनातन अव्यक्त ही कार्य कर रहे हैं।

(The eternally unmanifest transcendental spirit is functioning in the form the deities)

याचक, जीवों की कामनायें पूर्ण करने में वे पूरी तरह समर्थ हैं। वे पूरी करते हैं जीवों की अभिलाषायें। वे जीवों को उनके विहित भोग प्रदान करते हैं। साथ ही श्रेय देते हैं वे इष्ट देवों को लेकिन एक बात है जब तक जीव इष्ट देवों से अपनी सांसारिक कामनायें पूर्ण करने के लिए कहते हैं तब तक वे उसकी कामनायें तो पूरी करते हैं किन्तु ज्ञान के मार्ग पर वे जीव को नही ले जाते हैं क्योंकि ज्ञान की कुन्जी केवल परात्पर चिन्मय सनातन अव्यक्त के पास है। इष्ट देवों की भूमिका मनुष्य के जीवन में तात्कालिक है। वे कामना पूरी करते हैं फिर परात्पर में (transcendental reservoir of spirit) लय हो जाते हैं। साधारण जन केवल यही जानते हैं भगवान प्रकट होते हैं और अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। इष्ट देवों की स्थिति शाश्वत नहीं है। शाश्वत केवल वह चिन्मय (spirit) सनातन अव्यक्त है जिसमें भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये भक्तानुग्रह-विग्रह धारण कर अनेक अनेक इष्टदेव निकले चले आ रहे हैं।

इष्ट देव और परात्पर

हाँ जब मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिये इष्टदेव को परेशान करना छोड़ देता है और बिना किसी स्वार्थ सिद्धि की कामना के उनको प्रेम करने लगता है,

कभी अपने भावना जगत में उनके चरणों से चिपट कर रोता है, अपने रासेश्वर के कंठ से लिपट कर प्यार के आवेग में आपके अन्दर की प्रेमिका सिसक उठती है— प्रेम की यह महादशा प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होने लगती है तब वह क्षण आता है जिसकी आप कल्पना भी नहीं करते । तब इष्ट देव अपने ऊपर पड़ा हुआ आकार का पर्दा (Veil of form) हटाकर अपने प्रेमी या प्रेमिका को गोद में उठा लेते हैं और असीम, अनन्त चेतना के महार्णव में घुमकर अपनी प्रिया या प्रिय भक्त को गले से लिपटाये हुए बताते हैं "अरे पगली । देख यह मैं हूँ, यह अनन्त असीम अव्यक्त चेतना का महासागर । मैं वह आकार नहीं हूँ (form) जिसे तुम शाश्वत समझ रही थी, वह तो मेरा एक खोल भर था (Cover) मैं यह हूँ, अनन्त, असीम, अव्यक्त चेतना का अक्षय महास्रोत । महापारावार । तब इष्ट देव और उनका भक्त दोनों इस महासागर में लय हो जाते हैं "विशते तदनन्तरम्" रह जाता है केवल मात्र मैं, अनन्त असीम चेतना का महा भण्डार, एक अपरिसीम क्षमताओं वाला "मैं" ।

विश्व के नियामक देवता
Cosmic Gods

अधिदैव परात्पर की नियामक शक्तियाँ हैं । हर एक शरीर को उसकी आत्मा के रूप में परात्पर ही जीवन दे रहा है साथ ही अनुशासित भी कर रहा है । विश्व को विश्वात्मा (cosmic spirit) शासित कर रही है । परात्पर चिदार्णव (reservoir of spirit) की मोटी मोटी लहरें, वे महाशक्तियाँ हैं जो पूरे विश्व का शासन करती हैं जैसे हमारे पास एक मन, एक बुद्धि, एक अहं है वैसे ही विश्वात्मा के पास भी एक अखण्ड मन एक बुद्धि, एक अहं है । जिसे कि आप आधुनिक भाषा में Cosmic mind cosmic intelligence, cosmic ego के नाम से समझेंगे औ प्राचीन वांग्मय में जो विराट के मन, विराट का अहं आदि के नाम से समझा जाता था । ये विराट् की महाशक्तियाँ, प्रकृति की नियामक अदृश्य शक्तियाँ सम्पूर्ण विराट् का अदृश्य तरीकों से शासन करती हैं । जीवों को भोगों का विहित वितरण भी करती हैं और विश्व की नीति व्यवस्था (Moral order) की रक्षा करती हैं । जो मनुष्य अपने उद्देश्य और कर्म, मोरेल आर्डर के अनुकूल धर्म से अविरुद्ध काम के अन्तर्गत रखते हैं, महादेवों का कृपा प्रसाद उन्हें मिलता है । जो मोरेल आर्डर (Moral order) का जानबूझकर (deliberately) सुसंगठित रूप से उल्लंघन (violation) करते हैं उनके ऊपर इन महाशक्तियों का रोष बरसने लगता है और दिये हुए भोग भी उनसे छीन लिये जाते हैं । यह समस्त सृष्टि-चक्र एक एक जीव के लिये खट रहा है (All for one) एक बालक के निर्माण और पोषण में सृष्टि की

न जाने कितनी इकाइयाँ लगती हैं कितनी स्त्रियाँ, कितने गुरु, कितने बन्धु, कितने खाद्य पदार्थ जैविक सृष्टि के एक जीव के पालन में लगे हैं। इस चक्र में यदि सब एक के लिये काम कर रहे हैं तो फिर एक व्यक्ति एक इकाई भी सबके लिये है। one for all उसे एक जीव को भी ऐसा कुछ करना होगा जिससे उसके कामों से सृष्टि की बेहतरी या betterment हो। सृष्टि समुन्नत, भव्यतर बने जो देवों के दिये हुए भोगों को देवों को ही समर्पित कर देता है वही श्रेष्ठ है। विश्व देवता ने आपको जो सुविधायें और विभूतियाँ प्रदान की हैं, आपको वे फिर विश्व देवता को ही अर्पित करनी होंगी। यही देव यज्ञ है। यही मनुष्य का बलिवैश्वदेव है। देव शक्तियाँ इससे प्रसन्न होकर मनुष्य को और अधिक क्षमता, और अधिक विभूतियाँ देती है। यदि मनुष्य उन विभूतियों को फिर अधिक से अधिक बहिरात्माओं के प्रति अर्पित करता चलता है तो उसकी प्रदान की हुई वे विभूतियाँ फिर विश्वात्मा तक पहुँचती रहती है। विश्वात्मा फिर उन्हें उस मानव तक लौटाते हैं—मानव फिर उन्हें विश्व देव की प्रसन्नता के लिये जगत के प्राणियों को सुखी करने के लिए वितरित करता है इस प्रकार यह बलि वैश्वदेव की परम्परा चलती है। मैं इसी को देवयज्ञ कहता हूँ। मनुष्य के कर्मों से प्रसन्न होकर देव शक्तियाँ जीवन में भोग सुख प्रदान करती है। मनुष्य उन भोगों को जगत के अन्य प्राणियों को बाँटे, अकेले ही हजम न कर ले, यही अपेक्षित है। विश्वात्मा के दिये हुये भोग विश्वात्मा को ही अर्पित किये जाँय—यही विश्व चक्र का सनातन नियम है। (grand design) सब एक के लिये है और एक सबके लिये है—अध्यात्म का यह सबसे सुखद नियम है। देवयज्ञ भी यही है।

All for one and one for all.

सनातन—अव्यक्त या बेनियाज़ अल्लाह

सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।

The eternally unmanifest.

ये अपि अन्य देवता: यजन्ते श्रद्धयान्विता:
ते अपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधि पूर्वकम्।
अव्यक्तो अक्षर इत्युक्त: तमाहु: परमां गतिम्
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

आदम खुदा नहीं है लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं है।

इस भूखण्ड में रहने वाली उन जातियों को जो सैकड़ों सालों से मेरा नाम ले लेकर आपस में लड़ रही है, मैं कुछ बताना चाहता हूँ।

विश्व में अधिभूत के, मैटीरियल आर्डर के, नियम सब जगह एक से हैं। विश्व विद्युत (Electricity), ध्वनि (Sound), चुम्बकीय शक्ति (Magnetism), गुरुत्वाकर्षण (gravitation) के नियम सब जगहों के लिए एक से हैं। वैज्ञानिक चाहे जहाँ के हों, चाहे इंग्लैण्ड के हों या ईरान के वे अनुसंधान किसी भी भाषा में कर रहे हों, उनकी प्रज्ञा (understanding) एक ही सिद्धान्तों पर (identical laws) पहुँचती है। यह नहीं हो सकता कि चीन मे रिसर्च करने वाले वैज्ञानिक के लिये गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of gravitation) कुछ और रूप रख लेगा और अमेरिका में अनुसंधान करने वाले के लिए वह दूसरा रूप अख्तियार कर लेगा। अगर कायदे से वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं तो वे एक ही से (identical) नतीजों पर पहुँचेंगे। और कोई मार्ग ही नहीं है क्योंकि प्रकृति के नियम इतने अटल, इतने नियम-बद्धता (Mathmatical Accuracy) से संचालित है कि सूक्ष्म और सचेत अन्वेषण अनुसंधान कर्ताओं को एक ही स्थान पर ले जायेगा चाहे वे पृथ्वी के किसी देश के क्यों न हों और अनुसंधान की कोई भी भाषा क्यों न हो।

जैसे मैटीरियल आर्डर सब जगह एक सा है, वैसे ही स्पिरिचुएल आर्डर भी अध्यात्म व्यवस्था भी सारे विश्व में एक ही से, शाश्वत अपरिवर्तनीय नियमों द्वारा संचालित हो रही है। और जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक रिसर्च की गई है मानवता को एक सा ही ज्ञान प्राप्त हुआ है।

भिन्न-भिन्न अवसरों पर सन्तों, विचारकों और महात्माओं ने स्पिरिचुएल आर्डर के रहस्यों को समझने की कोशिश की है। ये शाश्वत अपरिवर्तनीय नियम कौन से हैं जिनसे व्यवस्थित होकर यह विश्व अनादि काल से एक ही प्रकार से चल रहा है? इसलिये जो भी व्यक्ति स्पिरिचुएल आर्डर (spiritual order) के रहस्यात्मक पर्दे के पार देखने में समर्थ हुए हैं वे एक ही तत्व पर पहुँचेंगे। चाहे वे भारत के तत्वदर्शी हों या अरब या इज़रायल के। उनकी अनुभूतियाँ एक सी होंगी, वे एक से नतीजों पर पहुँचेंगे क्योंकि विश्व की आत्म-व्यवस्था (spiritual order) सब जगह समान है, (uniform) अपरिवर्तनीय है।

यों तो विश्व की आत्म व्यवस्था (Spiritual order) जीवों के द्वारा जानी नहीं जा सकती। यह नियम नहीं है कि मनुष्य सृष्टि के उस आन्तरिक रहस्य को समझे और अनादि काल से चलते हुए इस खेल का पूरा पूरा भेद समझ जाय फिर भी वक्त वक्त पर मानव जाति को सही रास्ते पर चलाने के लिये विश्व-प्रभु कृपा करके स्पिरिचुएल आर्डर पर से कुछ देर के लिए पर्दा हटा देते हैं उस समय

जो ज्ञान प्राप्त होता है वह नीति व्यवस्था (Moral order) का आधार बनता है और काफी समय तक मानव जाति का मार्ग प्रदर्शन करता है।

मैं मानवता को जब किसी निश्चित दिशा में ले जाना चाहता हूँ तब मैं किसी भी मानव शरीर पर आकर, उसे अपना भोंपू बना लेता हूँ उस समय मेरा जो पैगाम या संदेश उस मनुष्य के मुँह से निकलने लगता है वह मुझ अनादि परमेश्वर का होता है, हालांकि साधारण व्यक्ति समझते हैं कि यह देहधारी मनुष्य बोल रहा है। देहधारी रोबोट (Robot—यंत्र मानव) के मुख से मुझ अविनाशी परमेश्वर का उद्घोष होता है।

अरब देश में मुहम्मद के मन और शरीर में प्रवेश करके मैं ही बोला था। मैंने ही अध्यात्म जगत के उस अ'व चल नियम का उद्घोष किया था जिसे मुहम्मद ने "ला इलाही इ लिल्लाह" मन्त्र का रूप दिया। अर्थात सृष्टि का वहिदो-मालिक है, फाइनल गोड एक ही है वह दो या बहुत से नही हैं। और वह शक्ति, वह सत्ता अल्लाह वेनियाज़ है, अव्यक्त है, सनातन पुरुष है, Eternally unmanifest spirit हैं। वह अक्षर है। यह अल्लाह, मालिके-दो-जहान, कुलहो-वाल्लाह, कुदरत और खलकत का मालिक है।"

मैं खुश हूँ कि मेरे इस पैगाम को मोहम्मद के मुँह से लोगों ने सुना और माना लेकिन क्या वे उसे समझ पाये।

मोहम्मद के उस पैगाम को उसके अनुयायियों ने 'तोहीद" नाम दिया। लेकिन क्या वे तोहीद की असलियत को समझ? अगर समझे होते तो उनसे वे भयंकर भूलें न होती जो आगे की शताब्दियों में वे करते रहे। एक महान संदेश उन्हें दिया गया—जिसको कि नासमझी से उन्होंने भुस करके रख दिया।

खुदा एक है

सूर्य एक ही है लेकिन उसकी किरणें हजारों लाखों अरबों हैं। वे सूर्य से निकल रही हैं, सूर्य उन्हीं के रूप में हमारे ऊपर चमक रहा है। उसी प्रकार अल्लाह एक है, एक ही रहेगा किन्तु लाखों, करोड़ो किरणों के रूप में असख्य आत्मायें, रुहें उस वेनियाज़ अल्लाह से सनातन अव्यक्त से निकल रही है और वे बेनियाज रूहें, ईश्वरीय नूर की किरणें व्यक्त जगत में, कुदरत से बने हुए शरीरों में प्रवेश कर रही हैं। इस तरह वेनियाज़ खुद के नूर से ही कुदरते-नियाज़ो हो रही हैं। कुदरत से बना हुआ पुतला जानदार हो रहा है। आदमी में से खुदा का वेनियाज नूर निकल जाता है तो आदमी मिट्टी और लाश के अलावा क्या रहा जाता है।

इसी प्रकार सृष्टि यह विश्व यह कुदरत, यह प्रकृति इसमें अगर इलाही शक्ति काम न करती होती तो यह चाँद, ये सूरज, ये धरती, यह समुन्दर सब एक दूसरे से टकरा टकरा कर बिखर जाते। यह वेनियाज़ खुदा की ताकत है जो कुदरत में प्रवेश कर उसे जीवन्त रख रही है।

आत्म व्यवस्था की (Spiritual order) इस शृंखला में वेनियाज़, अल्लाह या सनातन-अव्यक्त, पहले अव्यक्त प्रकृति या unmanifest nature को अपने अन्दर से प्रकट करता है फिर अपनी ताकत को उसमें प्रवेश कराकर उसे जीवन्त बनाता है इस तरह यह व्यक्त जगत भी अव्यक्त सत्ता से ही प्राणवान बना हुआ है। मानवीय पुतलों मे भी खुदा खुद अपने इलाही नूर के रूप में प्रवेश कर उन्हें जानदार हँसते, खेलते, सोचते विचारते मनुष्यों का निर्माण करता है।

इस तरह आप देखेंगे कि एक छोर पर जो एक अल्लाह है, वेनियाज़ अव्यक्त अक्षर Eternal, सत्ता।

दूसरे छोर पर वही दृश्य प्रकृति, नियाज़ी कुदरत के रूप में खड़ा हुआ है— दृश्यमान इसान के अन्दर भी वही है।

खुदा की वेनियाज सत्ता (unmanifest nature) जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही महत्वपूर्ण है उसकी अभिव्यक्ति, manifestation निश्चय ही खुदा आकार हीन, form-less है पर साथ ही दुनिया के जितने आकार दिखाई दे रहे हैं उनके रूप में वही खड़ा है।

एक छोर पर वह महासत्ता, अल्लाह, सनातन अव्यक्त है तो दूसरे छोर पर वह व्यक्त या manifest है।

मनुष्य के अन्दर जो इलाही नूर है वह अव्यक्त है, अव्यक्त अल्लाह का एक कतरा है। सही है कि आदम खुदा नहीं है लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं है।

यद्यपि वेनियाज़ अक्षर अल्लाह ही बन्दगी के योग्य है फिर भी इलाही नूर को अपने अन्दर धारण करने के कारण मनुष्य भी उसी प्रकार पूजनीय हो उठता है। अवतारों और पैगम्बरों की पूजा का यही रहस्य है। मनुष्य के शरीर में झलमलाते हुए ईश्वरीय नूर का जब हम सिजदा करते हैं तो यह सिजदा उसी वेनियाज़ अल्लाह को पहुँचता है। "इलहम् दुलिल्लाह"।

चूंकि कतरा अपने पूर्ण से (whole) जुदा नहीं है, सूर्य की किरणें सूर्य से जुदा नहीं हैं, हर अवतार की पूजा, हर पैगम्बर की बन्दगी वेनियाज़ खुदा खुद ग्रहण करता है।

तौहीद या ईश्वर एक है
Oneness of God

तौहीद से हम जो कुछ समझ रहे हैं उससे अब हमें कुछ अधिक समझना है। जब विश्व का एक ही वाहिदो-मालिक है, Super lord है जिसे आप अल्लाह कहते हैं और उसी को आधुनिक भाषा में विश्वात्मा तथा परात्पर cosmic spirit and transecendental spirit जाना जाता है । यह विश्व आत्मा अथवा cosmic spirit. ही सृष्टि की सारी कुदरत में और मानवीय-विग्रहों में लहरा रही है—तो तौहीद का मतलब हुआ सारी सृष्टि में एक ही आत्मा का प्रसार।

Oneness of universal consciousness.

एक ईश्वर अथवा तौहीद के सिद्धान्त पर आगे जाती है सारी सृष्टि की एकता सारे जीवों की एकता oneness of the entire creation oneness of all the humanity. तौहीद की यह विशेषता तौहीद के मानने वालों की नजरों से छिपी रही। मानवता एक है। इस चीज को समझे बिना तौहीद का ज्ञान अधूरा ही माना जायेगा वेनियाज़ अल्लाह या सनातन अव्यक्त cosmic spirit या विश्व मे व्याप्त एक आत्मा है संसार के सारे प्राणियों के अन्दर अलग अलग आत्म तत्व नहीं हैं—एक ही विश्व-आत्मा Universal consciousness फैली हुई है तो तौहीद का अर्थ सिर्फ यही हो सकता है कि सम्पूर्ण मानवता, बल्कि जीव जगत एक है । यदि खुदा एक है तो उसके बन्दे भी एक हैं क्योंकि बन्दों में भी वही एक खुदा uni-versal God Spirit) समाया हुआ है। इसलिये इंसान इंसान के बीच चाहे वे किसी भी धर्म या राष्ट्रीयता को मानने वाले हों, प्यार और बन्धुत्व के अलावा कोई भावना स्थान नहीं प्राप्त कर सकती।

मेरे मित्रों यदि तौहीद की यह नवीनतम व्याख्या आप स्वीकार नहीं करेंगे तो आपका आचरण स्वयं तौहीद के सिद्धान्त के खिलाफ चला जायेगा।

तौहीद की नवीनतम व्याख्या

खुदा का एकत्व, सारी सृष्टि के अन्दर छिपे हुए एकत्व (oneness) के रूप में आयेगा। एक ही अल्लाह सारे विश्य में अपने spiritual form में आत्मिक

रूप में प्रविष्ट है। हर जीवित शरीर में उसका नूर प्रविष्ट है—आज अल्लाह विश्व में व्याप्त एक अखण्ड चेतना के रूप में जाना जाता है। वह universal spirit या विश्वात्मा है। सभी प्राणियों मे व्याप्त एक चेतना (oneness of spirit) या विश्वात्मा है। सभी प्राणियों में व्याप्त एक चेतना (oneness of spirit) तत्व होने के कारण सारे ही प्राणी प्रेम की डोर से बंधे हैं, वे एक हैं। तोहीद का सिद्धान्त अगर इन्सान-इन्सान के बीच प्यार और सहानुभूति नहीं ला सकता है तो निश्चय ही समझने वाले कहीं भूल कर रहे हैं।

सदाक़ात

(सत्य) सदाकत किसी एक ही इन्सान के दिमाग पर नहीं उतरता है आकाश में सूरज उदय हो रहा है। प्रकाश के आंगन में उतर रहा है लेकिन आप यह क्यों समझते हैं कि सूर्य की किरणें सिर्फ आपके आंगन में उतर रही हैं औरों के आँगन अंधेरे हैं। बेनियाज़ शक्ति को जो कि अपरिसीम और अनन्त है (Limitless) हदों और घेरों में बांधने की कोशिश मुट्ठी में बिजली को कैद करने की कोशि के समान है। अल्लाह, विश्वात्मा या universal spirit. किसी इन्सान, किसी कौम, किसी समाज किसी मुल्क की घेरे बन्दी में नहीं रह सकता। समुद्र का जल जैसे किसी कल्पित रेखा में नहीं बंध सकता वैसे ही अनन्त अपरिसीम अव्यक्त महा सत्ता को जिसे आप अल्लाह कहते हैं (Transcedental and cosmic spirit) अगर किसी भी जाति या धर्म ने हदों के घेरे में बांधने की कोशिश की तो वह फिजूल कोशिश होगी। वह अनन्त अपरिसीम अल्लाह घेरों से बाहर खड़ा आपकी क्षुद्र चेष्टाओं पर तरस खायेगा। तौहीद का सिद्धान्त मानव मानव के बीच प्रेम के रूप में प्रकट होगा। नफ़रत और घृणा तोहीद के बीच विरुद्ध आवरण है। तोहीद मानव समुदाय को, मिल्लते-इन्सानी को एकात्मा और प्रेम सिखाती है।

(Oneness of God is same as oneness of universal concious-ness and this oneness fosters love anong all beings).

ज्ञान का क्रमिक विकास

सारा ज्ञान खुदा इन्सान को एक ही बार में नहीं थमा देता है। यह क्रमबद्ध प्रक्रिया है। अपनी योग्यता के अनुसार ईश्वर कभी कोई सचाई, कभी कोई सचाई इन्सान के सामने खोलता है यह नामुमकिन है कि सारे ईश्वरीय रहस्य एक ही आदमी के सामने एक ही समय में खोल दिये जांय। एक सचाई आपके सामने पेश की थी—कि ईश्वर एक है और वह बेनियाज़ है, अव्यक्त है।

वक्त आ गया है जब आप इससे भी आगे की बात समझ लें। इस ज्ञान को समझने की घड़ी अब आ गई है। ईश्वर या अल्लाह unmanifest अव्यक्त है लेकिन जो कुछ व्यक्त या manifest है वह भी तो अल्लाह ही है। वह एक है, लेकिन यह जो सब कुछ हमारी आँखों के सामने बिखरा पड़ा है यह जो कुछ manifest दिखाई पड़ रहा है यह भी उस एक का ही प्रसार या फैलाव है। वह अलक्ष्य ही तो लक्ष्य हो रहा है। जो वेनियाज़ है उसी का दीदार इस खुशनुमा कुदरत में हो रहा है। फूल में वेनियाज़ खिल रहा है, खुशबू में वेनियाज़ अव्यक्त महक रहा है, नारी के सौंदर्य में अव्यक्त हो रहा है। पुरुष के तेज में अव्यक्त दीप्त हो रहा है। संसार का ज़र्रा ज़र्रा आफताब है वह आफताब खुदा ही है। इसलिये मनुष्य का सम्मान खुदा का ही बन्दगी है मनुष्य की पूजा बुरी नहीं है, यदि मनुष्य के अन्दर जगमगाती हुई इलाही ज्योति को नमन किया जाय मनुष्य के प्रति प्रेम, मैत्री, जीवों के प्रति करुणा संसार में प्रसन्नता का प्रसार अव्यक्त अल्लाह की सबसे बड़ी बन्दगी है। खुदा अपनी पूजा जीवों के माध्यम से ग्रहण करता है। जीवों के अन्दर ही रूहें और कोई नहीं स्वयं अल्लाह हैं। ईश्वर प चिदंश हैं (Spark of Spirit).

मैं अव्यक्त हूं लेकिन मुझे सीमित व्यक्ति मानते हैं।

अव्यक्तं व्यक्तं आपन्नमन्यन्ते मामबुद्धयः

"अहो आकार हीन स्त्वम्सर्वविग्रहवानपि"

अब मैं इस भूखण्ड के उन मनुष्यों से दो टूक बातें करना चाहता हूं जो मेरे मानवीय रूपों को तो प्यार करते हैं पर मुझे मानव देहधारी ईश्वर के अलावा किसी रूप में समझना नहीं चाहते।

मनुष्य के रूप में परमेश्वर की प्रतिष्ठा करना बुरा नहीं है। अच्छा ही है। क्योंकि मनुष्य के अन्दर जो चेतना है वह मेरा ही अंश है। मनुष्य के अन्दर जो मनुष्यत्व है वह मैं ही हूं और मनुष्यों के अन्दर जो सर्वश्रेष्ठ है, वे मैं ही हूं। मैं ही राम के रूप में था, कृष्ण के रूप में था, बुद्ध के रूप में था। लेकिन क्राइस्ट और मोहम्मद के रूप में कौन था वह भी तो मैं ही था। इस समय भी जो इस युग की श्रेष्ठ विभूतियाँ हैं, वह मैं ही हूं। कैनेडी को पहचानिये, शेख मुजीब को पहिचानिये इन्दिरा को पहिचानिये। ये सब कौन हैं। द्वापर के कृष्ण तो आपको बहुत अच्छे लगे थे जिनकी बाँसुरी की धुन ने गोप बालायें पागल बना रखी थीं लेकिन इस युग

के वीटिल लड़कों के बारे में आपका क्या विचार है। उनके संगीत से और रूप से आधुनिक युग की हज़ारों बालिकायें बावली बनती आपको नहीं दिखाई दीं। यह आकर्षण शक्ति—यह कृष्णत्व वे कहाँ से ले आये। शेख मुजीब के विचारों में आपको शिवत्व दिखाई नहीं दिया, इन्दिरा के तेज और पराक्रम में, उसके वात्सल्य में आप को दुर्गा का तेज और प्यार नहीं दिखाई दिया आश्चर्य है ?

भक्त महाशय। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं कि आप मुझे प्यार करते हैं लेकिन यह तो बताइये कि आप मुझे समझने की चेष्टा करेंगे या नहीं। ठीक है द्वापर में एक पूर्ण मानव के रूप में उतरा था, बड़ा मनोहर शरीर था मेरा, बड़ी मोहक अदायें थीं। लेकिन इससे क्या। क्या आज भी वैसी ही मोहक विग्रहों की मैंने कमी कर रखी है क्या ? अजीब बात है आज उस शरीर के विघटन के हजारों वर्ष पश्चात् भी कोई मेरी बाँसुरी पर फिदा है कोई गोप कुमारियों के साथ मेरा जो रस रास चल रहा था उसे याद कर आहें भर रहा है तो और कोई और कुछ नहीं तो मेरे पीले कपड़ों, मोर मुकुट और बाँसुरिया की स्मृति में बहाल हो रहा है। कोई ज़िद्द कर रहा है—

"शीश मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल,
एहि बानक मो मन बसो सदा विहारी लाल।"

यानी अगर विहारी लाल जी शीश मुकुट वाली ड्रेस में आयेंगे तभी आप उन्हें पहचानेंगे। कोई राम भक्त मन्दिर में जाकर अपनी अनन्यता का परिचय इस प्रकार दे रहे हैं—

'कहा कहूं छवि आप की भले बने हो नाथ,
तुलसी मस्तक जब नवै धनुष बाण लो हाथ।

यानी कि भगवान् की पहचान में ड्रेस का बहुत अधिक महत्व है। स्वयं भगवान भी ड्रेस बदल कर धनुष वाण हाथ में लेकर न आये तो आप उन्हें पहचानने से इनकार कर देंगे। साफ इन्कार।

तो मेरे पगले भक्तों पहले तो तुमने मुझ अनन्त, असीम सनातन-अव्यक्त चेतना के चारो ओर घेरा डालकर एक ही विग्रह के शरीर में सीमित किया, उस

खास विग्रह के बाहर, जो मेरा अव्यक्त, अनन्त विस्तार है है उसे समझने से इन्कार कर दिया फिर उस शरीर के अन्दर जो अविनाशी परमात्मा का अंश अपनी विभूतियों तथा तेज के साथ वैठा हुआ है उसे अनदेखा करने लगे। तुम अवतार विग्रह के केवल शरीर मात्र को पूजने लगे यहां तक कि विग्रह के मानवीय गुणों को भी भुला दिया और खाली उसके बानक ड्रेस पर तुम्हारा ध्यान केन्द्रित हो गया। मोर-मुकुट मुरली और मेरी पीली धोती आप के लिये सब कुछ हो गई अविनाशी अक्षय अव्यक्त परम-पुरुष (Supreme spirit) आप के लिये कुछ भी न रहा, जो अपने आकार हीन अखण्ड-चैतन्य रूप में समस्त विश्व को व्याप्त कर रहा है। पृथ्वी और आकाश के बीच का सारा आकाश जिसने घेर रक्खा है—(द्यावा–पृथिव्यो: इदं अन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वा:) और जो देश-काल की सीमाओ को तोड़कर अनन्त काल और स्थान में (time and space) व्याप्त हो रहा है, ईश्वर का वह विराटोत्तर रूप आपके लिये कुछ भी न रहा। उसके बारे में आपने सोचने समझने की कोई जरूरत नहीं समझी। उसके बाद आपको यह शिकायत कि भगवान् आपकी नहीं सुनते। अरे भगवान् को तो पहले ही आपने एक शरीर और ड्रेस में सीमित कर दिया वह आपको असीम और अक्षय फल कैसे देंगे।

अनन्त को सीमित वनाने की प्रक्रिया आपके भक्ति साहित्य में कुछ ऐसी चली कि अनन्त अपरिसीम सनातन अव्यक्त (super Lord of spirit) को आपने एक खिलौना बना दिया। कोई द्वापर कालीन मेरे एक विग्राह को रो रहा है, कोई त्रेता कालीन मेरे एक रूप के दर्शन के लिये मतवाला हो रहा है। इन अवतारों के शरीर काल-क्रम से, अधिभूत के नियम के अनुसार नष्ट हो गये। शेष वही अशेष रहा लेकिन भक्त महाशय तो देखने की रट लगाये जा रहे हैं। उसी शरीर के अन्दर खड़े अविनाशी तत्व से उन्हें कुछ मतलब नहीं। अपनी-अपनी कल्पना से इन विग्रहों की मूर्तियां बना बनाकर मन्दिरों में प्रतिष्ठित की गई। फूल-माला, भोग चढ़ने लगे। मानो वह आकार, वह शक्ल, वह खास सूरत ही ईश्वर थी।

मेरे भोले प्यारे भक्तों-अनेकों बार आपकी प्रिय मूर्तियां टूटीं। मूर्तियों को तुड़वाकर मैंने ही आपको यह शिक्षा दी थी कि मैं केवल मात्र मूर्ति नहीं हूं। मुझे मूर्ति के अन्दर सीमित करने का प्रयास न करो, मूर्ति के अन्दर और बाहर-अनन्त अछोर दिशाओं में व्याप्त मुझ सर्व व्यापक को पहचानों। परात्पर सत्ता को नमन करो, लेकिन तुम लोगों को बोध नहीं हुआ। बार-बार मूर्तियाँ तोड़ी गई और तुम रोते रहे। अरे पगले तुम अपने इष्ट देव को पहचानों, वह इन आकारों और

विग्रहों में चमक जरूर रहा है लेकिन वह इससे परे, बहुत दूर-दूर तक भी है। विद्युत् बल्वों में चमक रही है लेकिन विश्व-विद्युत् उनसे बाहर बहुत-बहुत सी है। वह क्या बल्वों में पूर्णतः समा सकती है।

सोमनाथ की प्रतिमा टूटने पर तुम चीत्कार क्यों कर उठे। भगवान सदाशिव जो कि अनन्त अक्षय चेतना के महासागर हैं, सोमनाथ की प्रतिमा में सीमित नहीं थे। उसके टूटने पर वे शेष नहीं हो गये वे अशेष थे और अशेष हैं प्रतिमा के टूटने से तो उनका एक नाखून भी नहीं टूटा।

जब-जब तुम्हारी प्रतिमायें उन लोगों तोड़ी गई, जो मूर्ति पूजा को पसन्द नहीं करते थे तुम्हें यही सबक सिखाने की कोशिश की गई कि मैं आकार-हीन हूं। इन छोटी-छोटी प्रतिमाओं में सीमित नहीं हूं। ठीक है कि तुम प्रतिमा के माध्यम से मेरी अर्चा करते हो, सर्व व्यापक होने के नाते मैं प्रतिमा में भी अपने अव्यक्त रूप में विद्यमान हूं और अर्चा ग्रहण भी कर लेता हूं। लेकिन मैं सबका सब प्रतिमा में नहीं समा सकता। मूर्ति एक प्रतीक है, व्यक्त प्रतीक, उस सनातन अव्यक्त की जो समस्त अवतारों का पिता है।

अवतारों का शरीर देवालय है वक्त पड़ने पर और युग की पुकार आने पर विशिष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये मैं अवतार रूपी शरीर में पदार्पण करता हूं और अपना कार्य समाप्त करने के बाद ज्यों का त्यों शरीर से बाहर चला हूं। शरीर के मरने जीने से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं जिस अव्यक्त परम पुरुष ने (Supreme spirit) श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश कर द्वापर में दुष्कृतियों का विनाश और सत्पुरुषों का परित्राण किया था वह परात्पर चिन्मय पुरुष (आत्मा) पहले ही समाधि की अवस्था में बाहर जा चुका था और जो व्याध के तीर से मरा था वह तो एक शरीर मात्र था। अविनाशी कृष्ण, कृष्ण चेतना अब भी है.. मैं अब भी बोल रहा हूं—मेरी बात सुनों, अपनी भूल को समझो।

"तुम लोगों ने अपने जिन अलग-अलग इष्ट देवों की कल्पना कर रखी है हनुमान, दुर्गा, शिव, भैरव राम आदि की-पहले तो तुमने उन्हें अलग-अलग देवता मानकर अलग-अलग व्यक्तित्वों से मण्डित कर दिया है, फिर एक इष्ट देव को दूसरे इष्ट देव से अलग मानकर, तुम दूसरे इष्ट देवों के साथ पराया-पन करने लगे, उनका तिरस्कार करने लगे। दूसरे उन्हें परात्पर सत्ता से भिन्न मानने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि तुम्हारे देवता सर्वोत्कृष्ट फल देने वाले न रह गये।

वे अनुष्ठान करने पर सीमित इच्छाओं को तो पूरी कर सकते हैं पर सनातन परात्पर सत्ता से भिन्न होने के कारण ज्ञान और अमरता नहीं दे सकते।

फोटो सिर्फ उस व्यक्ति की ओर संकेत कर सकती है जिसकी कि वह फोटो है उसकी जगह ज्यों की त्यों नहीं ले सकती। उसी प्रकार मूर्त्ति उस अव्यक्त सत्ता की ओर संकेत कर सकती है स्वयं परात्पर सत्ता नहीं बन सकती है। इसी तरह अवतार पुरुष या कोई भी महान् वन्दनीय पुरुष उस सनातन अव्यक्त की ओर इशारा तो कर सकता है किन्तु अव्यक्त निराकार पुरुष (Supreme spirit) की सम्पूर्णता को अपने में समेट नहीं सकता। इसलिये अवतार-विग्रह की बन्दना करने वाले को ध्यान रहना चाहिये कि यह साकार पुरुष जो मेरे सामने खड़ा है, मेरी बन्दना उसके माध्यम से उसी अव्यक्त सनातन Eternally unmanifest परम पुरुष को प्राप्त हो रही है। यह सनातन अव्यक्त जो ऐसे-ऐसे अनेकों अवतारों का अक्षय स्रोत हैं। दशरथ पुत्र राम के विग्रह के माध्यम से पूजा उस राम की हो रही है जो "राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी सर्व रहित सब उर पुर वासी है।" वह चिन्मय, चित्पुरुष सब विग्रहों में व्याप्त है और उनसे परे भी है। उस सनातन अव्यक्त पुरुष की प्रतिमा कोई नहीं तोड़ सका है। सारे आकार उससे उत्पन्न होते हैं और उसी अव्यक्त में लय हो जाते हैं। चेतना के रूप में वह हर प्राणी में उतर रहा है। उसी का तेज श्रेष्ठ विभूतियों के रूप में अवतार-पुरुष में चमकता है। आवश्यकता न रहने पर फिर वह तेज अव्यक्त में लय हो जाता है। सनातन अव्यक्त निराकार है, फिर भी सारे अवतार, सारे रूप (Form) उसी के हैं। आकार-हीन होने पर भी विश्व के सारे आकार उसी से प्रकट हो रहे हैं और उसी में लय हो रहे हैं। अहो आकार-हीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि। इस चिरन्तन शाश्वत अवतारों के पिता को पहचानो। यह जो अव्यक्त अक्षर परात्पर है यही मेरा धाम है। बल्कि मैं वही हूं। जो मेरे इस सनातन-अव्यक्त रूप को न पहचानकर अविधि पूर्वक अलग-अलग देवताओं की पूजा करते हैं वास्तव में तो मेरी ही पूजा करते हैं केवल उनका ज्ञान अधूरा है। उन देवताओं के रूप में उनकी श्रद्धा का फल मैं सनातन अव्यक्त ही देता हूं। वे इस बात को नहीं जानते, अलग-अलग देवताओं के अस्तित्व को समझ कर अलग-अलग पूजायें करते फिरते हैं। यदि उन्हें यह ज्ञान हो जाय कि जिन देवताओं की उन्होंने कल्पना कर रखी है वे और कोई नहीं परात्पर सत्ता में उनकी कल्पना से गढ़ी हुई मूर्तियाँ हैं और फल देने वाला कोई अलग देवता नहीं स्वयं परात्पर सनातन अव्यक्त है, तो फिर उन्हें सभी इष्ट देवों और विभिन्न अवतारों में एक ही परमात्मा का तेज झलकता हुआ दिखाई देने लगेगा और वे मोहम्मद के एकेश्वर वाद का मर्म समझ

सकेंगे कि एक ही ईश्वर है। माध्यम चाहे कोई भी क्यों न हो, देव-विग्रह हो, मानव विग्रह हो, उनके पीछे खड़ा मैं अविनाशी अव्यक्त परम आत्मा ही समस्त पूजायें ग्रहण करता हूं।

मैं ही सत्कर्मों का फल देता हूं। सारा व्यक्त जगत् सारे व्यक्त प्राणी मुझ अव्यक्त सनातन-आत्मा से निकलते हैं और मुझी में लय हो रहे हैं। मैं अमित पराक्रमी परम पुरुष हूं। यह सारी व्यक्त सृष्टि, यह आकाश, ये अन्तरिक्ष में निराधार घूमते हुये ग्रह, ये अगाध जल राशियाँ, यह अग्नि और प्रकाश का गोला सूर्य यह सब मुझ अव्यक्त के पराक्रम से व्यक्त हुये हैं। सारा ब्रह्माण्ड मुझमें स्थित है। मैं अनन्त-वीर्य परम-पुरुष हूं। सूर्य और चन्द्र मेरी आँखें हैं। पृथ्वी से लेकर आकाश तक के सारे अवकाश में मैं समाया हुआ हूं। सारी दिशायें मुझमें समाई हुई हैं। प्रकृति के पीछे शान्त निस्तब्ध मूल-प्रकृति है, निराकारा प्रकृति (Unmanifest nature) महाशून्य वह भी मुझसे उत्पन्न हो रही है। मैं सनातन अव्यक्त उससे भी आगे हूं। मैं ही अव्यक्त हूं, अक्षर हूं, सारी सृष्टि मुझमें से ही व्यक्त हो रही है फिर मुझमें ही विलीन होकर अव्यक्त हो रही है। मेरे ही तेज के कण आत्मा के रूप में छिटककर जीवन ज्योति बन जाते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि मुझ अव्यक्त के एक अंश का ही व्यक्तीकरण है मैं ही समस्त प्राणियों की चेतना हूं। लेकिन जब मानव शरीर में मेरा तेज उतरता है तो लोग उसे समझ नहीं पाते, साधारण मनुष्य की अति साधारण बात समझकर उसकी अवहेलना करने लगते हैं। वे यह भी नहीं समझ पाते कि तेजस्वी के तेज और पराक्रम के रूप में जो विभूति दिखाई दे रही है, वह उसी अमित पराक्रमी सनातन अव्यक्त पुरुष की एक किरण है। मैं अजन्मा होने पर भी, अव्यक्त होने पर भी प्रकृति के नियमों का सहारा लेकर मानव शरीरों में प्रकट हो जाता हूं और फिर अपनी सनातन-अव्यक्त अव्यय आत्मा में लय हो जाता हूं। यही मेरे अव्यक्त और व्यक्त रूपों का सम्बन्ध है।

[गीता में सनातन अव्यक्त]

त्वम् अक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्यं परं निधानं
त्वमव्यय: शाश्वत धर्मगोप्ता, सनातनस्त्वम् पुरुषो मतोमे।
अनादि-मध्यान्तं अनन्त-वीर्यं, अनन्त बाहुं शशि सूर्य-नेत्रम्
पश्यामि त्वां दीप्त हुताश वक्त्रं स्वतेजसा विश्वं इदं तपन्तं।
परस्तस्मात्तु भावो अन्यो अव्यक्तो अव्यक्तात् सनातन:

यः सर्वेषु भूतेषुनश्यत्सु न विनश्यति ।
अव्यक्तो अक्षर इत्युक्तः तमाहुः परमां गतिम्
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम ।
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया
यस्य अन्तः स्थानि भूतानि येन सर्वं इदंततम् ।।

———

प्रेम

प्रेम-सृष्टि का ईश्वरीय संविधान है।
"या देवी सर्वभूतेषु प्रेमरूपेण संस्थता।"
'अखिल सृष्टि यह मोर उपाया,
सब पर मोर बराबर दाया।

मेरी एक पुत्री मुझसे पूछ रही है दैवी सूक्तम् में मानव हृदय के हर (positive) भाव में जगदम्बा अनादि शक्ति का प्रत्यक्षीकरण देखा गया है। चेतना ((consciousness) मेधा (intelligence) स्मृति (memory) धृति (perseverence) क्षमा (forgiveness) यहाँ तक निद्रा और भूख जैसी प्राकृतिक स्थितियों में अव्यक्त महाशक्ति का, प्रकटीकरण देखा गया है तो जो मानव हृदय का सबसे श्रेष्ठ उदात्त और तन्मयकारी भाव है जिसमें कि मानवीय चेतना पूरी तरह से डूब जाती है—उस महान्भाव 'प्रेम' का क्यों ज़िक्र नहीं है। प्रेम से उन प्राचीन ऋषियों को क्यों डर लगता था। मानवीय हृदय के महाभाव प्रेम के रूप में वे जगद्धात्री को क्यों नहीं देख सके।

मैं मानता हूं दुर्गा—सप्तशती के ऋषियों के दर्शन में कहीं कोई कमी अवश्य रह गई होगी वरना वे अव्यक्त महाशक्ति को प्रेम के रूप में. उतरते हुए अवश्य ही देख सकते। प्रेम जो कि एक महाशक्ति के रूप में परात्पर चेतना से उतरता है कि और एक विश्व का निर्माण करता है, प्रेम जो एक जीव और दूसरे जीव के बीच का वह चेतन-धागा है, सूत्र है जिसमे बँधकर एक जीव दूसरे जीव को पहचान रहा है। प्रेम वह शक्ति है जो सारे विश्व को एक संगठित, समन्वित रूप प्रदान कर रही है, प्रेम वह महाशक्ति है जो सृष्टि को खण्ड खण्ड होने से बचा रही है। मानव हृदय के स्तर पर जो प्यार के आकर्षण के रूप में बह रही है, ग्रहों को स्तर पर वही गुरुत्वाकर्षण (gravitational pull) के रूप में ग्रहों को एक दूसरे के चारों ओर घुमा रही है। विश्व के अणु परमाणु प्रेमाकर्षण से बँधे हुये एक दूसरे के चारों ओर घूम रहे हैं। लोहा-चुम्बक की ओर इसी आकर्षण से खिंच रहा है। सृष्टि के अणु-कण में प्रेमाकर्षण शक्ति अपनी सम्पूर्ण सत्ता के साथ विराजमान है। मैं उस पुत्री का समाधान आज इस श्लोक में करता हूं।

"या देवी सर्व भूतेषु प्रेम रूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै । अगर महाशक्ति प्रीति के रूप में मानव हृदय में नहीं उतर सकती तो फिर किसी रूप में नहीं उतर सकती । "प्यार ही ईश्वर है" प्यार ही मानवीय हृदयों की दिव्य चुम्बक है । इस सृष्टि में ईश्वर निश्चय पूर्वक प्यार के रूप में ही उतर रहा है । अन्य भाव प्यार के अनुभाव हैं या उसकी विकृति हैं ।

सृष्टि का संविधान

आप एक राष्ट्र के निवासी हैं । हर राष्ट्र का अपना एक संविधान होता है । हर देशवासी को उसके प्रति निष्ठा और वफादारी की शपथ लेनी होती है । इस सृष्टि को सृष्टिकर्ता ने एक ही शब्द का संविधान दिया है, उस ईश्वरीय संविधान का नाम है "प्रेम" ।

प्रेम को आप प्यार कह लीजिये, मोहब्बत कह लीजिये, इश्क कह लीजिये, लव (Love) कह लीजिये । लेकिन यह अच्छी तरह समझ लीजिये कि सृष्टि के जो कि ईश्वर का अपना स्वराष्ट्र है, संविधान का मूल मंत्र "प्यार" है । प्रेम ईश्वर की महाशक्ति है, यह वही (Moral order), धर्म है जो सृष्टि को धारण किये हुए हैं जिस दिन इस सृष्टि में यह नहीं रहेगा उस दिन सृष्टि खण्ड खण्ड होकर बिखर जायेगी । जैसे भौतिक स्तर पर यदि ग्रहों का परस्पर आकर्षण समाप्त हो जाय तो ग्रह अन्तरिक्ष मे एक दूसरे के चारों ओर घूमना छोड़कर लक्ष्यहीन भटकते हुए एक दूसरे से टकराकर विनष्ट हो जायेंगे । वैसे ही प्रेम के चुम्बकीय आकर्षण के अभाव में कुटुम्ब, परिवार, जातियाँ, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता खण्ड-खण्ड होकर बिखर जायेगी । प्रेम ही वह सीमेन्ट है जो हर इकाई को विश्व की दूसरी इकाइयों से जोड़कर रखती है । प्रेम ही ईश्वरीय राष्ट्र का वह विधान है जिसके बारे में ईश्वर यह अपेक्षा करता है कि उसके राष्ट्र का हर निवासी प्रेम के विधान में आस्था रखेगा । अपने जीवन में सहर्ष उसे उतारेगा । सृष्टि के इस ईश्वरीय संविधान का पालन जब तक होता रहेगा तब तक जीव मात्र का कल्याण ही कल्याण है । जिस दिन प्यार के इस कल्याणमय प्रशस्त मार्ग से, ईश्वरीय संविधान के इस अटल-नियम से, प्यार के इस कल्याणमय प्रशस्त-मार्ग से, मनुष्य की आस्था हट जाती है उस दिन प्रशासक को स्वयं हस्तक्षेप कर कठोर दण्ड देना पड़ता है । प्रेम सृष्टि का संविधान, मौरेल आर्डर है—जब सामूहिक और संगठित रूप से जीव इस विधान की अवज्ञा करने लगते हैं तो परात्पर शक्ति उग्र होकर उन्हें कठोर दण्ड देती है । घृणा और द्वेष की अव्यवस्था फैलाने वाले दुष्टों को महा

शक्ति दण्डित और निर्जीव करती है। प्रेम के संविधान की पुनः प्रतिष्ठा होनी है क्योंकि यह सृष्टि जीवों के आपसी प्रेम और परात्पर के जीवों के प्रति प्रेम के आधार पर ही टिक रही है। इसलिये ईश्वर कठोर शासक के रूप में अपने संविधान को पुनः प्रतिष्ठा दिलाता है और याद रखिये कि अपने संविधान के रूप में ईश्वर स्वतः उपस्थित है।

प्रेम कहाँ से क्यों और कैसे

जागरुक चैतन्य महाशक्ति ने अपने ही अन्दर के तत्वों को विकसित कर सृष्टि-निर्माण किया है। इसलिये अपनी सृष्टि के ज़र्रे ज़र्रे से उसे प्यार है। अपनी सृष्टि की हर इकाई पर वह फिदा है, जैसे एक कलाकार अपनी-अपनी कला पर, माँ अपने बच्चे पर मरती है वैसे ही वह सृष्टि के अणु परमाणु पर जी जान से फिदा है। अपनी बनाई कलियों पर, रंगीन तितलियों पर, फूलों पर, एक-एक चिड़िया पर, एक-एक पौधे पर उसे असीम प्यार है और क्यों न होगा आखिर ये सब उसी के तो उदर से निकल रहे हैं। एक-एक मक्के के भुटटे को देखिये, कैसे प्यार से प्रकृति माता ने उसे रेशमी लच्छों से और फिर कागजी ढक्कनों मे ढका है, कहीं कोई उनके भुट्टों को खराब न कर दे एक-एक गेहूं का दाना, चने का दाना देखिये हर दाने के लिये अलग ढक्कन है। इन सब इन्तज़ामों में सृष्टि के कर्ता तथा स्वामी का असीम प्यार प्रकट हो रहा है जैसे कोई मुर्गी बड़े जतन से बड़ी तन्मयता से, बड़े प्यार से अपने अन्डों को सेती है वैसे ही वे परात्पर प्रभु अपने अन्डों को सेते हैं। सृष्टि के कण-कण से सृष्टि-कर्ता को असीम प्यार है, लगाव है।

प्राणी जगत् में जहाँ-जहां जीवन है, वहां-वहां आरगैनिक मैटर को जैविक पदार्थ को शुद्ध चेतन आलिंगन कर रहा है वहीं वहीं जीवित प्राणी का (अस्तित्व प्रकाश में आ रहा है। जीवित मूर्ति में जीवन के रूप में स्वयपरात्पर प्रभु का चिदश, एक नन्हां बिन्दु बैठा है, परात्पर जो कि चिति के (Consciousness) विशाल सागर हैं उन्हीं के अंश हर जीवित शरीर में opetate कर रहे हैं। इसलिये परात्पर या Lord of spirit का अपने चिदंशों के प्रति अनन्त असीम प्यार है। अगर आप ईश्वर की एक माँ या पिता के रूप में भावना करते हैं तो देखेंगे दिव्य माता का अपने जीव-पुत्रों के प्रति अनन्त असीम अक्षय प्यार है, क्योंकि जीव के रूप में स्वयं ईश्वर के ही अंश उतरे हैं—अपने जिगर के टुकड़ों पर उनका असीम प्यार क्यों न होगा।

परात्पर प्रभु का प्यार, हर क्षण, हर पल जीव-बालक पर बरस रहा है और यह प्यार जीव के ऊपर उनकी करुणा का रूप ले लेता है। जब एक महा-शक्ति अपनी ही अंश-भूत छोटी शक्ति को प्यार करती है तब वह प्यार करुणा का रूप ले लेता है। अपने चिदंशों पर, हर नन्हें-नन्हें जीव पर परात्पर की असीम करुणा, असीम लाड़ बन कर ढुलक रही है। हर जीव जगन्माता की प्यार भरी गोदी में मस्ती से मचल रहा है। इस अनुभूति में डूबिये तो सही, यही सृष्टि आपके लिये दिव्य हो उठेगी।

परात्पर की करुणा, जिसे कुछ सन्तों ने कृपा कहा है, क्राइस्ट ने (Grace) ग्रेस कहा है, हर समय अपने प्यारे बच्चों पर बरस रही है। हर बच्चा अपने पिता के लाड प्यार करुणा कृपा की बारिश में भीग रहा है। प्यार की मस्ती भरी हवायें परात्पर से जीव की ओर चल रही है। जीव पुलकित होकर झूम रहा है।

जब ईश्वर का प्यार या करुणा या ग्रेस (grace) नारी के ऊपर बरसती है तो वह मां बनती है और उसे प्यार करने के लिये मिलता है एक बहुत ही प्यारा मन-भावन शिशु। माता का प्यार बच्चे के प्रति या बच्चे का प्यार माता के प्रति, दोनों ही धाराओं में ईश्वर की करुणा प्रवाहित हो रही है। इस कथन का मर्म एक मां बहुत ही आसानी से समझ सकती है। जब ईश्वर का प्यार या कृपा एक युवक के ऊपर बरसती है तो उसे प्यार करने के लिये एक प्रेयसी मिलती है। सौंदर्य, माधुर्य लालित्य और भावों की साकार-मूर्ति एक सुन्दर युवती का प्रेयसी के रूप में मिलना जीव के ऊपर ईश्वर का विशेष लाड़ है। भगवान की कृपा जब युवती कन्या के ऊपर होती है तब उसे अपने को प्यार करने वाला, एक चाहने वाला युवक मिलता है जो उसकी हर अदा को अपने गले का हार बनाता है। स्त्री-पुरुष प्रेम के रूप में ईश्वरीय कृपा की बड़ी ही प्रचण्ड तेजस्वी और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। बड़ी ही कृपा ईश्वर की जीव पर होती है तब पुरुष को प्यार करने वाली एक नारी मिलती है और नारी को चाहने वाला एक पुरुष मिलता है। ईश्वरीय कृपा नारी-पुरुष के पारस्परिक प्रगाढ़ प्यार के रूप में चिरन्तन काल से बहती आई है और इस प्यार से ही सृष्टि का हर प्रकार से कल्याण और सृष्टि-क्रम का आगे बढ़ना सम्भव होता है।

यह तो मैंने दो-एक उदाहरण दिये हैं कि किस प्रकार मानवीय हृदय के प्यार के रूप में ईश्वरीय करुणा उतरती है। ईश्वरीय करुणा का प्यार के रूप में अन्तःकरण में प्रवेश, जीव को एक विशेष क्षमता, एक विशेष तेज प्रदान करता है। प्रेम के इस तेज को धारण कर मनुष्य इस संसार में कठिन से कठिन कार्य ·र

गुजरता है। प्रेम की महान् शक्ति के करिश्में आपने अपने जीवन में देखें तो होंगे। कालिदास का जीवन वृत्त याद करिये। विद्योत्तमा के प्रेम ने उसे किस प्रकार निरक्षर भट्टाचार्य से विश्व-कवि बना दिया। नारी का प्रेम एक ऐसी महाशक्ति है जो एक बार तो मुर्दे को भी उठाकर खड़ा कर देती है।

जब प्रेम के माध्यम से अनिर्वचनीय क्षमता और तेज जीव पुत्रों के शरीर में उतरता है तो परात्पर प्रभु चाहते हैं कि जीव उस प्रेम को उदारता-पूर्वक अपने अन्य साथियों में वितरित करे और प्रेम के माध्यम से प्राप्त तेज का उपयोग लोक-कल्याण (positive way) में करे। परात्पर अपने पुत्रों को प्यार करते हैं और पुत्र उनके दूसरे पुत्रों को प्यार करे वह ऐसा चाहते हैं। वे फिर अन्यों को प्यार करें। इस प्रकार प्यार की अटूट श्रृंखला चालू रहे—यही ईश्वरीय सकल्प है। (divine will) परात्पर उस व्यक्ति से खुश नहीं रह सकते जो व्यक्त जगत् के जीवों को उनका (due love) अपेक्षित प्यार न देकर, अदृश्य, कल्पित देवताओं और पूर्व काल के ऐतिहासिक अवतारों को प्यार करने का ढोंग रचते हैं।

आपको अभी प्यार करना है, इसी समय और जो भी व्यक्ति तत्काल आपके सामने है। उसी के प्रति अपनी प्रेम धारा बहानी है। समझ लीजिये कि जो बहिरात्मा आपके सामने खड़ी है—वही आपके प्यार को पाने की हकदार है और परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में आपका प्रेम ग्रहण कर रही है। आपका प्रेम-अर्घ्य तुरन्त का तुरन्त परात्पर के चरणों में पहुँच रहा है। एक मिनट की भी देर नहीं लग रही। हाँ जो व्यक्ति मानवीय शरीर में स्थित मुझ सनातन अव्यक्त का अपने हृदय की प्रेम धारा से अभिषेक नहीं करते, मानव शरीर में स्थित मुझ अविनाशी परमात्मा का तिरस्कार करते हैं और अपने मन में कल्पित, गढ़े हुये आकारों और मूर्तियों का पूजन करते रहते हैं व उनके दर्शन की कामना से रोते कलपते रहते हैं उन्हें कभी मन की शान्ति नहीं मिल सकती। सच्चे सुख से वे प्रायः वंचित रहते हैं। मानव-बालक के शरीर में स्थित परमात्मा आपसे प्यार मांगे और आप अलग से एक मूर्ति पीतल की गढ़कर उसे भोग लगायें। जीता जागता बच्चा आप से मिठाई माँगे उसे आप न दें तो क्या आपकी गढ़ी हुई पीतल की मूर्ति परात्पर की गढ़ी हुई सजीव मूर्ति से अधिक सुन्दर है। अपने घर की राधा के प्यार भरे दिल की आप अवहेलना करें और मन्दिर में स्थिति मूर्तिमयी राधा की आप प्रार्थना करने चल दें तो क्या अव्यक्त प्रेमाशक्ति राधा आपसे प्रसन्न होंगी ?

एक स्त्री यदि अपने चाहने वाले प्यार और सुरक्षा देने वाले पति में विश्वम्भर भगवान का आवाहन नहीं कर सकती तो मन्दिर में बैठी हुई ठाकुर जी

की मूर्ति उसका क्या योगक्षेम वहन करेगी। शिष्य यदि गुरु को महादेव मानकर आदर नहीं दे सकता तो कोई और महादेव उसके लिये क्या आयेंगे। आप व्यक्त को प्यार करेंगे तो उसके पीछे खड़ा हुआ अव्यक्त स्नेहार्द्र हो आपके ऊपर मुस्करायेगा। आप व्यक्ति की आराधना करेंगे तो अव्यक्त आपके ऊपर मुस्करायेगा। यह है व्यक्त और अव्यक्त का सम्बन्ध।

प्यार एक महान ज्योति है

ज्ञान के स्तर पर प्रेम का एक ही रूप है। जैसे श्वेत-रश्मि, सफेद लाइट स्पैक्ट्रम के माध्यम से पास होकर विविध रंगों में बदल जाती है। सात रंगों का सौंदर्य अलग-अलग एक दूसरे से निराला। इसी प्रकार परात्पर से निकलती हुई प्रेम-ज्योति पहले एक ही होती है फिर भिन्न-भिन्न परिवेशों और परिस्थितियों में पात्रों के अनुसार भिन्न रूप धारण कर लेती है।

सृष्टि में कहीं स्त्री-पुरुष के बीच के मधुर भाव में प्रेम की महान् ज्योति छिटक रही है। कहीं पिता-पुत्र के बीच, कहीं माता पुत्र का वात्सल्य-भाव, अलौकिक प्रेम के आलोक से मण्डित हो रहा है। कहीं भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के बीच मैत्री एवं प्रसन्न करने की कला के रूप में। कहीं सह-अस्तित्व में, कहीं सहगान में, कहीं सामूहिक नृत्य में प्रेम का उल्लास प्रकट हो रहा है। इस सृष्टि में जीव-जीव के प्रति जो भी रिश्ते सोचे जाते हैं जो प्रेम के धागे से गुंथे हुए हैं वे सभी महान हैं, सभी स्पृहणीय हैं। प्रेम का कोई भी रिश्ता कहीं भी गर्हित नहीं है गर्हित है प्रेम का अभाव। वात्सल्य, दाम्पत्य, सख्य, सेवाभाव, सभी रिश्ते अपनी जगह पर दिव्यता से मण्डित हैं। आपको अपने दिल से यह बात निकाल देनी चाहिये कि रिश्तों में नारी का प्रेम आपके लिये गर्हित है। अजी वह प्रेम, तो सृष्टि के मूल में है। सारी संस्कृतियाँ मधुर भाव के ऊपर पनप रही हैं। ये काव्य, ये सौंदर्य वर्णन, ये रस समाधियाँ ये सब क्या है ?

प्रेम का आध्यात्मिक आधार

किसी भी रिश्ते में प्रकट होने वाला प्रेम हर हालत में बन्दनीय है, स्पृहणीय है। यह जरूर है कि प्रेम का प्रसार तात्कालिक सामाजिक मर्यादाओं के अन्दर ही होगा। जैसे विद्युत के तारों को रबड़ के खोल से ढकना सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक है। उसी प्रकार प्रेम को भी मर्यादा का कवच चाहिये। मैं प्रेम के साथ सिर्फ एक ही मर्यादा बांधता हूं कि आपके प्रेम के व्यक्तीकरण से किसी को ठेस न

पहुँचे, कोई hurt न हो जाय। किसी को नुकसान न पहुँचे, किसी अन्य को चोट न लगे। यदि आपके प्यार से किसी को ठेस या नुकसान नहीं पहुंच रहा है तो आपका प्रेम निश्चय ही लोक पावन है। सम्बन्धों की मर्यादा में बहता हुआ प्रेम लोक पावन होता है। यदि आपके प्यार के साथ-उसके आध्यात्मिक आधार की अनुभूति हो तो क्या ही कहना है। ज्ञान के साथ divine awareness के साथ संयुक्त होने पर प्रेम का रूप अलौकिक हो उठता है. फिर भी ज्ञान का आधार न भी हो तो भी, प्रेम हर हालत में कल्याणकारी शक्ति है।

प्रेम की आध्यात्मिक चेतना

एक ही ईश्वरीय चेतना समस्त जीव देहों में विस्तार पा रही है। यह प्रेम का आध्यात्मिक विस्तार है। अव्यक्त सनातन परम पुरुष (The unmanifest lord of universe) की दिव्य चेतना, पहले विश्वात्मा के रूप में (विराट् प्रकृति में स्थित परमात्मा) अवतीर्ण होती है, फिर चेतना की वह प्रकाश धारा असंख्य-असख्य रवि-रश्मियों की तरह बिखर कर अगणित जीवों में प्रविष्ट होती है। प्रकृति तत्वों से निर्मित, अगणित देहें तब जीवन-स्पन्दन से युक्त जीवित-प्राणी बन जाती हैं। उनके अन्दर एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है जिसे चैतन्य कहते हैं—consciousness कहते हैं। यह चैतन्य प्राणी अपने चैतन्य के द्वारा (consciousness) बहिर्जगत् के प्रभावों को ग्रहण करने व निर्णय करने की क्षमता रखता है। साथ ही अपने सीमित शरीर में अपना विशिष्ट 'मैं' (अहं) का भाव रखता है। यदि परात्पर एक अगम अथाह अमानवीय शक्तियों वाले सनातन पुरुष हैं—और देशकाल स अतीत अपनी चेतना के प्रवाह में मग्न है तो यह छोटा सा चिदश मानवीय या प्राणी देह में सीमित आकार, बल तथा क्षमताओं वाला परत्पर का चिदंश है, छोटा भगवान् है। मात्रा में भले ही अन्तर है, quality या गुणों में नहीं। बूंद और सागर की तरह।

जब एक ही चेतना (ईश्वरीय) हर शरीर में, हर मानव देह में अथवा किसी भी प्राणी देह में बह रही है तो एक जीव का दूसरे जीव के प्रति प्रेमाकर्षण स्वतः सिद्ध है। जब हमें मालूम हो जायेगा कि हमारे सामने बैठे हुये व्यक्ति में हम ही बैठे हैं तो सामने वाले के प्रति स्वभावतः ही प्रेम उमड़ेगा। कहीं भी आप देखिये प्रेम आत्मीयता का ही रूप धारण करके आता है। जिसे हम प्यार करते हैं उसे अपना समझते हैं और जिसे अपना समझते हैं उसी को प्यार करते हैं। जिसे अपना नहीं समझते पराया समझते हैं दोष-दर्शन उसी में होता है। तो वह

आत्मीयता या अपनापन जो हम अपने प्रेमियों के साथ अनुभव करते हैं वह इसलिये हैं क्योंकि वस्तुत: हममें और अन्यों में तात्त्विक अन्तर नहीं है हमारे अन्दर एक ही चतन्य धारा परात्पर से आ रही है। हम दोनों ही परात्पर, शुद्ध चिन्मय प्रभु के अंश हैं। यह एकत्व ही प्यार की आधार भूमि है।

मेरी अन्तरात्मा दूसरे शरीर में स्थित बहिरात्माओं के साथ आत्म तत्व के एकत्व मे बँधी हुई है। यह एकत्व अटूट है। यह सम्बन्ध अलक्ष्य शक्तियों द्वारा निश्चित है। अन्तरात्मा का बहिरात्मा के प्रति आकर्षण अनेकों प्रकार के सम्बन्धों में व्यक्त होता है। कभी बहिरात्मा हमारे पिता के रूप में आती है और हम उसे आदर और सम्मान की भावना देते हैं जो प्यार का ही एक रूप है। कभी बहिरात्मा हमारे सामने माता के रूप में आती है हम उसे माता का प्यार देते हैं। वह भी हमारे ऊपर लाड़ के फूल बिखेरती है। कभी बहिरात्मायें हमारे सामने, मित्र, सखाओं, सखियों और दोस्तों के रूप में आती है और हमारी अन्तरात्मा उन पर मैत्री के फूल चढ़ाती है, मैत्री प्यार ही तो है।

बहिरात्मा कभी प्रेयसी के रूप में आती है—मधुर मधुर भावों से हमारा हृदय भर जाता है और हम प्रेयसी को हृदय से लगाकर अपनी चेतना के सम्पूर्ण अनुराग से उसका अभिषेक करते हैं। अन्त:करण का सम्पूर्ण माधुर्य उस पर उड़ेल देते हैं। प्रियतम-प्रेयसी भाव में प्रेम के वह दिव्य फूल खिलते हैं जो किसी भी कल्पित स्वर्ग में दुर्लभ हैं। यह भाव प्यार का सबसे दिव्य रूप है। आपने अक्सर सुना होगा प्रेमिका-प्रियतम से कहती है—"तुम्ही मेरे भगवान हो, तुमसे भिन्न कोई भगवान है, यह मैं नहीं जानती।" तो सच मानिये, उस समय सच ही सनातन पुरुष उसके प्रियतम के शरीर में स्थित होकर उसका प्यार ग्रहण करते हैं। उसकी यह अनुभूति सच्ची होती है। जिस समय प्रेमार्द्र प्रेमी, अपनी प्रेमिका के कपोलों का चुम्बन करके कहता है—"ए प्रिये। सच जानों तुम्हीं मेरी राधा हो, तो सच ही वह लड़की अनुराधा बन जाती है और अव्यक्त राधा उसके शरीर में प्रविष्ट होकर उसके प्रेमी का प्यार ग्रहण कर लेती है। याद रखिये—आपने भगवान के प्रति जो सख्य, वात्सल्य, दास्य, माधुर्य, आदि सम्बन्धों की कल्पना कर रक्खी है वास्तव में मानवीय सम्बन्धों के ही रूपान्तर हैं। मनुष्य देह में स्थित परम-आत्मा ही इन सम्बन्धों का रसास्वादन करता है। भगवान मानवीय सम्बन्धों में ही अपने को व्यक्त करते हैं, वहीं से अपना भोग ग्रहण करते हैं। अतः हमें सखा, सखी, माता, पिता, पत्नी, प्रेयसी, बेटा, बेटी आदि प्रेम सम्बन्धों में ही भगवत् प्रेम का साक्षात्कार करना सीखना चाहिये। अन्तरात्मा (मेरी आत्मा) का बहिरात्मा (दूसरे की आत्मा)

के प्रति चुम्बकीय आकर्षण (Magnetic pull) कहीं तो मानवीय सम्बन्धों में व्यक्त होता है तो कहीं वह पशु-पक्षियों पर दया का रूप भी ले लेता है। जो हमसे शक्ति बल और मर्यादा में छोटे हैं, उन बहिरात्माओं के प्रति हमारा प्यार करुण की धार बनकर गिरता है। करुणा, मैत्री, श्रद्धा, सम्मान, माधुर्य, इन सबके रूप में प्यार के ही दिव्य फूल खिल रहे हैं। इनमें से किसी भी फूल को चुनकर प्रभु के प्रति निवेदन कर दीजिये आपकी आराधना भगवान ग्रहण कर लेंगे। किसी के सहज आकर्षण के प्रति हमारे खिचाव का नाम प्रेम है। प्रेम चेतना का प्रसार है। लेकिन प्रेम में मनुष्य अपने को प्रेम-पात्र के प्रति समर्पित करता है—अपने को ही दे देता है, वह प्रेम पात्र पर अधिकार प्राप्त करने की कुचेष्टा नहीं करता। प्रेम में मनुष्य प्रेम पात्र के सौन्दर्य, गुणों आदि का समादर करता है उन्हें और भी विकसित, प्रफुल्लित करने का प्रयास करता है। लेकिन प्रेम-पात्र पर किसी भी प्रकार से प्रभुत्व प्राप्त करने की दुर्भावना नहीं रखता—वह चोरी है, डकैती है। प्रेम पात्र की इच्छा को जाने बिना उसे अपने अधिकार में लेने की कोशिश ईश्वर के संविधान के विरुद्ध है और अपराध है। जो प्रिय पात्र को उसकी मर्जी के विरुद्ध अपने कब्जे में में लेने की कोशिश करते हैं वे ईश्वरीय नियमों का उल्लघन करते हैं और अन्ततोगत्वा ईश्वरीय नियमों के अनुसार दडित होकर प्रिय-पात्र के स्नेह से वचित हो जाते हैं। याद रखिये प्रेम निज का समर्पण है—अधिकार नहीं। अन्तरात्मा का विश्वात्मा के प्रति प्रेमाकषण विश्व प्रेम के सम्पूर्ण मानवता के प्रति प्रेम के रूप में प्रकट होता है। जब अन्तरात्मा विश्वात्मा के साथ एकीभूत होने की कामना करती है तब यह कामना जीवों के प्रति निश्छल सेवा भाव के रूप में प्रकट होती है। क्राइस्ट के अनुयायी जो महात्मा, विश्व-मानवों की सेवा करने के लिए अस्पताल खोलते हैं, रोगियों की सेवा करते हैं, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिये विद्यालय चलाते हैं वे समष्टि-रूप धारी विश्वात्मा की उपासना करते हैं। सेवा भाव प्रेम का प्रखरतम रूप है। ऐसे विश्व-सेवकों को मेरा सदा ही आशीर्वाद है।

जो वैज्ञानिक विराट की (प्रकृति) उपासना में लगे हुए हैं वे भी विराट प्रकृति में छिपे हुए, अधिभूत के नियमों का पता लगाकर जीव जगत का कल्याण ही कर रहे हैं। एक वैज्ञानिक जो अटल निष्ठा के साथ किसी रोग की औषधि खोजने में जी जान से लगा हुआ है, सच मानिये, वह विश्व-प्रेम के उदात्त आदर्श से ही प्रेरित है। विश्वात्मा प्रभु जब अपनी प्रबल आकर्षण शक्ति के द्वारा जीवात्मा को खींचते हैं तब मनुष्य, विश्व प्रेम के, मानव प्रेम के, विश्व करुणा के भावों में डूब-डूब जाता है और उसका हृदय विश्व के हर प्राणी के साथ प्रेम की अटूट अनुभूति करता

है और विश्व प्रेम की थाती लेकर वह प्राणी मात्र की सेवा में प्राण-पण से जुट जाता है।

विश्वात्मा के प्रति जीवात्मा का यह समर्पण प्यार की अन्तिम मंजिल हैं। जिसने विश्व के जीवों के प्रति संवेदना अनुभव नहीं की, जिसे प्राणी-जगत के प्रति करुणा की अनुभूति नहीं हुई। विश्व मानव के प्रति जिसके हृदय की भावनायें नहीं उमड़ी, जीवों की सेवा में जिसे आनन्द नहीं आया, समझ लीजिये वह धर्म की आत्मा को नहीं समझ सका और व्यर्थ के अनुष्ठानों में अपनी शक्ति को अपव्यय करता रहा। जीवों के प्रति करुणा और सेवा भाव, दिव्य प्रेम है, परात्पर तक पहुँचने के दिव्य सोपान हैं।

प्रेम के विभिन्न रूप जो पारस्परिक सम्बन्धों में प्रकट होते हैं, मैंने आपके सामने रक्खे। प्रेम कहीं वीरोचित क्षमा के रूप में, कभी बहिरात्माओं के प्रति अहिंसा के रूप में, कभी सद्भाव के रूप में, कहीं मैत्री के रूप में, कहीं दूसरों को प्रसन्न करने की कला (मुदिता) के रूप में प्रकट होता है।

यह आप अच्छी तरह समझ लीजिये, संसार में स्त्री-पुरुषों के बीच, जीव-जीव के बीच जो भी सम्बन्ध है सब ईश्वर-अनुमोदित हैं। न तो ये सम्बन्ध वर्जनीय है न त्याज्य। परम पुरुष, परम-आत्मा, स्वयं चिदंशों के रूप में प्रकट होकर इन प्रेम सम्बन्धों का रसास्वादन कर रहा है। कहीं दूल्हा बनकर, दुल्हिन के साथ रास कर रहा है कहीं माँ बनकर बच्चे के कपोल चूम रहा है। कहीं दोस्त बनकर दोस्त के लिये जान छिड़क रहा है। याद रखिये यदि आप किसी भी एक व्यक्ति को अपने प्रेम से वंचित करते हैं तो आप स्वयं परात्पर को अपनी प्यार आराधना न देकर अपनी हरकतों से नाराज करते हैं।

परात्पर की इच्छा, डिवाइन विल यही है कि आप अपने जीवन में प्यार का ही प्रसार करें, विस्तार करें। आप जितने अधिक बहिरात्माओं को प्यार करेंगे उतना ही अधिक आप विश्वात्मा के प्रिय बनेंगे।

जब प्रेम रस के सागर, प्यार और आनन्द के अनन्त महार्णव, सनातन अव्यक्त आपके ऊपर प्रसन्न होंगे और आकर्षण करेंगे, आपकी अन्तरात्मा उनकी कृपा के झूले पर झूलती हुई ऊपर उठती चली जायेगी, ऊपर ऊपर और अनन्त ऊपर और आपकी बिन्दु चेतना प्यार के उस महार्णव में चित्सागर में लय होकर स्वयं ही प्यार का महा सागर बन जायेगी और तब आपकी प्यार और आनंद

की प्यास सदा सदा के लिये तृप्त हो जायेगी । ईश्वरीय कृपा की इस अनुभूति को ही रस समाधि कहा गया है।

प्रेम–धारायें

परात्पर प्रभु (transcendental lord of spirit) को अपनी सृष्टि से असीम प्यार है। उनकी सृष्टि का हर अंश, उनका छोटे से छोटा चिदंश उनका सम्पूर्ण प्यार प्राप्त करता है। उनकी सृष्टि का कोई भी अणु-परमाणु उपेक्षणीय नहीं है। हर अंश पर उनका सम्पूर्ण प्यार बरस रहा है । आप भी परात्पर प्रभु की सृष्टि के एक अंश है, चिदंश। (Spark of spirit) सृष्टि कर्ता के सम्पूर्ण प्यार को आप भी प्राप्त कर रहे हैं। यह प्यार, ग्रेस ईश्वरीय करुणा के रूप में आप प्राप्त कर रहे हैं। प्यार के तेजो-मय रंगों को उनकी सृष्टि के ऊपर बिखेरिये । प्रेम के इस आदान प्रदान से यह सृष्टि आपके लिये दिव्य हो उठेगी । प्रेम के मन मोहक रंगों से चमक उठेगी। परमेश्वर का प्रेम जीव को मिले और जीव का प्रेम सृष्टि की अन्य इकाइयों को जिनके रूप में स्वयं परात्पर प्रतिष्ठित है मिले तब यह वृत्त पूरा होता है। यही मेरा प्रेम–योग है। परात्पर से प्रेम की धारायें चलीं, जीव की तरफ, जीव से चलीं अन्य बहिरात्माओं की ओर, विश्व-आत्मा की ओर, विश्वात्मा से फिर परात्पर और परात्पर से फिर जीव की ओर—

परात्पर

इस प्रकार प्रेम की ये अक्षय धारायें, कृपा के रूप में जीव का निरन्तर अभिषेक करती रहती हैं । जीव से विश्वात्मा की ओर उनका प्रवाह हमेशा कल्याणकारी होता है। प्यार किसी भी बहिरात्मा को किया जाय, उसे ग्रहण अविनाशी परम-आत्मा ही करता है। परात्पर की प्रसन्नता को प्राप्त करने का यही तरीका है।

वैराग्य

वैराग्य जीवन की आधार भूमि नहीं बन सकता। वैराग्य ज्ञान की भी पृष्ठ-भूमि नहीं बन सकता। चेतना का बहुमुखी प्रसार प्यार का रूप ले लेता है। हम जिस संसार में जिस परिवेश में परात्पर प्रभु द्वारा खड़े किये गये हैं, वह परिवेश हमारा प्यार माँगता है। सृष्टिकर्ता चाहता है आप उसकी सृष्टि का अर्चन प्यार से करें। बहिरात्मायें आपका प्यार माँगती है, वैराग्य नहीं। यदि

वैराग्य ही हमारे जन्म का लक्ष्य होता तो हमें जन्म दिया ही क्यों जाता ? श्रीमान् जी आपका जन्म ही प्यार की परिस्थितियों में हुआ है। आपकी माता ने आपके पिता से प्यार किया था न ? तो आप ही को क्या अधिकार है कि आप सृष्टि को, बहिरात्माओं को अपने प्यार की इस विभूति से वंचित करें। आपके न चाहने पर भी आत्म व्यवस्था के अटल नियमों से आपकी आत्मा अन्य बहिरात्माओं से एकात्मता का अनुभव करेगी और आप प्यार किये बिना न रह सकेंगे। विश्व देवता भी आपके प्यार का अर्चन चाहते हैं। आपका प्यार-प्राणी जगत के जीवों के प्रति करुणा, मैत्री, प्रसन्न करने की कला के रूप में विकसित होगा और विश्वात्मा के प्रति प्राणी-मात्र के प्रति सेवा भाव के माध्यम से ग्रहण किया जायेगा।

एक शब्द में सन्यास के साधकों को चेतावनी के रूप में कह रहा हूं। कर्म-सन्यास कोई ऐसी चीज नहीं जिससे कि मैं खुश होऊँ। सन्यास एक मन की स्थिति होती है—mental attitude जिसमें हर कर्म मनुष्य पूरी लगन, सम्पूर्ण चेतना (total consciousness) के साथ करता है लेकिन कर्मफल पर तत्पर शक्ति के हाथ में छोड़कर स्वयं. भगवान् के सृष्टि-महोत्सव में (grand design) भाग लेता है। और याद रखिये सृष्टि-महोत्सव प्यार से चल रहा है। इसमें अनुराग के राग गाये जा रहे हैं—वैराग्य के कर्कश स्वर इस महोत्सव में, रंग में भंग पैदा करते हैं। सृष्टि-कर्त्ता ने इतनी योजनाओं के बाद यह सृष्टि इसलिये नहीं बनाई है कि आप नाक, भौं सिकोड़ कर, क्रुद्ध कर एक ओर बैठ जाय। धारा में बह कर तो आप देखिये-कितने वरदानों की वर्षा आपके ऊपर होगी। यदि आप सचमुच ही सन्यासी अथवा योगी का जीवन बिताना चाहते हैं तो श्रीमान् आप अपने में विश्व प्रेम के पुष्प खिलाइये। बहिरात्माओं की सेवा में मन लगाइये। संसार की मुख्य धारा से कटकर, अलग थलग आश्रमों में बैठकर सुबह शाम कीर्तनों से अपने मन को हिप्नोटाइज् कर आप मुझ कृष्ण की आत्मा का तर्पण कर रहे हैं ? जो अपने जीवन निर्वाह के लिये भी दूसरों के दान और चन्दे पर आश्रित हो रहे हैं। क्या वे मेरी निगाहों में कर्मयोगी हैं। क्राइस्ट के अनुयायियों को देखिये। किस निष्ठा से किस भावना से वे ज्ञानोत्तर कर्म करते हैं। मानव जाति की सेवा करने के लिये देश देशान्तर घूमते हैं। रोगियों की निःशुल्क सेवा करते हैं। यह है असली सन्यास। प्राणी मात्र की सेवा में ही मुझे विश्वात्मा का वंदन है। यह न कर जो सन्यासी जगत् की कर्मधारा से कटकर अलग तट पर बैठे तमाशा देखते हैं और बहिरात्माओं के शरीर में स्थित मुझ अविनाशी अव्यक्त सनातन कृष्ण का अर्चन सेवा भाव के द्वारा नहीं करते हैं बल्कि वाग्-जाल फैलाकर बहिरात्माओं के द्वारा अपने सुख भोग की व्यवस्था कराते हैं ऐसे नकली सन्यासियों को मैं ज्ञान के प्रकाश से वंचित कर

देता हूं। बहुमूल्य मानव-जीवन को भ्रान्त धाराओं में नष्ट कर अन्त में वे उन्हीं चीजों की लालसा लेकर मरते हैं जिन चीजों के वैराग्य का ढोंग वे आजन्म दिखाते रहे।

वैराग्य चेतना के संकुचन का नाम है। कहीं-कहीं वैराग्य का भी महत्व है। जब संसार में प्यार के रूप मे फैलती हुई हमारी चेतना के प्रसार को अकारण ठेस लग रही है तब उन क्षणों में अच्छा यही रहेगा कि हम अपनी चेतना के बहिर्मुखी प्रसार को समेटकर केन्द्रीभून कर लें और चेतना के उस अक्षय श्रोत का ध्यान करने लगें जिससे कि हमारी अपनी चेतना निकल रही है।

वैराग्य और राग को यो समझिये जब आप कहीं की यात्रा करते हैं पहले आप साट पर कब्जा करते हैं, बिस्तर खोले जाते हैं, लेटने-वैठने का इन्तजाम किया जाता है, टिफिन कैरियर सुराही कायदे से रखे जाते हैं, आप आराम से सो जाते हैं फिर जब आपका गन्तव्य स्टेशन पास आता जाता है त्यों-त्यों सामान की समेटा-समेटी शुरू हो जाती है, बिस्तर बाँध लिया जाता है, होल्डाल लपेट दिया जाता है। सुराही टिफिन आदि डलिया में रख लिये जाते हैं। चारों ओर से सब सामान समेट लिया जाता है।

यहाँ तक कि आपका स्टेशन आने तक आप सब सामान-वामान बाँधकर तैयार होकर दरवाजे पर खड़े हो जाते हैं ताकि गाड़ी रुकते ही आप कुली से सामान लदवाकर तुरन्त गाड़ी छोड़ सकें।

तो फिर इस यात्रा में पहले हुआ आपका प्रसार, विस्तार और फिर हुआ withdrawal यानी समेटा-समेटी।

इसी प्रकार जब हम संसार में प्रवेश करते हैं—हमारी चेतना का विश्व में चारों कोणों से प्रसार होता है। हर चीज हमें नई और अच्छी लगती है, मन हर चीज के लिये ललकता है, चेतना दौड़-दौड़ कर हर चीज़ को गले लगाती है।

जैसे-जैसे जीव का संसार से विदा लेने का बक्त आता जाता है, चेतना हर स्तर से सिमटने लगती है। संसार उतना अच्छा नहीं लगता। चीजें बोर करने लगती हैं। इन्द्रियाँ भी उतनी ललक के साथ बहिर्जगत् का आलिगन नहीं करना चाहतीं चेतना सिमट कर अपने केन्द्र में लौट जाना चाहती है। अपने शाश्वत-परम धाम की ओर अपने मूल स्रोत (Source) की ओर। चेतना का यह संकोच है वैराग्य। जब मन की यह स्थिति आ जाय तो समझिये कि

संसार से बिस्तर लपेटने का समय आ गया है और उस समय आती है वैराग्य की उपादेयता। मनुष्य ज्ञान का आश्रय लेकर परात्पर तत्व, चेतना के उस महार्णव में प्रवेश करने के लिये उद्यत हो जाता है जिससे एक किरण के रूप में वह निकला था। सूर्य अपनी किरण को समेट लेता है बूंद समुद्र में लय हो जाती है, लहर सागर में विलीन हो जाती है और स्वयं महासागर बन जाती है। आत्मा शान्ति और आनन्द के अथाह महासागर में अपनी बूंद सरीखी सीमाओं को खोकर व्यापक बन जाती है। जीवात्मा कृत-कृत्य हो उठती है।

वैराग्य के बारे में एक शब्द और। प्यार या राग चेतना का विश्व में प्रसार है। लेकिन अगर चेतना के इस प्रसार में चेतना के ऊपर आघात होने लगे तो चेतना उस प्रसार से सिमट कर अपने केन्द्र की ओर लौट जायेगी। इस प्रकार चेतना आत्म रक्षा करेगी।

आप किसी के सामने थाली परस कर रखें और वह उस थाली में लात मारे तो क्या आप थाली उसके सामने से हटा नहीं लेंगे। यह वैराग्य है। अगर आप किसी के सामने प्यार का समर्पण करते हैं और वह उस प्यार की कीमत न पहचान कर तिरस्कार करता है, ठुकराता है तो बेहतर यही होगा कि आप अपने प्यार की थाली उसके सामने से उठा लें। यह वैराग्य है चेतना का संकोच जब परिस्थिति अनुकूल होगी और परात्पर शक्ति प्रेरित कोई प्रेम-पात्र आपकी चेतना के उस उपहार को ग्रहण करने आयेगा तो उसी वैराग्य में से चेतना राग के फूल महकायेगी और उस क्षण के इन्तजार में चेतना वैराग्य की स्थिति में सिमट कर (withdraw) शान्ति प्राप्त करेगी।

वैराग्य का कल्याण-कारी रूप

वैराग्य का कल्याणकारी रूप वह है जिसे बुद्ध ने "उपेक्षा" कहकर प्रस्तुत किया है। मनुष्य अपने स्वार्थों की उपेक्षा करे यही वैराग्य है तुम जो कुछ सत्कर्म सृष्टि के कल्याण के लिये कर रहे हो, उसमें तुम अपने स्वार्थ को भुला दो, अपने निजी स्वार्थों के प्रति निरपेक्ष हो जाओ, यही स्वार्थ-निरपेक्षता वैराग्य का निर्मलतम रूप है वैराग्य अपने स्वार्थों के प्रति होना चाहिये न कि दूसरों के प्रति।

प्रेम धारा का ऐतिहासिक रूप

हर अवतार में प्यार को शाश्वत-धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करता हूं। हालांकि परिस्थितिवश प्यार से भिन्न-भिन्न नामों का प्रयोग हुआ है। सृष्टि-कर्ता

का (grand design) सृष्टिचक्र प्यार-परक है और Moral order, धर्म-विधान प्रेम के ही अटल नियमों पर आधारित है। इस विशाल सृष्टि में प्यार व्यवस्थापक का कार्य करता है। सृष्टि में जब-जब जैसी आवश्यकता थी वैसे-वैसे ही प्रेम का विस्तार किया गया था। प्रेम ही मेरी सृष्टि का संविधान व धर्म का आधार है।

जब मैं द्वापर में श्रीकृष्ण के शरीर में स्थित था–उस समय मेरा स्वभाव था—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" जो मुझे जिस भाव से प्यार करता है उसके प्यार का प्रत्युत्तर मैं उसी प्रकार देता हूं। मुस्कान के बदले मुस्कान, प्यार के बदले प्यार। वह जमाना दुश्मनियों, बदलों, और हर तरह की हिंसा का था। लोग एक घटना को सांप की तरह पालते थे और बदला लेने को जीवन का लक्ष्य समझ बैठे थे। उस समय मैंने सम कालीन साथियों को निर्वैर और करुण होने का उपदेश दिया था। निर्वैर होना भी प्यार का एक रूप है। 'अद्वेष्टा सर्व-सर्व भूतानां मैत्र करुण एव च"। शत्रुता पालने वालों के प्रति भी क्षमा का भाव प्यार से ही प्रेरित होता है। मित्रता और करुणा प्यार का ही विस्तार है। जब मैं राम के शरीर में आया था तब मेरा प्रण था "सन्मुख होहि जीव मोहि जब ही, जन्म कोटि अघनासहु तब हीं।" तुलसी दास ने मेरे बारे में ठीक ही कहा है– "रामहि केवल प्रेम पियारा-जान लेहु जो जानन हारा।" इस मानव जीवन में विभीषण से लेकर अस्पृश्या शबरी तक मेरे प्यार की किरणें प्रसारित होती हैं। तुलसी ने यह भी ठीक ही कहा है—"चौदह भुवन एक पति होई भूत द्रोह तिष्ठइ नहि कोई।"

जब मैं महा मानव शिव के रूप में–संसार में आया था, देवाधिदेव महादेव के रूप में जिन्हें आप स्मरण करते है, तो गम्भीर प्रेम की जो धारा मैंने अपने जीवन में बहाई वही लोक पावनी गंगा थी। मानव प्रेम से प्रेरित होकर ही मैंने स्वय कालकूट पान किया था और साथियों को जीवन का अमृत प्रदान किया था। पार्वती के प्रेम का समादर करते हुए मैंने बहुत दिनों का वैराग्य और समाधि त्याग कर प्रेम की गंगा में गोता लगाया था। वह गगा जिसे मैंने शीश पर धारण कर विश्व के कल्याण के लिये उतारी थी वह जलमय गंगा नहीं थी। वह प्रेम मय गंगा थी और विश्व मानव के कल्याण के लिये मैंने प्रवाहित की थी। शिव के शरीर में स्थित होकर मैंने परात्पर अनुभूति और विश्व मानव के प्रति प्रेमानुभूति का ही विस्तार किया था। जब मै बुद्ध के शरीर में उतरा तो जन समुदाय का सब ओर से ध्यान हटाकर आचरण-पक्ष पर केन्द्रित किया, इसे मैंने शील का नाम दिया।

जीवों के प्रति प्रेम भाव, मित्र भाव रखना, दूसरों को प्रसन्न करना, जीवों के ऊपर करुणा करना। जीवन के हर पहलू में प्रेम, मैत्री, मुदिता (प्रसन्न करना(करुणा का प्रसार होना चाहिये। यह है बुद्ध अवतार का प्रेम दर्शन।

मेरे महान अवतार क्राइस्ट ने ससार को यह बताया कि किस प्रकार परम-पुरुष अपने जीव पुत्रों को प्यार करते हैं। उनका प्यार, कृपा की धारा बनकर जीव पर शत सहस्त्र धाराओं में गिरता रहता है। जीव को चाहिये कि प्रभु के इस कृपा प्रसाद को ग्रहण कर ईश्वर के दूसरे पुत्रों तक प्रेम की उस धारा को पहुँचाये। इस अवतार में मैंने स्पष्ट घोषणा की थी कि प्यार ही परमेश्वर है। प्यार से भिन्न भगवान नहीं है।

आधुनिक युग में गाँधी के प्रतिपाद्य सत्य और अहिंसा और कुछ नहीं, आन्तरिक निष्ठा (Sincerity) और दूसरों को चोट न पहुँचाना (hurt) प्यार के ही पर्यायवाची शब्द हैं।

प्रेम और शालीनता प्रोटोकाल

प्रेम के बारे में इतना कुछ बता देने के बाद भी बहुत कुछ शेष रहा जाता है। प्रेम जीवन की महान् विद्युत् है। जिस तरह विद्युत् में अनन्त असीम क्षमतायें हैं उसी प्रकार प्रेम मे भी अनन्त सामर्थ्य छिपी है। विद्युत से आप प्रकाश पाते हैं (बल्ब), हवा पाते हैं (पंखा), गर्मी पाते हैं (हीटर), ठण्डा करते हैं (फ्रिज) कूलर हैं, मशीनें चलाते हैं, फैक्टरियाँ रन करते है। लेकिन इतनी उदार सामर्थ्य और कल्याणकारी क्षमताओं से युक्त होने पर भी विद्युत के साथ किसी भी किस्म की छेड़खानी नहीं कर सकते। नगी बिजली छुई नहीं जा सकती। वह तुरन्त आपको मार देगी। विद्युत के फायदे उठाने के लिये हमे वह तारों के ऊपर दोड़ानी होती है और वे तार भी नगे नहीं रखे जाते। रबन्दशीथ में लपेटे जाते हैं ताकि तारों के ऊपर दौड़ती हुई बिजली किसी को छूने पर झटके न दे, प्राणघातक न बन जाय। वह लाख कल्याणकारी हो इन्तजामों के साथ ही हम उसका फायदा उठा सकते हैं।

प्रेम की विद्युत भी अनावृत रूप में मानव हृदय के द्वारा ग्रहण नहीं की जाती है। प्रेम की विद्युत मानवीय सम्बन्धों के तारों पर बहती हुई—एक हृदय से दूसरे हृदय तक पहुँचती है लेकिन इन तारों के ऊपर देश-कालापेक्षी मर्यादाओं की

रबर-शीथ पड़ी रहनी चाहिये नहीं तो विद्युत की तरह ही प्रेम भी विनाश करने की शक्ति रखता है। प्रेम, मानवीय रिश्तों में, मानव मानव हृदयों में बहेगा लेकिन सम्बन्धों के ऊपर शोल की मर्यादा का कवच अवश्य पड़ा रहना चाहिये तभी प्रेम की विद्युत मनुष्य के लिए कल्याणकारी रहेगी। जहाँ शील और मर्यादा का शीथ ढक्कन हटा वहीं प्रेम की विद्युत विनाशकारी हो उठेगी। इसका अर्थ यही है कि प्रेम शालीन सम्बन्धों में ही बह कर, मधुर और मनोरम, हृदयग्राही रूप प्राप्त करेगा। शील से गिरे हुए सम्बन्धों में जब प्रेम बहेगा तब उसका वही हाल होगा जो एक गंदी नाली में बहते हुए गंगाजल का। कौन उसे पियेगा ? उस समय ? गंगाजल भी पीने योग्य तभी होता है जब साफ सुथरे बर्तन में लाया गया हो—साफ पवित्र नहर में आये हुए गंगाजल को आप पी भी सकते हैं, नहा धो भी सकते हैं लेकिन शहर के गटर में (गन्दे नाले) में गंगाजल का प्रवाह आने भी लगे तो उसे कौन पियेगा कौन नहायेगा, धोयेगा उसमें।

प्रेम सम्बन्धों की शालीनता हर देश, हर परिवेश, हर काल की अलग अलग होती है और तत्कालीन सोसाइटी के द्वारा नियत की जाती है। इसमें केवल सकत कर सकता हूँ। श्वसुर बहू को पुत्री की तरह तो प्यार कर सकता है लेकिन अगर बहू को प्रेयसी का रूप देने की कोशिश करेगा तो सामाजिक शक्तियाँ कुपित होंगी।

किस सम्बन्ध में कैसा प्रेम होना चाहिये। यह तत्कालीन सामाजिक परिपेक्ष्य में तय होगा। बहु विवाह द्वापर में अशालीन नहीं माना जाता था लेकिन आज के परिवेश में माना जायेगा। सभी जानते हैं बेटी के प्रति जो प्रम है—वह दूसरा रूप धारण करता है—माँ के प्रति जो प्यार होता है वह दूसरा रूप धारण करता है और पत्नी के साथ जैसा कुछ प्यार किया जाता है वह अगर बेटी या मा के प्रति उसी रूप में किया जाय तो शैतानियत होगी प्यार नहीं। अतः प्रेम सम्बन्धों के ऊपर मर्यादा और शीलयुक्त आचरण का रबर शीट होना चाहिए। अन्यथा प्रेम भी नंगे तार की तरह विनाशकारी बनते में देर नहीं करेगा।

जैसे श्वेत किरण स्पक्ट्रम से बिखर कर सात रंगों में बिखर जाती है वैसे ही प्यार की भागवती धारा सृष्टि क्रम में विविध सम्बन्धों में बिखर जाती है और सम्बन्धों के ऊपर शील और मर्यादा का ढक्कना पड़ा रहेगा तभी प्रेम विद्युत निर्माण कारी क्षमतायें दिखायेगी मर्यादाओं का कवच हटने पर प्रेम के नंगे तार की तरह भयानक और विनाशकारी हो जायेगा। इसलिये प्रेम के सम्बन्ध में एक सुन्दर नियम है—आपके प्यार से जहाँ तक हो सके किसी बहिरात्मा को चोट न पहुँचे किसी के

दिल को ठेस न लगे। फिर भी यह नियम भी अन्तिम नहीं है—बाजवक्त प्रेम के विशुद्ध प्रकटीकरण पर बहुत सी बहिरात्मायें व्यर्थ का वितंडा खड़ी करने लगती है—उस समय मनुष्य को सच्चे दिल से अन्तर में स्थित परमेश्वर की शरण में जाना चाहिये वही आपका मार्ग प्रदर्शन करेंगे और बतायेंगे कि आप जिस मार्ग पर जा रहे हैं वही सही है या नहीं। मनुष्य को उपदेश देने वाला, अनुमति देने वाला अन्तः प्रेरक मनुष्य के अन्तस् में ही बैठा है।

(२) प्रेम के सम्बन्ध में एक दूसरा दिव्य नियम है कि प्रेम समर्पण है—प्रेम, पात्र पर अधिकार जमाने की इच्छा नहीं है। सच्चा प्रेमी अपने प्रेम पात्र पर अपना हृदय समर्पित कर देता है—वह धक्का मुक्का मार कर प्रेम पात्र पर धौंस जमाने का प्रयास नहीं करता है। सिनेमा के नायक और विलेन में यही अन्तर है। नायक अपनी प्रेयसी के प्रति अपने प्यार को मन ही मन समर्पित कर उस वक्त का इन्तजार करता है)जबकि प्रेयसी स्वयं अपनी तरफ से अपना हृदय उसे समर्पित करने को उत्सुक होगी और विलेन बिना नायिका के मनोभावों का ख्याल किये जबरदस्ती उस पर अपनी इच्छा कामना लादना चाहता है—बिना प्रेम पात्र की मर्जी के उस पर अधिकार जमाना चाहता है। इसी को बलात्कार कहते हैं।

जब दोनों तरफ से हृदय का समर्पण होने लगता है—तभी प्रेम की दिव्य अनुभूति होती है।

एक फूल है -बड़ा सुन्दर है बड़ा अच्छा है आपको अधिकार है आप उसे प्यार करें उसकी प्रशंसा करें उसकी मूर्ति अपने हृदय में स्थापित करें उसके ऊपर कविता रचें उसका चित्र बनायें—

लेकिन आप प्यार के नाम पर उस फूल को तोड़कर अपनी पाकेट में नही रख सकते। फूल को तोड़कर अपने अधिकार में रखने की चेष्टा प्यार की नहीं बल्कि शैतानियत की द्योतक होगी और तुरन्त विश्वात्मा की तरफ से क्रुद्ध प्रतिक्रियाओं का निमंत्रण देगी। उस बगीचे का मालिक आप की पिटाई करेगा और आप फूल के प्रति अशिष्टता के अपराधी माने जायेंगे।

बलात् किसी के ऊपर अधिकार जमाना प्यार की भावना के विरुद्ध कार्य है। वह धर्म विधान का उल्लंघन है।

———

कर्म तथा सन्यास

मैं सन्यास के विरुद्ध हूं।

मुझे आश्चर्य है कि गीता की पोथी हाथ में लेकर लोग सन्यास ग्रहण कर लेते हैं। गीता के द्वारा सन्यासी, सन्यास-आश्रम के औचित्य को सिद्ध करने में लगे हुए हैं जबकि असलियत यह है कि मैं हमेशा सन्यास के खिलाफ रहा, अपने तत्कालीन जीवन में नैष्कर्म्य के मूर्खतापूर्ण सिद्धान्तों और सन्यास के जहालत भरे जीवन के विरुद्ध संघर्ष करता रहा था। सन्यास को एक आश्रम मानने से मैंने हमेशा इन्कार किया था। न मैंने कभी स्वयं सन्यास लिया था न ही अर्जुन को सन्यास लेने की सलाह दी थी, बल्कि युद्ध के आरम्भ में अर्जुन को जो विषाद हुआ था और वह अपने नियत कर्म को न करके सन्यास की ओर भागना चाहता था उस चीज़ को मेंने हर सम्मत उपाय द्वारा रोकने की कोशिश की थी—उसे सन्यास की ओर जाने से रोकने और अपने नियत कर्म को सावधानी के साथ करने की प्रेरणा में ही तो भगवद् गीता के संदेश की उत्पत्ति हुई थी।

अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य:

स सन्यासी स योगी च न निरग्नि: न चाक्रिय:

और भी मजेदार बात, जहां तक मेरी स्मृति जाती है मैंने कभी अपने जीवनकाल में निष्काम कर्मयोग शब्द का प्रयोग नहीं किया था न ही मेरी तरफ से व्यास ने इस शब्द को गीता में प्रयुक्त किया था, न ही किसी अन्य टीकाकार ने ने उसमें निष्काम कर्मयोग शब्द का प्रयोग देखा है लेकिन फिर भी सैकड़ों हजारों सालों से सुनाई यही पड़ रहा है कि गीता में निष्काम कर्मयोग का सिद्धान्त प्रतिपादित है। मनुष्य को निष्काम होकर कर्म करना चाहिये। सकाम आदमी निम्न कोटि का है, निष्काम कर्म करने वाला व्यक्ति उच्च कोटि का। जो कुछ मैंने कहा उसके एकदम विपरीत।

निष्काम कर्मयोग

सोचने की बात है, मनुष्य कर्म शुरू करते समय निष्काम कैसे हो सकता है ? हर काम किसी न किसी उद्देश्य को लेकर आरम्भ किया जाता है। वह उद्देश्य ही उसका लक्ष्य होता है। विद्यार्थी जब पढ़ने का काम आरम्भ करता है तो उसके सामने एक लक्ष्य होता है, उस लक्ष्य को प्राप्त करने की कामना होती है। वह विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, वह इम्तहान पास करना चाहता है। उसकी पढ़ाई की मेहनत पूरी तरह से लक्ष्ययुक्त है—यह लक्ष्य ही उसकी कामना है। बिना कामना या उद्देश्य के कर्म करने पर तो जीवन बेमजा हो जावेगा और लक्ष्य न रहने पर काम की सफलता भी संदिग्ध हो जायेगी। इसलिये यह बात बिल्कुल गलत है कि कृष्ण ने निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया था। यह गलत बयान है। काम आरम्भ करते समय काम का लक्ष्य अवश्य ही स्थिर किया जायेगा। उद्देश्य स्थिर होने पर ही उद्देश्य की पूर्ति के लिये कर्म किया जायेगा।

कायदे से किये गये सकाम कर्म में कोई दोष नहीं होता है और याद रखिये हर काम किसी न किसी कामना की पूर्ति के लिये किया जाता है। बिना कामना पूर्ति का लक्ष्य लिये जो काम किये जायेंगे वे इधर-उधर बहक कर नष्ट हो जायेंगे—कामनायें बुरी चीज़ नहीं हैं, कामना है तभी जीवन है—बिना कामना का जीवन निरानन्द व्यर्थ और ऊट-पटांग हो जायेगा।

हर काम की मनुष्य योजना बनाता है, मन में, चाहे कागज पर। उस योजना में ही यह निहित है कि मनुष्य एक विशेष लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये कर्म में प्रेरित हो रहा है और लक्ष्य प्राप्त करने के लिये ही उसकी सारी चेष्टायें होती हैं।

इंजीनियर है वह नगर निर्माण का लक्ष्य सामने रखता है। नगर निर्माण की कामना करता है। फिर वह प्लानिंग करता है। कालोनी की रूप-रेखा तैयार करता है, फिर पूरी लगन के साथ उस रूप रेखा को ईंट और पत्थर, चूने गारे का रूप देने में लग जाता है और क्रमशः नगर निर्माण का लक्ष्य पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

डाक्टर है, वह मरीज को स्वस्थ करने का लक्ष्य सामने रखकर इलाज आरम्भ करता है, वह मरीज के स्वस्थ होने की कामना करता है अगर वह ऐसा न सोचे तो मरीज़ को स्वस्थ करने की दिशा में कोई काम न हो सकेगा।

किसान है, वह खेत में कड़ी मेहनत करता है—हल चलाता है, जमीन जोतता है, पानी का इन्तजाम, बीजों का जुटाना-निराई, गुड़ाई करना है इस सब मेहनत करते समय उसके सामने एक लक्ष्य पूर्ण रूप से जाज्वल्यमान रहता है कि उसे उत्तम फसल प्राप्त करनी है। यदि यह कामना वह अपने सामने न रखे तो कभी भी कृषि-कर्म करने में प्रवृत्त नहीं होगा। माली अगर सुस्वाद और सुन्दर फलों की प्राप्ति का उद्देश्य अपने सामने नहीं रखेगा तो वृक्षों को रोपने, पानी देने, खाद देने आदि कामों में कभी उसकी तबियत लगेगी ही नहीं इसलिये यह कहना बिल्कुल गलत, मेरी विचारधावा के एकदम विपरीत है कि कृष्ण ने निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया था। हर कर्म किसी न किसी कामना अथवा उद्देश्य के साथ किया जाता है और उसमें कोई बुराई नहीं है। कामना पूर्ति के लक्ष्य के बिना जीवन बेमज़ा और कर्म उद्देश्यहीन तथा निरर्थक हो जायेगा। मैं जीवन में ऐसी परिस्थिति को उत्पन्न करना कभी श्लाघ्य नहीं समझता।

नैष्कर्म्य

अयुक्त: प्राकृत: स्तब्ध: शठोनैष्कृतिकोअलस:

विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।

गीता में मेरे मित्र व्यास ने कहीं-कहीं नैष्कर्म्य के घातक सिद्धान्त का जिक्र किया है। वही शब्द भारतीय दार्शनिकों ने निष्काम कर्मयोग के साथ गड़बड़ा (confuse) कर भारतीय जन-जीवन में उतारने की कोशिश की जिसका परिणाम भारतीय जन-जीवन को विश्रृंखलित करने में हुआ। नैष्कर्म्य के सिद्धान्त द्वापर युग में भी मानव-जीवन के लिये अकल्याणकारी थे और आज भी वे व्यक्ति और समाज की क्षमता नष्ट करने वाले और अकल्याणकारी हैं। पहले मैं इस विनाशकारी सिद्धान्त से ही निपट लेना चाहता हूं जिसने लाखों लोगों के जीवन में विष घोल दिया उन्हें अक्रियता और निकम्मेपन का रास्ता दिखाकर बरबाद किया — वे न जीवन में कल्याण प्राप्त कर सके न मृत्यु के पश्चात उनका मार्ग प्रशस्त हुआ और तारीफ यह है कि यह नैष्कर्म्य का सिद्धान्त मेरे नाम पर प्रचारित किया गया— मैं, जिसे दाढ़ी बढ़ाकर, कपड़े रंगकर रहने वाले और समाज के ऊपर परजीवी प्राणियों (parasities) के रूप में पलने वाले भिक्षा-जीवियों से सख्त चिढ़ थी। मुझे अपने ऊपर थोपे हुए इस गलत सिद्धान्त का प्रतिवाद करना ही पड़ेगा।

नैष्कर्म्य का अर्थ

नैष्कर्म्य का अर्थ काम न करना। नि: कर्मता अर्थात काम न करना। द्वापर काल में एक तरह की भ्रान्त विचार धारा फैली हुई थी वे लोग सोचते थे

काम न करने से (अनारम्भ) हम जीवन की जटिलताओं और विषमताओं से बचे रहेंगे। उस ज़माने में खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी—सभी चीज़ें इफरात से थीं। अत: जीवन से बचकर भागने वाले पलायनवादी साधारण जन की उदारता का फायदा उठाकर भोज्य पदार्थों की पूर्ति (suppy) में कोई कमी न पाकर आराम से निष्क्रियता का जीवन बिताने लगे। कुछ लोग अरण्यों में झोपड़ियां डालकर रहते थे और कुछ भिक्षा-जीवी बनकर एक गांव से दूसरे गांव घूमते रहते थे। कर्म से और जीवन की कर्ममयी धारा से जान बचाकर भागने वाले इन व्यक्तियों के गिरोह ने अपने को नैष्कर्म्यवादी कहना शुरू कर दिया और अपने दल को एक सुसंगठित रूप दे डाला ताकि इस मार्ग में आने वाली विपत्तियों और बाधाओं का सुसंगठित होकर सामना किया जा सके। साथ ही कर्म से पलायन करने वालों ने, उनमें से जो कुछ थोड़े से बुद्धिजीवी या विद्वान थे उन्होंने नैष्कर्म्यता को दार्शनिक जामा पहनाकर धर्म ग्रन्थों में घुसाना आरम्भ कर दिया ताकि साधारण जन, धर्म-पुस्तकों में इन सिद्धान्तों का नाम सुनकर नैष्कर्म्य वादियों पर अटल श्रद्धा रखते चलें और कर्म से बचने वाले पलायन-वादियों को विशिष्ट धार्मिक व्यक्ति समझें।

मैंने महामुनि व्यास से इस अकल्याणकारी विचार धारा के बारे में बातें की थीं और इसके अन्दर जो पूरे समाज के निष्क्रिय और निस्तेज (fireless) होने का भय छिपा था उसके बारे मे उन्हें सावधान किया था।

कर्म न करने के (नैष्कर्म्य) मूल में यह भय छिपा है कि कर्म मनुष्य को संसार में फँसाते चलते हैं, उलझनें बढ़ती चलती हैं जैसे-जैसे कर्मों का विस्तार होता है वैसे-वैसे अन्त में इन्हीं उलझनों में फंसा हुआ व्यक्ति मर जाता है। इन उलझनों से प्रक्षिप्त हुए मन में एक कामनायुक्त—कर्म, संस्कार छोड़ता है—फिर उस संस्कार से मनुष्य दूसरे काम में रत होता है—दूसरा काम फिर मेंन पर अपने प्रभाव छोड़ता है—फिर इस प्रकार कर्म और उसका मन पर संस्कार (प्रभाव) संस्कार (प्रभाव) से प्रेरित होकर फिर कर्म, इस प्रकार श्रृंखला चलती रहती है। मनुष्य की आत्मा इन संस्कारों की उलझनों में फंसी हुई फिर दूसरे जन्म की ओर दौड़ेगी उसकी आत्मा कभी अपने निर्मल रूप को पुन: प्राप्त नहीं करेगी और उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। और मोक्ष भी किससे……इसके बारे मे भी उन लोगों ने विचित्र-विचित्र धारणायें बना ली थीं। कोई कह रहा था—चींटी ले लेकर देवता तक हजारों लाखों (लख चौरासी योनियां) हैं इनमें मनुष्य अपने अच्छे बुरे कर्मों के फलस्वरूप भटकता है। सबसे भली अवस्था मोक्ष की है इसलिये बाबा न काम करो न कर्म बन्धन में फंसोगे। कर्म की जड़ ही काट दो। न रहेगा बांस न बजेगी

बाँसुरी। जब कर्म ही नहीं करेंगे तो कहां से उनके प्रभावी संस्कार बनेंगे फिर हमारे मन काहे में फसेंगे—निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्था निर्योगक्षेमवान बनकर मजे में रहेंगे। मोक्ष, संसार से-कर्मधारा से, पुनर्जन्म से, एक सर्वसम्मत लक्ष्य के रूप में पास कर दिया गया और धर्म, अर्थ, काम की तरह मोक्ष भी जीवन का एक लक्ष्य स्थापित कर दिया गया। अब सवाल उठता है यह मोक्ष किससे ?

नैष्कर्म्य-वादियों ने कहा जीवन की विविध समस्याओं से, कर्म प्रेरणाओं से मोक्ष पालो भइया, दोनों हाथों में लड्डू हैं। इस जन्म में अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ेगी और मरने के बाद मोक्ष मिल जायेगा। फिर कोई जन्म लेने की जहमत नहीं करनी पड़ेगी, लो भई मौज ही मोज है।

ऐसे नैष्कर्म्यवादी लोग अपनी पलायन परायणता के कारण स्वयं भी जीवन के आनन्दों से वंचित थे और इस चक्कर में थे कि दूसरे भीं जीवन के प्रति उतने ही ऊवे हुए हो जायें जितने कि वे थे इस प्रयास में वे काफी हद तक सफल भी हुए और नैष्कर्म्यता को सुसंगठित रूप देने के लिए उन्होंन इसे एक एाश्रम का रूप दिया। जिसे आज तक सन्यास आश्रम के नाम से जाना जाता है। सन्यास की बड़ी बड़ी व्याख्यायें करके सैकड़ों लाखों आदमी निष्क्रियता का अनस्तित्व का जीवन बिताने लगे इसे धार्मिक रूप दे दिया गया ताकि पब्लिक चूं न कर सके।

आप ही सोचिये यह कैसे हो सकता है कि मनुष्य किसी भी क्षण बिना काम किए रह जाए। अपनी शारीरिक प्रकृति से मजबूर होकर भी आदमी कुछ न कुछ करेगा ही। बिना काम किये मनुष्य रह नहीं सकता। मैं आप लोगों का ध्यान गीता के इन श्लोकों की ओर खीचता हूं जिसमें महर्षि व्यास ने मेरी कही हुई एक बात कहने की कोशिश की है—

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषत:
यस्तु कर्म-फल त्य गी सत्यागी इत्ययामिधीयते ।।
न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्
कार्य ते ह्यवंश: कर्म सर्व: प्रकृति जैः गुणैः ।।

कोई भी देहधारी इन्सान पूर्णतया काम करना नहीं छोड़ सकता। कोई व्यक्ति क्षण भर भी काम किये बिना नहीं रह सकता।

: :

प्रकृति के गुण उसे मजबूर कर देंगे कर्म करने के लिए। शरीर के नियमों के अनुसार आप को भूख लगेगी हो तो भोजन प्राप्त करने के लिये आजीविका के

कर्म से आप क्यों बचेंगे ? आपको भोजन प्राप्त कराने के लिए किसी न किसीको तो काम करना ही पड़ेगा तो दूसरे उस काम को क्या करें ? अपना भोजन प्राप्त करने के लिए आप स्वयं क्यों न अपनी आजीविका अर्जन करें। नींद आयेगी तो बिस्तर तो बिछाना ही पड़ेगा तो आप स्वयं क्यों न बिछायें। बारिश से धूप से मौसम को कठिनाइयों से बचने के लिए एक घर लेकर आप स्वयं क्यों न रहने की व्यवस्था करें और सन्यास के नाम पर घर का आराम तो आप उठायें और ज़िम्मेदारियां कोई और लोग, यह तो कोई बात न हुई।

सन्यास

एक आश्रम के रूप में, एक धर्म पद्धति के रूप में सन्यास मानव जाति के लिए बहुत बड़ी चीज नहीं है। "काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं"। काम्य कर्मों को उठा कर रख देना, त्याग देना सन्यास है।। काम्य कर्मों को न करना यदि सन्यास है तो यह नैष्कर्म्य का ही विस्तार हैं। किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही तो कर्म हो रहे हैं और इस तरह सभी कर्म काम्य हैं तो क्या हम सभी कर्मों के करने से छुट्टी पा लें—कर्म—पूर्ण जीवन से (Retire) हो जायें। अपने जीवन में नियत कर्मों के चक्र को पूरा किये बिना रिटायरमेन्ट (Retirement) भी जीव को कैसे मिल सकता है यह सोचने की बात है। जब आप अपने जीवन में नियत कर्मों को पूरी अवधि तक कर लेते हैं तभी तो आप रिटायरमेन्ट (Retirment) पाने योग्य होते हैं। पेन्शन के तभी आप हकदार होते हैं। इसी प्रकार यदि जीवन में आप अपनी नियति (Destiny) के द्वारा सामने लाये हुए कर्त्तव्यों को अच्छी तरह करके अपनी योग्यता सिद्ध कर देते हैं—नियत कर्मों का चक्र सम्पूर्ण निष्ठा के साथ पूरा कर लेते हैं तभी आप जीवन में कर्मों की जो धूम मची है, उससे रिटायर हो सकते हैं। उससे पहले सन्यास लेने का आपका कोई हक नहीं। अपने नियत कर्तव्यों से मुंह मोड़कर सन्यास के नाम पर जीवन से पलायन करने की प्रवृत्ति को मैं बुरा समझता हूं, एक भयानक रोग जिसकी समय रहते चिकित्सा आवश्यक है अन्यथा सन्यासवादी रोगी प्रवृत्तियों के कारण समाज को लकवे का वह आघात (Sturke) लगेगा कि सारा समाज एक निष्क्रिय और जीवनहीन लाश में परिणत हो जायेगा जिसमें न गति है, न स्पन्दन न जीवन के आनन्दों को प्राप्त करने की क्षमता। सन्यास का सीधा अर्थ है—जीवन से कर्मों को हटा देना, एक रिटायर्ड जीवन (Betired Life) बिताना, कुछ मत करो निष्क्रिय जीवन बिताओ। यह आदेश न मैंने कभी दिया था न इस समय ही दे सकता हूं।

याद रखिये सन्यास कर्मों से पलायन, नैष्कर्म्य का ही दूसरा नाम है। जीवन की बहती धारा से बचकर किनारे पर खड़े रहने का नाम है-आप स्वयं विचार कर देखिये -अगर सन्यास के नाम पर हर व्यक्ति जीवन की धारा से अलग कट कर हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाए तो इसका क्या नतीजा होगा। सारा समाज आलसी, लुंज-पुंज, ऊबे हुए (Bored) निकम्मे व्यक्तियों से भर जायेगा और कुछ दिनों में विनाश की गोद में समा जायेगा।

अगर सन्यास का अर्थ—काम्य कर्मों का त्याग ही है तो ऐसे सन्यासी समाज के ऊपर जोंक की तरह चिपटे हुए हैं, जो समाज का खून तो चूस रहे हैं किन्तु अपनी तरफ से समाज को कुछ दे नहीं रहे। सो जोंकों से बहुत शीघ्र ही समाज को पिंड छुड़ा लेना चाहिये।

सन्यास

अगर सन्यास का अर्थ निष्क्रिय जीवन है तो मैं इसके विरुद्ध हूं, अगर सन्यास का अर्थ एक ऐसा आश्रम है जिसमें कि चन्द पलायनवादी इसलिये शरण लेते हैं कि उन्हें जीवन के जरूरी कर्तव्यों के करने से छुट्टी मिल जाती है। साधारण व्यक्ति को अपनी आजीविका के लिए जो प्रयत्न करने पड़ते हैं उनसे भी छुट्टी मिल जाती है तो मैं ऐसे सन्यास के सख्त विरुद्ध हूं और ऐसे सन्यासियों को खून चूसने वाली जोंके समझता हूं जो स्वयं कुछ प्रयास न कर दूसरे के प्रयासों से प्राप्त हुए भोगों को बिना कुछ किए प्राप्त करना चाहते हैं -अगर नियति के द्वारा अपने सामने लाये हुये विविध कर्तव्यों की अवहेलना करके मनुष्य जान बचाकर भागता है और एक प्रकार की आराम-तलबी के जीवन की तलाश में भटकता है तो ऐसे सन्यास को मैं निश्चित रूप से मानव-समाज के लिये अकल्याणकारी समझता हूं।

नियत कर्म

आप पूछेंगे यह नियत कर्म क्या हैं जिसके बारे में मैंने गीता में कहा है- "नियत कर्मों का त्याग कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। विवेकशील पुरुष कभी नियत कर्मों का त्याग नहीं करेगा। जो नियत कर्मों का त्याग करते हैं वह मोहवश ही ऐसा करते हैं और यह बहुत ही तमोगुणी बात है।" कर्म करने में काय- कलेश होता है मेहनत पड़ती है यह समझ कर नियत कर्मों का त्याग करना बहुत ही अविवेकपूर्ण है. मूर्खता (Silly) है, निश्चित रूप से (Definitly) हानिकारक है। तो यह नियत कर्म क्या है।

'नियत कर्म' का अर्थ वह नहीं है जो आपके भाष्यकार लगाते चले आये हैं। नियत कर्म न तो किसी धर्म पुस्तक में लिखे हैं न ये किसी जाति के आधार पर तय किये जाते हैं। हर मनुष्य की नियति या डेस्टिनी (Destiny) हर मनुष्य की परिस्थिति उसके सामने कोई न कोई कर्तव्य लाती रहती है। मनुष्य नियति (Destiny) के द्वारा सामने लाये इन कर्त्तव्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसे हर हालत में इन कर्तव्यों को पूरा करना होगा। जीव के परिवेश हर जीव के सामने कोई न कोई ठोस कर्तव्य रखते हैं—जीव को अपने तात्कालिक कर्तव्य (Immediate duties) पूरी निष्ठा के साथ, लगन के साथ, करने होंगे क्योंकि यही उसके नियति के द्वारा भेजे गये आवश्यक कर्तव्य है। हर मनुष्य की नियति (Destiny) अलग है उसके हिसाब से नियतियां (Destinies) हर जीव के सामने अलग अलग कर्तव्यों की भूमिका (Different roles) रखती हैं उन कर्तव्यों (Roles) को करना ही जीव का नियत कर्म है। मनुष्य चाहे या न चाहे, समझे या न समझे वक्त आने पर नियति नाक पकड़ कर मनुष्य से वे कर्तव्य करा लेगी। आपका नियत कर्म वह है जितना आपसे नियति करा ले जाए।

नियत कर्म मनुष्य के सामने धीरे-धीरे खुलते हैं। क्रमशः मनुष्य को जीवन में अपना नियत स्थान (Station) मालूम होता है। लेकिन एक बार मालूम होने पर मनुष्य को चाहिए कि सम्पूर्ण निष्ठा के साथ, सम्पूर्ण चेतना के साथ, बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी भूमिका (Role) को खेले, उससे बचकर भागने की कोशिश न करे। सम्पूर्ण नियति एक बार में मनुष्य की समझ में नहीं आती है। अदृष्ट महाशक्ति की आज्ञा से नियति किस जीव के सामने क्या मुख्य कार्य लायेगी यह भी एकदम से जीव को पता नहीं चलता। कभी कभी आधे से अधिक जीवन बीत जाता है और नियत कार्य जीव के सामने नहीं आते हैं, उनकी ससार में क्या (Role) है। क्या मिशन (Mission) देकर उसे अपरोक्ष महासत्ता ने भेजा है—यह सभी बातें बड़े धीरे-धीरे स्पष्ट होती हैं। लेकिन हर आदमी का परिवेश उसके सामने कुछ न कुछ तात्कालिक कर्तव्य (Immediate duties) लाता है। इन तात्कालिक कर्तव्यों ((Immediate duties) से बच निकल कर सन्यास का ढलुआ रास्ता अपनाना मैं श्रेयस्कर नहीं समझता। अपनी सम्पूर्ण चेतना और सजगता और तन्मयता के साथ मनुष्य को अपने तात्कलिक कर्तव्य (Immediate duties) करने होंगे, साथ ही साथ यह जानते हुए कि हमारे सामने जो कोई भी ड्यूटीज (Duties) आ रही हैं—वे ईश्वर के महान् संकल्प (Grand design) के अन्तर्गत ही हमारे सामने आ रही है, और महा सत्ता के द्वारा दी हुई क्षमताओं के द्वारा ही हम इन कर्तव्यों के करने में लगे हुए हैं—और वही ईश्वरीय

महाशक्ति हमारे कर्मों का फल जुटा रही है। सफलता या असफलता जो भी नतीजा (Result) हो मैं चिन्ता नहीं करता। अपने पुरुषार्थ को ईश्वर समर्पित करके मैं फल के प्रति निरपेक्ष और निश्चिन्त हो जाता हूं, तो ये हुए नियत कर्म··· जिनसे बचकर भागने और सन्यास की शरण में जाने के हमेशा खिलाफ रहूं—आप गीता उठाकर देख लें। मैंने कहा—'स्वभाव नियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्'

सहज कर्म

हर एक मनुष्य अपने में निराला है। अव्यक्त की किसी न किसी विशेषता का व्यक्तीकरण है। हर बालक जब जन्म लेता है तब प्रकृति माता के भण्डार से कोई न कोई अलौकिक देन विशिष्ट प्रतिभा, मौलिकता, क्षमता लेकर उत्पन्न होता है। ये मौलिक विशेषतायें ही जीवन में उसकी कर्म—सम्बल बनती हैं। आपने देखा होगा स्वभाव से, जन्म से ही कुछ बच्चे संगीत की प्रतिभा व शौक रखते हैं। कुछ बच्चे तरह तरह के शिल्पों की प्रतिभा रखते हैं—कुछ बिना सिखाये चित्र-कला के मैदान में कूद पड़ते हैं तो कोई युद्ध सम्बन्धी शिक्षण में रुचि लेने लगते हैं। एक छोटी सी लड़की गुड्डे को हिंडोले में झुलाती है, तो ये विशिष्ट प्रतिभायें और जन्मजात रुचियां मनुष्य को सहज ही अपने शौक और रुचि के कार्यों में प्रवृत्त करती रहती हैं। जन्मजात प्रवृत्तियों के कारण एक काम एक बालक को सहज हो जाता है जब कि दूसरे बालक को वही काम सहज नहीं होगा। जन्मजात प्रवृत्तियों की तरफ मनुष्य सहज ही झुकेगा उसमें उसे अधिक प्रयास भी नहीं करना होगा बल्कि इन प्रवृत्तियों के कारण वह इन कर्मों में विशेष योग्यता प्राप्त कर सकेगा। अगर मनुष्य अपने सहज भाव को अनुसरण (follow) कर कर्म करता चले तो इस रास्ते से भी परम पुरुष का अर्चन कर सफलता प्राप्त कर सकता है।

"यतः प्रवृत्तिः भूतानां येन सर्वमिदं ततम
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवाः ।।"

सहज कर्म करने में मनुष्य को कोई बड़ा अभ्यास भी नहीं करना होता है वह बड़े शौक से, रुचि से मगन होकर अपने मन पसन्द कार्यों को करता हुआ जीवन को सफल बना सकता है, मन पसन्द सहज कार्य में लगे होने पर ऊब (Boredom) तो पास भी नहीं फटक सकती। अगर मनुष्य इतना भाग्यशाली है कि अपने मन पसन्द सहज कर्म को करने का सौभाग्य उसे प्राप्त हो रहा है तो फिर उसे न तो किसी आश्रम की ज़रूरत है और न किसी कल्पना लोक की। उसके लिये यह कर्मक्षेत्र ही कल्पना लोक हो उठता है।

सहज कर्म और नियत कर्म में अन्तर

यह संयोग (chance) की बात है कि मनुष्य को अपने सहज कर्म, नियत कर्मों के रूप में मिल जायें यानी जन्मजात प्रवृत्तियों के कारण जो शौक के काम थे वही आगे जाकर उसकी नियति बन जायें। ऐसा अक्सर हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। जो रुचि के शौक के काम थे, जो पहले अपने मन के झुकाव के कारण प्रिय लगते थे फिर वही जीवन की प्रबल प्रेरणा बन जाये। जिसमें मनुष्य का मन रमता था (सहज कर्म) वही उसके जीवन का मिशन (Mission) बन जाये।

नियत कर्म

लेकिन ऐसी परिस्थिति जरूरी नहीं है कि हर व्यक्ति के साथ हो। कभी-कभी मन न जाने किन-किन कामों में रमता है लेकिन बड़े ही विपरीत नियत कर्म सामने आ जाते हैं। मैं बांसुरी बजाने का बड़ा शौकीन था, प्रकृति की रम्य गोद में आनन्द से विचरना मुझे बहुत प्रिय था किन्तु नियति मेरे सामने कंस जैसे डिक्टेटर से लोहा लेने का अप्रिय नियत कर्म लाई। परोक्ष महाशक्ति का संकेत समझकर नियत-कर्मों को स्वीकार कर लेना चाहिये—चाहे ये, वे काम न हों जिनमें कि तुम्हारा मन रमता हो ईश्वर के महान चक्र (grand design) में यह नियति इसी प्रकार फिर होगी इसलिये ईश्वर से शक्ति मांगकर, क्षमता मांगकर हम अपने नियत कर्मों को करेंगे उनसे भागेंगे नहीं बचेंगे नहीं। युद्ध अर्जुन के सामने एक नियति के रूप में उपस्थित था इसलिये मुझे अर्जुन को सावधान करना पड़ा था कि तुम इस नियति से बच नहीं सकोगे। 'यह परिस्थिति न तो तुम्हारी बनाई हुई है न तो तुमने ऐसा कोई कार्य किया है जिससे युद्ध की भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो। तुमने ऐसा कुछ नहीं किया फिर भी जीवन के प्रवाहों और विपरीत प्रवाहों (cross current) ने तुम्हें उस बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दिया है जहां सत् (Good) और असत् (Evil) की शक्तियाँ (forces) आपस में टकराने के लिये तैयार खड़ी हैं और तुम्हें इस संघर्ष में निश्चयात्मक भाग लेना है। यह तुम्हारी नियति है। यदि तुम कर्म नहीं करोगे तो यह तुम्हारा बुद्धूपन होगा—बचकर निकल भागने की कोशिश करोगे ये दुष्ट महाशक्तियाँ तुम्हारा पीछा करेंगी, घेर कर मारेंगी—युद्ध से तुम बचा नहीं सकोगे वह अवश्यम्भावी नियति है—कल्याण इसी में है कि अपना भाग (part) तुम आन्तरिक सचाई (sincerity) के साथ पूरा करो।

सन्यास में ग्राह्य क्या है

प्रश्न मेरे सामने आया—क्या सन्यास में कुछ भी ग्राह्य नहीं—सम्पूर्णतया हेय है क्या ? तो फिर इतने हजारों साल से लोग सन्यास के पीछे क्यों दीवाने हो रहे हैं—क्यों राज सुखों को छोड़कर अरण्यों की खाक छान रहे हैं, क्यों उन्हें जीवन के सुख काटने दौड़ रहे हैं क्या आकर्षण है सन्यास में जो साल के साल हजारों व्यक्ति माला-झोली लेकर तीर्थों और बनों में भटक रहे हैं।

अगर एक गलत जीवन दर्शन को गले लगाकर पूरी की पूरी जाति वावली हो जाय तो इसके लिये क्या कहा जाय। लख चोरासी की भ्रान्त धारणायें मोक्ष और पुनर्जन्म का हौवा अगर मनुष्य को इतना डरा दे कि वह अपने जीवन में अपने वर्तमान क्षणों में कोई भी आनन्द प्राप्त नहीं कर सके तो इसे एक बहुत बड़ी ट्रेजेडी, (Tragedy) के अलावा और क्या कहा जा सकता है। यह विश्व, यह सृष्टि, यह जीवन, यह संसार प्रभु ने इतनी प्लानिंग (Planning) के बाद इतना बुरा नहीं बनाया है कि जीव उसमे बचता फिरे—उसमें किसी आनन्द का अनुभव न करे। इतनी योजनाओं से निर्मित यह जीव देह परात्पर ने इसलिये बनाई थी कि वह उनके द्वारा निर्मित इस सुरम्य वाटिका (सृष्टि) में मन रमाये, खेले-कूदे कुछ इस वाटिका में परिष्कार (Improvement) लाये—न कि उस वाटिका में सिर्फ कांटे ही कांटे देखकर विरक्त हो जाय। यह सृष्टि जीव का अनुराग मांगती है, वैराग्य नहीं।

सन्यास एक जीवन-पद्धति का स्थान कदापि ग्रहण नहीं कर सकता। एक दर्शन के रूप में (As a cult) यह समाज के लिये कल्याणकारी नहीं है क्योंकि यह निष्क्रियता, निठल्लेपन, और निरानन्दता को प्रश्रय देने वाला है और सम्पूर्ण समाज को पंगु बना देता है। सन्यास की मनोवृत्ति तरह-तरह की मानसिक जटिलताओं को उत्पन्न करने वाली है और यदि किसी समाज में अधिक संख्या में लोग सन्यास की ओर झुकने लगेंगे तो निश्चय ही समाज का आर्थिक ढांचा ढह कर गिर पड़ेगा और निष्क्रिय पलायनवादी व्यक्तियों से भरा हुआ वह समाज निस्तेज हो जायेगा।

सन्यास का सार त्याग है और वह त्याग अपने जीवन में व्यापक रूप से ग्रहण करना चाहिये। सन्यास कोई धर्म (cult) नहीं है। यह एक मानसिक स्थिति, एक दृष्टिकोण है। अगर सन्यास का कोई भी सही अर्थ (Justification) है तो वह है उसमें निहित त्याग का तत्व (Element) त्याग को जीवन में व्यापक रूप से उतारने से नैष्कर्म्य सिद्धि स्वत: प्राप्त हो जायेगी। सन्यास न कोई धार्मिक

अनुष्ठान (Ritual) है न आश्रम बल्कि वह एक त्याग की मनोदशा है जिसमें 'चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः बुद्धियोग उपाश्रित्य मच्चित्त: सततं भव' सन्यास एक मनोदशा (Mental attitude) है। चित्त से सब कर्मों को मेरे लिये अर्पित करें—ज्ञान योग का आश्रय लेकर ईश्वर अनुभूति से युक्त हो जाय' यही तो पूर्वोक्त श्लोक में कहा गया है। सन्यास एक मानसिक दृष्टि है (Mental attitude) जिसे हमें रोज मर्रा के जीवन में ढालना होगा अपने जीवन में व्यापक रूप से ग्रहण करना होगा। सन्यास का मूल तत्व त्याग है। यह विधिवत् (Formally) सन्यास न लेकर भी प्राप्त किया जा सकता है। काम्य कर्मो का सन्यास मैं पसन्द नहीं करता। तब जीवन जीने योग्य न रहेगा (Life will not be worth living then)। आपका परिवेश आपके परिवार के सदस्य आपका प्यार मांगते हैं, वैराग्य नहीं, मनुष्यों के प्रति अनुराग, सृष्टि के सौंदर्य के प्रति अनुराग, जीव मात्र के प्रति अनुराग—यही वह श्रेष्ठ महत्व है जिसमे मानव समाज विकसित होता है: सृष्टि में परिष्कार आता है पूर्णता आती है। जब हम मौरल आर्डर (Moral order) के मूल तत्व को ध्यान में लाते हैं कि सारी सृष्टि आपके लिये है और आप सृष्टि के लिये हैं—(All for one and one for all) तो फिर आपके सामने वैराग्य या सन्यास का स्थान कहाँ रहेगा। यह कैसे हो सकता है कि सारा संसार तो आपको प्यार करे और आप किसी को प्यार न करें। यह तो एहसान फरामोशी और कृतघ्नता होगी। यह कैसे उचित माना जा सकता है कि एक महान् त्यागी और सन्यासी के रूप में सब तो आपकी सेवा करें और आप किसी के वक्त पर काम न आयें। यह तो सीधे शब्दों में मतलबखोरी होगी। जबकि सारी सृष्टि आपको प्यार कर रही है—फूल आपके के लिए खिल रहे हैं, बादल आपके के लिए वरस रहे हैं—चन्द्र आपके लिए अपनी शीतल ज्योत्सना बिखेर रहा है, यह नन्हीं चिड़िया पेड़ पर बैठकर आपको गाना सुना रहा है. तो क्या आपका यह कर्तव्य नहीं है कि आप इस अनुराग भरी सृष्टि को अपना अनुराग दें—इस खिलती हुई कली को चूम लेलाइस सुन्दर उपवन (सृष्टि) को और भी सुन्दर बनाने का प्रयास करे। इसमें अपने सत्प्रयासों से और भी चार चाँद लगायें। इस प्यार भरी सृष्टि से जो सृष्टिकर्ता के प्यार को आप तक पहुंचा रही है—मुंह मोड़ना, इसमें बुराई देखना, सन्यास का ढोंग रचना क्या यह सृष्टि के स्वामी परात्पर के प्रति कृतघ्नता नहीं है ?

फिर आप अने ऊपर दृष्टि डालिये। आप जो इतने बड़े हो गये हैं सो क्या ऐसे ही हो गये हैं। एक माँ ने आपको जन्म दिया कितनी मेहनत की होगी आपको पालने में—एक पिता ने तन तोड़कर मेहनत की होगी रात दिन तक आपके लिये

रोटी और दूध जुटाया होगा—आपको बी० ए० और एम० ए० तक की शिक्षा देने के लिये कितने अध्यापकों ने शिक्षकों ने प्राइमरी से लेकर कालेज (College) तक आपके ऊपर मेहनत की होगी—तब आप इस लायक हुए होंगे, भाषाओं और विषयों पर आपका यह अधिकार हुआ होगा जो आज है। अगर आपकी पत्नी है—जो कि सुबह से शाम तक आपके जीवन को सुख-सुविधाओं से पूण बनाने में लगी रहती है जो अपने हृदय की प्रेम धारा से हर-समय आपको सिंचित करना चाहती है—वह प्रेम प्रतिमा भी न जाने कितने हाथों से गढ़कर आपके पास आई होगी तो क्या इन सब अनगिनत प्राणियों के प्यार और अनुराग का बदला वैराग्य और विरक्ति से दिया जायेगा। मनुष्य रूपी वृक्ष की जड़ें बहुत दूर दूर तक पहुंचती हैं जनाब—यह जड़ें सिर्फ प्यार की सिंचाई मांगती हैं। अभी तक आप लोगों को जो उल्टी पट्टी पढ़ाई गई है कि प्यार करने वालों को भी प्यार न करो, वैराग्य धारण कर लो सबसे विरक्त हो जाओ—यह सब बातें तो जीवन के उत्स को, स्रोत को सुखाने वाली हैं। इनसे न किसी का भला हुआ है और न होगा। सीधी बात है यदि आप किसीसे प्रेम नहीं करते तो और कोई आपसे क्यों करे? ऐसी क्या सिफत आप में है? और कम से कम कृष्ण के नाम पर तो वैराग्य का ढोंग धारण करना छोड़ ही दीजिए। कृष्ण ने अपने जीवनकाल में अनुराग का ही प्रसार किया था वैराग्य का नहीं—किस लड़की के सौंदर्य को मैंने नहीं सराहा, किस कली को मैंने नहीं चूमा—कौन सी गाय थी जो मेरी पुकार सुनकर दौड़ी चली नहीं आती थी। जो जिस भावना को लेकर मेरे पास आया मैंने उसी भावना से उसका प्रतिदान दिया। (ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यह) फिर यह क्यों कहा जाता है कि कृष्ण संसार से वैराग्य लेना सिखाते थे। मेरे मित्रों कृष्ण राग का देवता है वैराग्य का नहीं।

कृष्ण को सृष्टि की हर वस्तु से प्यार था और प्यार है—हर सुन्दर लड़की, हर सुन्दर बिचार, हर सुन्दर कर्म जिससे सृष्टि सजे, कृष्ण को आकर्षित करती थी और कृष्ण उससे आकर्षित होता था।

सन्यास किसका और क्यों?

मैंने बताया म सन्यास का मूल तत्व त्याग है और वह त्याग वैसे भी जीवन में अपने मानसिक दृष्टिकोण (Mental attitude) में ग्रहण किया जा सकता है। उसके लिए यह जरूरी नहीं है कि सन्यास आश्रम में बाकायदा कपड़े रंगाकर सिर मुड़ाकर प्रवेश लिया जाय और प्रवेश फीस की तरह अपने जीवन के सभी काम्य

सुखों और मानवीय आनन्दों को तिलांजलि दे दी जाय, त्याग या सन्यास होना चाहिए—अपने निजी स्वार्थों का। अपने स्वार्थों का समाज के, समष्टि के स्वार्थों में लय करना होगा, त्याग होगा अपने अहं का—अपने अह का लय विराट् के अह में करना होगा—त्याग अपने स्वार्थों का होगा, लोक कल्याण के लक्ष्यों का त्याग नहीं होगा। वैराग्य अपने स्वार्थों के प्रति होगा विश्व के स्वार्थों के प्रति नहीं। त्याग और सन्यास की असली भावना को बुद्ध ने उपेक्षा भावना में समाहित किया है। संसार के जीवों के प्रति तो मैत्री का विस्तार होगा प्यार का विस्तार होगा—जन्तु जगत् के प्रति करुणा का विस्तार होगा जो कि प्रेम का ही दूसरा नाम है—सारे संसार में हम प्रसन्नता का ही प्रसार करेंगे जिसे बुद्ध ने मुदिता का नाम दिया है और उपेक्षा या वैराग्य अगर कहीं स्थान पा सकती है तो हमारे अपने सुखों के प्रति उदासीनता में ही स्थान पा सकती है। दूसरों के प्रति अनुराग प्रति अपने निरपेक्ष दृष्टिकोण यही वैराग्य या सन्यास का मूल तत्व है। यदि आपके मानसिक दृष्टिकोण में यह है तो आप बिना कपड़े रंगाये भी सन्यासी हैं। यदि यह निजी स्वार्थों के प्रति निरपेक्षता की भावना आपमें नहीं है तो आप कपड़े रंगाये हुए सन्यासी के रूप में भी संसार के काफी बड़े परिग्रही और ढोंगी व्यक्ति हैं।

सन्यासियों के दो शब्द

अभी अभी मैंने आपको बताया था कि सन्यास कोई आश्रम नहीं है न यह कोई धार्मिक प्रतिष्ठा पाने का तरीका है बल्कि एक भावना है। एक चित्त की दशा है जिसमें मनुष्य अपने जीवन की हर परिस्थिति से मार्ग दर्शन प्राप्त करता है और अपने स्वार्थों को विश्व को कल्याण के लिए त्याग कर विश्व के सुख में सुखी होता है—विश्व के दुख में दुखी होता है और अपने स्वार्थों के प्रति एक तरह से उदासीन, निरपेक्ष रहता है। ठीक है संसार के भोग मिल गये तो ठीक, नहीं मिले तो हम उनके बिना भी काम चला लेंगे यदि भोग मिलते हैं तो हमसे पहले उन भोगों पर उन लोगों का अधिकार है जो हमारे आस पास हैं निजी सुखों के प्रति यह उपेक्षा भावना आप के अन्दर है तो आप सचमुच सन्यासी हैं और आपका जीवन सराहनीय है।

जिन लोगों ने सन्यास को जीवन में आश्रम के रूप में स्वीकार कर रखा है, हालांकि मैं इस चीज को पसन्द नहीं करता फिर भी वे अपने आग्रह को न्याय संगत बना सकते हैं। यदि वे विराट्-जगत के कल्याणकारी कार्यों में अपनी पूरी

शक्ति के साथ जुट जायं। निठल्लेपन को आश्रय न दे, परोपजीवी न बनें और सुसंगठित रूप से जीव-जगत् के सेवा कार्य में लग जायें। ईसा के अनुयायी सन्यासी जिस तरह-दुखित मानवता की सेवा करना सन्यासी का कर्तव्य समझते हैं वह ठीक है। आश्रम के रूप में सन्यास ग्रहण करने वाले को मालूम होना चाहिए यह सन्यास बहिरात्माओं के रूप में प्रकट होने वाले परमेश्वर की सेवा और अर्चन के लिए है। चाहे बच्चों को शिक्षा का काम हो—चाहे बीमारों की चिकित्सा का परिचर्या का काम, चाहे भटके हुओं को आश्रय देने का काम हो या अनाथ बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा करने का काम हो या डाकुओं के हृदय परिवर्तन का काम हो अथवा जंगल में बसने वाली आदिवासी जातियों को सभ्य और सुसंस्कृत करने का काम हो, सन्यास आश्रमी को कोई न कोई ठोस काम का आधार अपने जीवन में अवश्य रखना होगा—अन्यथा केवल दूसरों के दान-धर्म पर पल कर सुबह शाम मेरे नाम का कीर्तन करने से वे कुछ प्राप्त नहीं कर सकेंगे। हर जीव के सामने सृष्टिकर्ता ने बहुत सरलता से और प्यारे से लक्ष्य रखे हैं। आप अपने परिवेश को प्यार करिये उसे पहले से अधिक सुन्दर और समुन्नत बनाने का कार्य करिए—सृष्टि को अपने जीवन काल में अपने प्रयासों से पहले मे कुछ अधिक समुन्नत बनाकर जाइए—इस उपवन में एक और फूल देने वाला पौधा लगाकर जाइए। दूसरा लक्ष्य है—"सारा संसार आपके लिए खट रहा है—मेहमत कर रहा है—आपको भी सारे संसार के जीवों के लिए कुछ न कुछ काम प्यार से करना होगा। सन्यासी इन दोनों लक्ष्यों से अलग कटकर मोक्ष सांधन नहीं कर सकता। जिसका मोक्ष आप चाहते हैं उसे आप मोक्ष क्या दिलायेंगे वह तो स्वयं नित्यमुक्त है ओर मुक्त शान्त प्रसन्न आत्मा यहां जीव बनकर इसलिए आई है कि अपने को घेर घेर कर आनेवाली बहिरात्माओं को शान्त और प्रसन्न रहने में मदद दे। यही मुदिता है, यही करुणा है, यही प्रेम है। सन्यास अपने सुखों का किया जाना चाहिए। दूसरों के सुखों का मार्ग प्रशस्त करने के लिए यही सन्यास का मूल मन्त्र है।

कर्म त्याग अथवा कर्म फल त्याग

अथवा कर्म फल निरपेक्षता

मैं यह सुनते सुनते परेशान हो गया हूं कि कृष्ण ने गीता में निष्काम कर्म का उपदेश दिया है। कुछ महाशय लोग यह कहते हैं कि मैंने कर्मफल त्याग का उपदेश दिया था—जहां तक मेरा अपना सवाल है मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैंने न तो कर्मों के त्याग का उपदेश दिया था न कर्मफल त्याग का—मैं पहले ही बता चुका हूं कि ये दोनों ही बाते असम्भव हैं। कुछ लोग—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" गाकर खुश हो लेते हैं बिना यह समझे कि यदि कर्म का अधिकार है तो फल प्राप्ति का क्यों नहीं ? "मां कर्मफल हेतु" लिखने को तो महामुनि ने लिख दिया लेकिन यह नहीं सोचा इसका अर्थ क्या जाकर बैठेगा। क्या मैंने यह कहा था अर्जुन से तू कर्मफल प्राप्त करने के लिए मत कर। कम से कम इस पद्यांश का तो यही अर्थ लगता है। आप पूछ सकते हैं कि न आप कर्म त्यागने को कहते हैं न कर्मफल त्यागने को कहते हैं फिर आप क्या त्यागने को कहते हैं ? गीता में जो बार बार "संगंत्यक्त्वा धनंजय" संग त्याग कर कार्य करो इसका अभिप्राय क्या है ?

देखिये मेरे नाम से कर्म करने. फल की इच्छा छोड़ने या न छोड़ने के बारे में भाष्यकारों ने जो गपड़-चौथ की है और एक पूरी जाति का दिमाग गलत दिशा में ले जाने का कार्य किया है, उसे मैं अनुचित समझता हूं। कर्म विषयक गलत सिद्धान्तों ने प्राय: एक भूखण्ड की जनता का दिमाग बरगलाया है इसलिये अपनी तरफ से मैं अपनी विचारधारा को पुन: स्पष्ट करने की कोशिश करूंगा—

नियत कर्म, सहज कर्म, स्वभावजकर्म

देखिये, जब एक मानव देह है-कर्म करने से छुट्टी नहीं मिल सकती। शरीर के साथ कर्म लगे ही हुए हैं। कुछ काम तो ऐसे हैं जो शरीर यात्रा से सम्बन्ध रखते हैं, वे काम तो मनुष्य को करने ही होंगे। दैनिक जीवन चर्या (Day to day life) के रोटीन कार्य (Routine work) नहाना, धोना, भोजन करना, शौचादि-ये शरीर की जरूरतें हैं हर हालत में पूरी करनी होंगी आपको प्यास लगेगी पानी पियेंगे तो किसी पर एहसान नहीं करेंगे। दाढ़ी बढ़ेगी तो अपने आप हजामत करेंगे ही किसी को आपसे कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी। ये हुए स्वभावज कर्म जो आप झकमार कर करेंगे।

जिन कामों में आपकी स्वाभाविक रुचि हैं वे भी आप दिल लगाकर करेंगे, कूद कूद कर करेंगे. कोइ मना करेगा तो भी नहीं मानेंगे। ये हुये 'सहज कर्म।' आपको कविता करने की स्वाभाविक शक्ति है तो आप कवितायें अवश्य बनायेंगे, आप में शिल्प की रुचि स्वाभाविक है तो आप मैकेनिक बनकर रहेंगे, क्योंकि ये आपके सहज कर्म हैं,

अब रहे वे कर्म जिन्हें आप 'कर्तव्यों' की श्रेणी में लाते हैं और जिन्हें मैंने कार्य कर्मों का नाम दिया है जिनसे अक्सर आप बचना चाहते हैं, सामना

(Confornt) नहीं करना चाहते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि किसी भी कार्य के होने में चार छः जरूरी बातें होती हैं। कार्य किसी विशेष सिचुएशन (Situation) में सामने आते हैं। कार्य का कोई कर्त्ता करने वाला होता है (Doer) कार्य करते समय कुछ साधनों का प्रयोग होता है। कुछ कर्त्ता की चेष्टा में भी होती हैं। इनके अलावा एक दैवीय तत्व होता है जिसको कि हम आप की नियति (Destiney) कह सकते हैं। अतिमानवीय स्तर पर जो आपकी नियति होती है वह ईश्वर की इच्छा (Divine will) होती है। ईश्वर अपनी सृष्टि के सम्बन्ध में अपनी मर्जी (Divine will) रखता है, संकल्प (Design) रखता है। हर जीव उसकी इच्छा के अनुसार इस सृष्टि चक्र (Grand design) में कही न कही फिट है।

तो आप चाहें न चाहें आपकी नियति (जो कि ईश्वर की इच्छा से निर्मित है) आपसे आपके जीवन में कोई न कोई खास काम करा लेगी। आप नियत कर्मों से बच नहीं सकते। नियति अवश्य आपसे नियत कर्म वक्त आने पर करा लेगी। क्योंकि वह ईश्वर की इच्छा है, महान सृष्टि-चक्र (Grand design of universe) में आप भी एक गोटी हैं। अदृष्ट सत्ता आपको जिस तरह चला रही है उस तरह आपको चलना होगा। नियत कर्म वे हैं जो ईश्वर की मर्जी आपसे करा ले जाय।

कार्य वे हैं जो खास परिस्थिति (Situation) आपसे किसी खास तरह से प्रतिक्रिया (Response) मांगती है—ये भी वे कार्य हैं जो ईश्वरीय प्रेरणा से आप को करने ही पड़ जायेंगे। यह परिस्थिति की आवश्यकता है। बच्चा बीमार है आप को डाक्टर के पास जाना ही होगा। अतः यह कहने से काम नहीं चलेगा कि हम नहीं करते। जनाब आपको कार्यकर्म करना ही होगा नहीं तो जहन्नुम का सीधा रास्ता खुला मिलेगा। बच्चा बीमार है डाक्टर के यहां जाना उसका इलाज कराना आपका कार्यकर्म है। मत जाइये आप डाक्टर के पास, जो नतीजा होगा आप के सामने आयेगा।

तो यह तय बात है कि आप कार्यकर्मों से जान नहीं बचा सकते तब फिर आते है कर्मफल त्याग पर। जो लोग इसका यह अर्थ लगाते हैं कि कृष्ण ने कर्मफल त्यागने के लिये कहा है वे यह भूल जाते हैं कि कर्मफल कोई त्याग नहीं सकता। आपने परीक्षा के लिये मेहनत की है, पर्चे दिये हैं. तो क्या जब नतीजा (Result) निकलेगा, आप पास होगें तो आप डिग्री लेने से मना कर देंगे? आपने दो घन्टे मेहनत करके सुस्वादु भोजन तैयार किया है, खाना पक जाने पर उसे खायेंगे नहीं, छोड़ देंगे। आप किसान हैं—चार महीने आपने दम तोड़ मेहनत की है. गेहूं

बोये हैं—वक्त आने पर आप उसकी फसल नहीं काटेंगे, छोड़ देंगे। दूसरों को दे देंगे। नहीं ऐसा नहीं होगा। कर्म करने वाला व्यक्ति भला कर्मफल को क्यों त्यागेगा? यह तो विचार ही (Absurd) बेकार है। फिर भी यह सोचिये कि काम शुरू करने के साथ ही आपको यह मालूम हो कि भाई काम तो हम करेंगे लेकिन फल हमें त्यागना पड़ेगा, फल कोई और ले जायेगा तो काम करने में कितनी तबियत लगेगी, कितना उत्साह रह जायेगा काम करने का। यदि किसी इन्सान को यह पता चल जाय कि जिस खेत में मैं काम कर रहा हूँ उसमें मेहनत तो मैं करूँगा हल मैं चलाऊँगा, बीज मैं डालूंगा. गुड़ाई मैं करूँगा फसल काट कर कोई और ले जायेगा। तो कितना उत्साह रह जायगा, उस खेत में काम करने का। तो हर काम में यही बात है। अगर हम पहले से ही निश्चिन्त हो जायँ कि हमें कर्मफल नहीं मिलना है, त्यागना है तो भला फिर कौन बेकार की जहमत मोल लेगा। कर्मफल की इच्छा ही तो कर्म के उद्देश्य के रूप में कर्म की प्रेरणा बनती है।

इसलिये मैं स्पष्ट शब्दों मे आपको समझा रहा हूं—मैंने किसी को कर्मफल त्यागने को नहीं कहा था न ही इस समय कह रहा हूँ। कर्म और कर्मों के उद्देश्य तथा लक्ष्य प्राप्ति बराबर साथ चलेंगे। जितने अच्छे लक्ष्य या उद्देश्य सामने रखे जायेंगे जितने अच्छे लक्ष्य स्थिर होंगे, जितनी अच्छी प्लानिंग (Planning) होगी, उतने ही अच्छे कर्म होंगे, श्रेष्ठ लक्ष्य प्राप्त होंगे। जीवन में प्रगति होगी इस विषय में कोई गड़बड़ (Confusion) नहीं करनी है।

"त्यक्त्वा कर्मफलासंग"

तो फिर प्रश्न आता है। कर्म करने के साथ मैंने क्या चीज त्यागने को कहा था, इस सन्दर्भ में एक शब्द का महामुनि ब्यास ने बार-बार प्रयोग किया है।

कर्मफलासंगं—संगं त्यक्त्वा

फलासक्ति

इस 'संग' शब्द का अर्थ था दुराग्रह जिद या आसक्ति है, जब हम कोई भी काम करेंगे—

संग का अर्थ है—यहाँ फल के किसी विशेष रूप से आसक्ति,
यह आग्रह कि हमें अपने कर्म का फल इसी रूप में प्राप्त हो।

हम यह ज़िद नहीं करेंगे, दुराग्रह नहीं करेंगे कि हमें यह विशेष फल इसी खास ढंग से प्राप्त हो। जब भी हम कोई काम करेगे इस प्रकार के दुराग्रह से अपने को मुक्त रखेंगे।

काम अच्छी तरह शुरू करेंगे प्लानिंग (Planning) भी करेंगे, फल का लक्ष्य (Target) भी सामने रखेगे लेकिन मन में यह आसक्ति, ज़िद या दुराग्रह नहीं पालेंगे कि इस कर्म का फल हमें अपने मन चाहे ढंग से ही मिले। क्योंकि कर्म और कर्मफल के बीच में एक और बहुत बड़ी शक्ति आती है और उसका नाम है अदृष्ट, डिवाइन विल (Divine will) या ईश्वर की मर्ज़ी।

कर्म फलेषु जुष्टाम्

आप जिस सिचुएशन (Situation) या स्थिति का सामना (Face) कर रहे हैं और जिस सिचुऐशन (Situation) के प्रत्युत्तर (Response) में आपके कर्म हो रहे हैं—पहली बात यह है कि (Situation) या परिवेश आपकी स्वयं की बनाई हुई या लाई हुई नहीं होती है। सिचुऐशन (Situation) अदृष्ट, प्रेरित होती है। ईश्वर के अदृष्ट संकल्प (Grand dasign) के अनुसार आपके सामने लाई जाती है।

जो अदृष्टि महाशक्ति आपके सामने एक विशेष सिचुएशन (Situation) या परिवेश ला रही है, वही अदृष्ट महाशक्ति एक खास अव्यक्त तरीके से आपकी प्रतिक्रियाओं (Responses) को प्रेरित कर रही है—क्योंकि हर परिस्थिति ईश्वर की महान योजना (Grand design) में एक विशेष प्रकार से नियत है और परोक्ष महासत्ता एक हद तक इस स्थिति के प्रति आपकी प्रतिक्रियाजों को निश्चित (Determine) भी कर रही है। क्षमताएं भी वही जुटा रही है और वही महा शक्ति अन्त में उस कर्म के फल को भी जुटा रही है जब कर्म फल को जुटाना अव्यक्त सत्ता के हाथ में है तब उसमें दुराग्रह करना कि हमें इसी खास तरह का नतीजा चाहिए, अज्ञान मूलक होगा। इस निश्चित ज्ञान से एक ओर कर्मफलों के विशेष प्रकार से दुराग्रह हट जाता है, सारा पुरुषार्थ मनुष्य परोक्ष सत्ता को अर्पित करता है और भविष्य भी उसी महाशक्ति के हाथ में छोड़कर निश्चिन्त हो जाता है। इस सारी कर्मश्रृंखला में समझने की बात यह है कि तुम उस अदृष्ट महाशक्ति के सामने अपने कर्मों का समर्पण करोगे जो अव्यक्त रूप से सारी घटनाओं और परिस्थितियों को ला रही हैं (उसीकी योजना है) और जो स्वयं इस बात का निश्चय करेंगी कि किस कर्म का क्या फल होना चाहिये। जब मनुष्य को इस दिव्य महासत्ता को अपने

जीवन के ऊपर छाये हुये होने की अनुभूति तथा अव्यक्त रूप से अपने कर्मों को प्रेरित करते रहने का एहसास होने लगता है तभी वह सर्वतोभावेन ईश्वरीय संकल्प के सामने नत मस्तक होना सीखता है और अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और संकल्पों को विश्वात्मा के संकल्पों और योजनाओं में लय करना सीख जाता है। हर कर्म में सारे कारण (Factors) निश्चित (Determined) रहने पर भी एक (Factor) कारण, ऐसा रह जाता है जो अनिश्चित होता है जिसे दैव या अदृष्ट कहते हैं। इसलिए चाहे जितना सहज कर्म करने पर भी हर कर्म का फल हमारी अपनी मर्जी के अनुसार नहीं हो सकता कर्मफल के विषय में ईश्वरीय महाशक्ति की इच्छा चलती है। कर्मफल का रूप वह निश्चित करेगी—कर्म का फल क्या होगा यह-विश्वात्मा की बुद्धि निश्चित करेगी—आपकी नहीं। इसीलिए मैंने इस बात पर जोर दिया है कि आप योगस्थ होकर कर्म करिये योगस्थ होकर कर्म करने का मतलब सम्पूर्ण चेतना, सजगता और तन्मयता के साथ साथ यह एहसास (Awaren-ess) हो कि यह परिस्थिति जिसके प्रति मैं प्रतिक्रिया (Respond) कर रहा हूं अदृष्ट महाशक्ति के द्वारा मेरे सामने लाई गई है—मेरी क्षमतायें भी उसी की प्रदत्त है और फल भी वही महाशक्ति जुटाएगी। मेरा काम अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य से इस कर्म को करने का था, रही सिद्धि, जिस महाशक्ति के हाथ में है वह निश्चित करेगी कि मुझे किस प्रकार कैसा और कितना फल मिलेगा।

"योगस्थः कुरू कर्माणि संगं व्यक्त्वा धनंजय।"

इस ईश्वरीय एहसास (Divine awareness) के साथ युक्त होकर कर्म करो लेकिन विशेष प्रकार का फल (Result) पाने में आसक्ति या दुराग्रह न रखो। अपने कर्मों को ईश्वर की महान योजना (grand disign) में समर्पित करो क्योंकि जो महाशक्ति फल जुटाती है उसे ही हमारे कर्मों का फल देने का अधिकार है।

ईश्वर के (Grand design) में विश्वात्मा के इस महान संकल्पित विश्व कर्म में कर्मों की प्रेरणा भी ईश्वरीय संकल्प (divine will) से मिल रही है—कर्म करने की क्षमता भी वहीं से आ रही है, वही परोक्ष सत्ता किस प्रकार के फल हमें कर्मों के करने के फल स्वरूप प्राप्त होंगे, निश्चित करती है। मनुष्य घटनाओं और कर्मों के पीछे छिपे इस अव्यक्त ताने-बाने को समझकर फल निरपेक्ष हो जाता है। यानी हमने अपना पुरुषार्थ प्रभु को अर्पित कर दिया—अपनी सम्पूर्ण शक्ति और सद्भावनाओं के साथ काम किया और अब फल जो चाहे हो। हमें इसका गिला नहीं होगा। यही योग युक्त अवस्था (divine awareness) है इसी अवस्था में हर कर्म मनुष्य का सम्बन्ध (divine will) ईश्वर की मर्ज़ी से जोड़ता है, इस फल

निरपेक्षता का आश्रय लेकर जब काम किये जाते हैं तो हर कर्म विश्वात्मा के संकल्प में लय होता है, हर राग विश्ववीणा के आर्केस्ट्रा (Grchestra) के महाराग में लय होता है, हर कर्म विश्व कर्म में लीन होता है। हर कर्म यज्ञ का रूप धारण कर लेता है क्योंकि हर प्रयास (Effort) विश्वात्मा को प्रेरणा से विश्वात्मा की इच्छा को पूरा करने के लिये किया जाता है। अपनी इच्छा का महत्व या माध्यम समाप्त हो जाता है। विश्वात्मा की इच्छा विश्व में अपनी पूर्ति करती है व्यक्तिगत (individual) इच्छायें उस महान इच्छा की किरण के रूप में ही हमारे पास आती है—हर कर्म विश्व कर्म इस तरह बनता है कि हमारे कर्मों के रूप में विश्वात्मा अपनी इच्छाओं को पूरी करता है। एक महान देवता है जिसके रोबोट (Robots) हम सब हैं जो वह करा रहा है Robots वही कर रहे हैं, ठुमकी वह दे रहा है रोबोट (Robots) थिरक रहे हैं। सारे राग उस महाराग में मिलकर लय हो रहे हैं। तब भला अलग-अलग कर्मों के संस्कार कैसे बनेंगे ? जीव की हस्ती अलग नहीं रहती—वह विश्वात्मा में लय होकर बिराट् सत्ता का अनुभव करता है—इस प्रकार ईश्वरीय एहसास (Divine awareness) से युक्त होकर कर्म करने से फलासक्ति का त्याग कर फल निरपेक्ष होकर काम करने से मानव महासमाधि के महासागर तक पहुंच जाता है।

(Divine awareness—योग युक्त अवस्था)—मनुष्य के शरीर के भूत, (Matter) विश्व महाभूतों (Cosmic matter) के अन्तर्गत है, मनुष्य का मन विश्वमन (cosmic mind) का अंश हैं—मनुष्य की बुद्धि विश्वात्मा की अनन्त बुद्धि का एक अंग है। मनुष्य का प्राण महाप्राण का एक अंश है, मनुष्य के कर्मों की अलग से कोई हस्ती नहीं है—वह विश्वात्मा के क्रिया कलापों का ही एक अंश है—हमारा कुछ भी अलग नहीं है—हमारे नियत कर्म निश्चित रूप से विश्व नियति के अंश हैं और परात्मा की अति मानवीय इच्छा को पूरा करने के लिये हो रहे हैं। हमें कर्म के फलों के विशेष रूपों (forms) के लिए ज़िद न कर, एक प्रकार का साक्षी भाव विकसित (develop) करना चाहिए। निरपेक्ष भाव से, हंसते हुए इन्तजार करना चाहिए कि क्या नतीजा सामने आता है। जय या पराजय, सुख या दुख, लाभ या हानि सब शिरोधार्य होंगे क्योंकि (Result) सामने आ रहा है वह वस्तुतः (Divine plan) विश्वात्मा की योजना, उसकी इच्छा (will) के अनुसार ही आ रहा है।

यही वह फल निरपेक्ष स्थिति है जिसको कि मैं सामने लाना चाहता था लेकिन दुर्भाग्यवश स्पष्ट नहीं हो सकी, शब्दों के वाक्जाल में फंसकर रह गई थी

और यही वह योगमुक्त अवस्था है—जिसमें फल निरपेक्ष मनुष्य विश्वात्मा के महान् सृष्टि कर्म में अपने कर्मों की आहुति देते हुए मस्त रहते हैं।

"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः
स सन्यासी स योगी न निरग्निः चाक्रियः।"

जो अपने कर्तव्यों को करता है और जो कर्मफल के बारे में अपनी जिद नहीं रखता, वही योगी है वही सन्यासी है। अक्रिय या निरग्नि नहीं।

अक्रिय निठल्ले, निरग्नि जो घर की जिम्मेदारी से बचता है, वह नहीं।

नैष्कर्म्य में विश्वास रखने वाले निठल्ले और कामचोर हैं। शठ और निकम्मे। नैष्कर्म्य चाहे सन्यास का रूप रखकर आये या किसी का वह प्रगति का बाधक है और कल्याण का भी मनुष्य को उससे सावधान रहना चाहिए। योगक्षेमं वहाम्यहम् यह रहस्य है। स्पष्ट नहीं है कि ईश्वर किस हद तक जीव के कर्मों की प्ररणा बनता है किस हद तक जीव को हरकतों को संचालित करता है यह बात डंके की चोट पर कहना मुश्किल है क्योंकि अव्यक्त का रहस्य अव्यक्त ही जानता है लेकिन एक बात जो अनुभव सिद्ध है जो ऋषियों ने सन्तों-भक्तों और योगियों ने अनुभव की है वह यह है कि जिस अंश तक हम अपने को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हैं उस अंश तक वह हमारा चार्ज ले लेता है और हमारा योगक्षेम भी वहन करता है। वह हमको सत्कर्मों को करने को प्रेरणा भी देगा। इन प्रेरणाओं के अनुसार कर्म करने की क्षमता भी देगा और उसका फल भी जुटा देगा। ईश्वर कन्डक्टर (Conductor Gurad) बन जाता है, युक्तात्मा जीव एअरकन्डीशन्ड कोच का पैसेन्जर।

कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त विभूतियों का पुनः विश्व सेवा में प्रयोग

सत्प्रयासों के फलस्वरूप तुम्हारे पास विश्वात्मा की विभूतियाँ आने लगेंगी। तुम अनायास अनजाने ही सफलता, यश, शक्ति और तेज व ज्ञान से मंडित होने लगोगे। विश्वात्मा के द्वारा की गई इन विभूतियों की वर्षा तुम्हें नत मस्तक होकर नम्र भाव से ग्रहण करनी होंगी। सत्प्रयासों से प्राप्त विभूतियाँ अब तुम्हारी कैपिटल या पूंजी बन जायेंगी। इन विभूतियों को फिर विश्वात्मा के सृष्टि कर्म में लगाओगे (Invest.) करोगे। सृष्टि को अधिक रम्य और समुन्नत बनाने के महान्

व्यापार में तुम्हें प्राप्त विभूतियों की पूँजी लगानी चाहिये जैसे एक उद्योगपति व्यापार करके जो मुनाफे में प्राप्त करता है उसे पूँजी के रूप में फिर प्रयुक्त करता है और व्यापार को बढ़ाता है। उसी प्रकार मनुष्य जब विश्व की (सृष्टि की) सेवा में संलग्न होता है तब उसके पास विश्वात्मा की अनन्त विभूतियों में से चुनी हुई विभूतियां, धन, यश, शक्ति, सामर्थ्य, ज्ञान आदि उपस्थित होने लगती है यदि मनुष्य इन विभूतियों को अपने पास समेटकर कंजूस की तरह न रखे बल्कि उनका प्रयोग और अधिक विश्व कर्म में जन कल्याण करने में लगता है तो फिर उन विभूतियों का व्यापार की पूँजी की तरह दूर दूर तक विस्तार होने लगता है और विश्वात्मा की तरफ से फिर और अधिक विभूतियों की वर्षा उस व्यक्ति पर होने लगती हैं। ईश्वर की दी हुई व सत्कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त विभूतियों को कंजूस के धन की तरह समेटना ठीक नहीं है अपितु एक बुद्धिमान उद्योगपति की तरह पुनः और अधिक कल्याण में लगाना श्रेयस्कर है। जीव से विश्वात्मा और विश्वात्मा से जीव तक, तब विभूतियों का प्रसार होने लगता है।

———

यज्ञ

(यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते)

यज्ञ-अधियज्ञ यज्ञशिष्टामृत

अभी तक मैं जो कुछ कह चुका वह विश्व-मानव के प्रति कहा गया है। चाहे वह किसी भूखण्ड का क्यों न हो। चाहे वह अपने को किसी भी सम्प्रदाय विशेष का क्यों न समझता हो, उसकी धार्मिक मान्यतायें कुछ भी क्यों न हों।

'यज्ञ' के बारे में मुझे इसलिये बोलने की प्रेरणा हो रही है क्योंकि मेरे मन्तव्य को न समझकर बहुत से लोग आग में घी की आहुति डालकर हवन करने को ही यज्ञ समझ बैठे हैं। कभी-कभी सुन रहा हूँ कोई महात्मा जी 'शतलक्ष चन्डी कर रहे हैं जिसमें मन्त्र पढ़कर १ करोड़ की आहुतियाँ अग्नि में डाली जा रही हैं। कभी-कभी सुनता हूँ वर्षा कराने के लिये हवन किये जा रहे हैं उससे वर्षा होगी। समय और शक्ति का दुरुपयोग (What a waste of time and energy) सोचने की बात है आग में घी की आहुति देने से वर्षा कैसे होगी। वर्षा तो सृष्टि के क्रम में प्रकृति की शक्ति से किया गया एक प्राकृतिक क्रिया-कलाप है इसका भला क्या सम्बन्ध है हवन से ? घी जो कि एक खाद्य पदार्थ है जिसे कि हम भूखे कमज़ोर व्यक्तियों को, बच्चों को खिलाकर उनका पालन और स्वास्थ्य वर्धन कर सकते हैं उस घी को आग में डालकर हम किस यज्ञ का सम्पादन कर सकते हैं वह यज्ञ कैसा है और भला आप लोग उसे क्या समझ बैठे हैं।

यज्ञ

यज्ञ की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि

जिन लोगों ने मेरे कृष्ण जीवन की घटनायें सुनी हैं उन्हें मालूम है कि ब्रज में मैंने इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये जो यज्ञ होता था उसे करने से अपने पिता को

रोका था। वह परम्परा ही गलत थी कि किसी अदृष्ट देवता को प्रसन्न करने के लिये हम सैकड़ों मन गल्ला और घी आग में झोंक दें जब कि हमारी बुद्धि हमारी मेधा (Intelligence) यह कहती है कि हम उस सैकड़ों मन गल्ले और घी से काफी मात्रा में खाद्य पदार्थ बनाकर उनसे दृष्ट देवों का मानवों और पशुओं का तर्पण (तृप्ति) कर सकते हैं उन्हें खिला पिलाकर आनन्दित और स्वस्थ बना सकते हैं क्योंकि खाद्य पदार्थों का सही उपयोग उन्हें खिलाने-पिलाने में है न कि इतनी मेहनत से प्राप्त घी और अन्न को अग्नि में फूंक देना। हाँ यह मैं अवश्य मानता हूं यह खिलाना-पिलाना ईश्वरार्पित बुद्धि से समूह के कल्याण के लिये हो इसी विचारधारा से प्रेरित होकर मैंने नन्द बाबा का वह हवन वाला यज्ञ बन्द कराया था और उसी घी और अन्न से खाद्य-सामग्रियाँ बनवाकर गोवर्धन पर बढ़िया एक बड़ा भोज दे डाला जिसमें बच्चों ने, बूढ़ों ने, नारियों ने, युवकों ने और गांवों व पशुओं ने खूब जमकर भाग लिया, खा-पीकर खूब खेले, कूदे, नाचे, गाये। सामूहिक उल्लास में डूब गये। आप लोग इस कहानी को अच्छी तरह जानते हैं। मैं हमेशा यह कहता आया हूं कि आर्यों में होने वाले हवन कर्म को यज्ञ-कर्म नहीं समझा जा सकता। साथ ही मैं यह भी कहता आया हूँ कि ऐसे खाद्य सामग्री का अपव्यय करने वाले (wasteful) यज्ञों से जिनमें व्यर्थ ही खाद्य सामग्रियां अग्नि को अर्पित कर दी जाती है उनसे ज्ञान यज्ञ कहीं श्रेष्ठ है-ज्ञान पूर्वक मानव प्रयत्नों में भाग लेना "श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञान-यज्ञः परंतप, सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।

हवन-यज्ञ

हवन हमें उस युग की याद दिलाते हैं जब आदि काल में आर्य जातियां भारत में व इधर-उधर बसने का प्रयत्न कर रही थीं बल्कि कबीले के कबीले अपने पालतू पशुओं को लेकर चरागाहों और पानी की खोज में एक जगह से दूसरी जगह जाया करते थे। बड़ा सामूहिक जीवन था मनुष्य का। झुण्ड में रहने में ही उसकी सुरक्षा थी। शिकार, मृगया होती थी। तगड़े युवक हिरन, भैंसें, जगली घोड़ों आदि का शिकार करके लाते थे—शाम को बड़ी भारी अग्नि जलाई जाती थी—चारों तरफ से इष्ट मित्र, कबीले के सदस्य इकट्ठे होते थे, जश्न मनाया जाता था, अग्नि जलाने से वनैले जानवरों से सुरक्षा होती थी और प्रकाश मिलता था, सब मिलकर आखेट के पशु को अग्नि को अर्पित कर भूनते थे। बड़ा आनन्द आता था फिर जब यह पशु (यज्ञ-पशु) खूब भुन लेता था तब बड़े छोटे के हिसाब से उसके टुकड़े किये जाते थे, सम्मानित वयोवृद्ध सदस्यों को श्रेष्ठ भाग मिलता था, आखेट करने वाले वीरों को भी काफी अच्छा भाग मिलता था नारियों और बच्चों का विशेष

ख्याल रखा जाता था। इस प्रकार सामूहिक भोजन-यज्ञ पूरा किया जाता था फिर सामूहिक नृत्यगीत आदि मनोरंजन होते थे। नृत्यगीत कर लोग सामूहिक उल्लास में भाग लेते थे। इस प्रकार आदि काल में हवन-यज्ञ सामूहिक जीवन के उल्लास की अभिव्यक्ति बन गया था। आखेट किये हुये पशुओं के बलिकर्म से सारी जाति जो अपने को किसी देवता से कम नहीं समझती थी तृप्त होती थी। यह है हवन कर्म की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि। भुनने वाला पशु काफी बड़ा और कई लोगों के खाने योग्य होने के कारण कायदे से यथा योग्य बाँटा जाता था यही यज्ञ भाग हुआ।

बाद में बुद्धि का विकास होने के कारण और अदृष्ट महाशक्ति का आभास होने के कारण सब कुछ अदृष्ट देवों को आवाहन कर उनका भोग लगाकर खाया-पिया जाने लगा। समझा यह जाता था इस प्रकार हमें अधिक बल और तेज मिलेगा। यह उस जमाने की वाते हैं जब जीवन (Life) Pastoral था। मानव में कृषि का विकास होने के पश्चत् परिस्थितियाँ वदल गई। मनुष्य आखेट के स्थान पर खेती अधिक करने लगा। खेती से जो अन्न जैसे गेहूं आदि पैदा होते हैं वे पशुओं की तरह आग पर रखकर तैयार नहीं किये जा सकते। सिवाय भुट्टे के जो भूना जाता है। मनुष्य गाय के दूध से मक्खन घी, दही आदि बनाना भी सीख गया था। अत: पुरानी परम्परा के पालन में लोग उसी तरह पशुओं की जगह अन्नों को स्थानापन्न (Substitute) कर उसी प्रकार हवन-कर्म करने लगे। लेकिन जो सामूहिक उल्लास पशु-यज्ञों में था वह इन अन्न-यज्ञों में न मिला इसी से ऋषियों में विवाद भी हुआ कि पशु यज्ञ होना चाहिये या अन्नमय यज्ञ पुराने यज्ञों की परम्परा का निर्वाह मात्र रह गये इनमें व्यर्थ का झमेला और खाद्य पदार्थों का अनावश्यक अपव्यय था क्योंकि अग्नि में बलि किया हुआ पशु तो समूह या कबीले के खाने के काम में आता था। अग्नि में डाला हुआ घी अथवा जो सिर्फ धुंआ उत्पन्न करके रह जाता था। ऐसे हवन कर्मो को मैंने कभी पसन्द नहीं किया था जिनमें अन्न नष्ट किया जाता था न ही उन्हें यज्ञ की संज्ञा दी थी। स्पष्ट है मेरे उस जीवन की वह घटना जब मैंने गोकुल में इन्द्र यज्ञ बन्द कराया था।

असली यज्ञ-अधियज्ञ

मैंने यज्ञ क्या है—इस पर एक बार महामुनि व्यास से विचार विमर्श किया था, मेरी उस विचार धारा को उन्होंने गीता में उतारने की कोशिश की जरूर है।

सृष्टि का महान चक्र (Grand design)

समस्त सृष्टि में एक सुव्यवस्थित (Divine mind) या दिव्य चेतना काम कर रही है नियमन कर रही है। सम्पूर्ण सृष्टि अनन्त काल में (अनादि भूत और भविष्य व वर्तमान काल में) एक चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रही है। विराट सृष्टि में निरंतर घठित होने वाली प्राकृतिक हलचलें कोई भी निष्प्रयोजन अकारण और अनियमित नहीं है। Cosmic level पर या विराट् के स्तर पर जो भी घटित हो रही हैं वे किसी प्रयोजन की सिद्धि कर रही हैं। सभी कार्यक्रमों में नियमबद्ध शृंखला है। ठीक वक्त पर दिन का प्रकाश आता है, ठीक वक्त पर रात आती है, रात के अंधेरे के साथ शरीर निद्रालस हो जाता है। अपने वक्त पर बादल आते हैं। पानी बरसता है। अन्न उगता है ओस गिरती है—नदियां बहती हैं आदि यह एक महान चक्र चालू है जिसे मैं सृष्टि कर्म कहता हूं। (Cosmic design of creation),

यह सब कैसे हैं ? क्यों हैं। क्योंकि सृष्टि का संचालन एक विराटोत्तर सत्ता द्वारा हो रहा है।

यह सत्ता (Innert) निष्प्राण नहीं है उस सत्ता की अपनी दिव्य चेतना है अपना मन है, अपनी इच्छा शक्ति है। विराट् चेतना की इच्छा शक्ति को हम डिवाइन विल कह रहे हैं। यह (Divine will) ईश्वरीय संकल्प-शक्ति, सृष्टि का संचालन एक विशेष प्रयोजन से कर रही है। और वह लक्ष्य है-"इस सृष्टि को अच्छी तरह धारण (Maintain) करना। इसका संरक्षण तथा उत्तरोत्तर विकास करना। इसे पहले से अधिकाधिक सुन्दर मनोरम और आनन्द पूर्ण और भव्य बनाना। यह है भगवान का, भागवती चेतना का महान् लक्ष्य (Divine purpose) सृष्टि स्वयं परात्पर की अद्‌भुत निरुपम कृति है। इसलिये वे स्वयं चाहते कि हमारा संरक्षण और विकास हो। उनका सृष्टि-यज्ञ बराबर चल रहा है और वे चाहते हैं उनके जीव पुत्र उसमें भाग लें। भगवान के इस संकल्प को ही मैं मानता हूं। (Divine purpose) और सृष्टि के संरक्षण विकास और उसे रम्यतर बनाने की क्रियाओं में अपने मानव प्रयत्नों का योगदान ही इस यज्ञ की आहुतियाँ है। भगवान की इच्छा शक्ति (divine will) से सृष्टि चालू हुई और चालू है—और इसे सुरक्षित रूप से क्रमशः विकास की ओर ले जाना पहले से अधिक और समुन्नत बनाना यह विराटोत्तर महाशक्ति का प्रयोजन है। मैं इसी प्रयोजन को सृष्टि,यज्ञ कहता आया हूं। और सृष्टि के सर्वांगीण विकास में अपने प्रयत्नों के जुटाने की क्रिया को मनुष्य का यज्ञ कर्म मानता हूँ।

सृष्टि कर्म

विराट् के स्तर पर जो सृष्टि के पालन और संरक्षण की क्रियायें चल रही हैं वे ब्रह्माण्डीय (Cosmic) हैं। बादलों का आना, सूरज निकलना, नदियों का समुद्र की ओर बहना, गर्मी से पानी की भाप बनना, मानसूनों का पर्वतों से टकराना, पृथ्वी के गर्भ में पेड़ बीजों का स्फुटित होकर पौधों के रूप में विकसित होना। ये सब विश्व प्रकृति की क्रियायें (cosmic achives) हैं। विराट् के कार्यों की नियामक विराटोत्तर महाशक्ति की इच्छा शक्ति है। यह ईश्वरीय इच्छाशक्ति (divine will) ही प्रकृति के क्रिया कलापों को कन्ट्रोल (control) करती है। इसी से उनमें एक क्रमबद्ध शृंखला नजर आती है। भागवती चेतना के आदेश से ही जलाशयों, समुद्रों और नदियों से पानी खींचा जाता है—भाप बनती है फिर बादल बन बनते हैं—वह बरस कर पृथ्वी की ओर लौटता है—खेतों में फसलों को पानी मिलता है, अन्न उत्पन्न होता है। भूत जगत् का पालन होता है। यह सब विराट् प्रकृति (cosmic level) की क्रियायें हैं, विराट् (phenominon) के कार्य हैं। भूत जगत् के पालन के लिए विराट् की त्रियायें हैं, जो भागवतो इच्छा शक्ति से हो रही ह और सृष्टि के महाचक्र (Grand design of creation) को गतिवान कर रही हैं। प्रकृति चारों ओर बिखरी हुई है। हम उस प्रकृति के नियमों को खोजकर नई प्रकृति का निर्माण कर रहे हैं। वैज्ञानिक यही कर रहे हैं। तत्व दिये हैं प्रकृति में, ज्ञान दिया है मस्तिष्क (Brain) में या दोनों के समन्वय से Technology चलती है। वैज्ञानिक मानवता के दिमाग या मस्तिष्क हैं।

विराट् सृष्टि—यज्ञ

"भूतभावोद्भव करो विसर्गः कर्म संज्ञिता"

भूत जगत् के पालन के लिये विराट् के स्तर पर जो cosmic क्रियायें हो रही हैं - सृष्टि की प्राकृतिक क्रियाएँ व हलचलें, वे सृष्टि के संरक्षण और विकास के लिये हो रही हैं। इन्हें मैंने विसर्ग का नाम दिया है। महामुनि ने गीता में मेरे इस कथन की ओर संकेत किया है कि विसर्ग (creation) ही कर्म (cosmic activity) है। आप अपनी गीता की पुस्तक को खोलकर पढ़िये—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञ, कर्म समुद्भवः

कर्म ब्रह्मोद्‌भवम् विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्‌भवः
तस्माद् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्"

अन्न से प्राणियों का शरीर बनता है और अन्न की फसलें बादलों से उत्पन्न हैं, बादल यज्ञ से उत्पन्न है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न है।

यहाँ स्पष्टतया मैं बता रहा हूँ जिस यज्ञ से बादल उत्पन्न हो रहे हैं वह आपके आग और घी के धुएँ वाला हवन यज्ञ नहीं है, विश्व में होने वाली तमाम प्राकृतिक हलचलें व क्रियाएँ परमेश्वर (अव्यक्त) की उस इच्छा को पूर्ण करने के लिये हो रही हैं जिसके द्वारा वे निरन्तर सृष्टि के संरक्षण और विकास कर रहे हैं। यह ईश्वरीय प्रयोजन (divine purpose) ही यज्ञ है, सृष्टि को सम्पूर्ण बनाने वाली सृष्टि का संरक्षण और विकास करने वाली विराट् की क्रियाएँ इसी यज्ञ को पूरा करने के लिये हैं। इस तरह विराट् की प्राकृतिक क्रियाएँ (cosmic activit-ies) इसी यज्ञ को feed करने के लिए, पूर्ण करने के लिए हो रही हैं। बादलों का बनना, यथा समय बरसना आदि विश्व प्रकृति की (cosmic activities), क्रियाएँ हैं जो सृष्टि के संरक्षण के लिए हो रही हैं क्योंकि ऐसा ही भगवान का प्रयोजन है इस तरह सारी ही Cosmic activities का मूल कारण अव्यक्त अक्षर परात्पर ब्रह्म की इच्छा या संकल्प (divine will) है जो नियमित तरीके से इस सृष्टि चक्र को चला रही है। इस तरह यज्ञ का मूल अव्यक्त अक्षर ब्रह्म में है—हमें इस चक्र को समझना होगा। हमारे चारों ओर एक अनादि विराट् सृष्टिचक्र है (Grand design of the universe) हम स्वयं इसके एक भाग हैं, एक इकाई हैं। यह चक्र अनादि भूत काल से अनादि भविष्य तक चलता रहेगा। ईश्वर की इच्छा (Divine will) इसका संचालन कर रही है (वही अधियज्ञ यज्ञ की अधिष्ठाता है) इस सृष्टि का समुचित संरक्षण और उत्तरोत्तर विकास इसे सुन्दर से सुन्दरतर, दिव्य से दिव्य-तर, मनोरम से मनोरमतर बनाने का महा प्रयास चल रहा है। यही सृष्टि कर्ता का महान यज्ञ है।

मानवीय यज्ञ

इस हिसाब से सृष्टि कर्त्ता के इस महान् प्रयोजन में, यज्ञ में, सृष्टि कर्म में अपना योगदान देना ही मानवीय यज्ञ है। चाहे यह सृष्टि चक्र कितना ही विराट्, कितना ही विशाल क्यों न हो और चाहे हमारा प्रयास कितना ही छोटा, नन्हा क्यों न हो लेकिन इस तरह सृष्टि नियन्ता महासत्ता के यज्ञ कुण्ड में हमारे प्रयत्नों की भी एक छोटी सी आहुति पड़ जायेगी। यही हमारा यज्ञ होगा।

अपने तात्कालिक परिवेश में हम छोटे से छोटा कार्य कर सकते हैं । हम एक बालक को पढ़ा सकते हैं, सामने एक खेत में पेड़ लगा सकते हैं चाहे लोगों का दिल-खुश करने वाला एक चुटकला ही सुना दें । यह सब यज्ञ कर्म होगा । एक नर्स. एक शिक्षक, एक माली, एक शिल्पकार, एक डाक्टर, एक वैज्ञानिक, सभी यज्ञ कर्म में लगे हुए हैं अपने चारों ओर फैली सृष्टि को सजाने संवारने, श्रेष्ठतर बनाने के लिए किए गए सभी सत्कार्य यज्ञ हैं ।

क्योंकि वे महासत्ता की इच्छा का (Divine will) का अनुसरण कर रहे हैं क्योंकि उन से सृष्टि सज संवर रही हैं ।

"ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं"

विराट् विश्व के स्तर पर (Cosmic level) जो विश्व प्रकृति की गति-विधियां हो रही हैं, बादल बन रहे हैं, वर्षा हो रही है, मौसम बदल रहे हैं, पृथ्वी घूम रही है, सूर्य किरणें धरातल को स्पर्श कर रही हैं यह सब किसलिए ? ताकि यह सृष्टि खिले, फले, फूले, विकसित हो, मनोरम हो, और अच्छी हो । जीव और भी आनन्द में रहें । यहां तक कि मृत्यु और (Destruction) विनाश की भी जो क्रियाऐं सृष्टि में दिखाई दे रही हैं वे भी (Weeding) घास पात मोथा आदि हटाने की क्रियायें हो रही हैं जिनके द्वारा प्रकृति चिरनूतन, चिर-युवा बनी रहती हैं ।

सृष्टि नियंता महासत्ता के इस विशिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में हम भी अपना योगदान दें, अपनी सीमित जीव चेतना को विश्वात्मिकता चेतना में लय कर दें— हमारी जीव चेतना, क्षुद्र अहंकार की सीमाओं को तोड़कर विराट् की सेवा में लग जाए, बिराट महाशक्ति की इच्छाओं का अनुसरण करे—हम भगवान के दैवी संकल्प से अनुप्राणित होकर सृष्टि कर्म में अपना योगदान दें—महान् सृष्टि यज्ञ निरंतर चल रहा है । हम अपने कर्मो कीं आहुति इस यज्ञ में दें, यही वह यज्ञ है जिसके बारे में मैंने कहा था, ब्रह्म की आहुति ब्रह्म के लिए ब्रह्म की अग्नि में अर्पित है । इस प्रकार कर्म करने पर हमारी जीव चेतना (Personal ego, (univeral consciousness) विश्वात्मा में लय हो जायेगी । यही बात मैंने बताई थी कि यज्ञ के लिये कर्म करने पर संस्कारों की विषाक्त श्रृंखला तड़ाक से टूट जाती है और वह विश्व चेतना से एकाकार हो जायेंगे । विश्वात्मा में हमारी जीव चेतना का लय होना ही ब्रह्म कर्म समाधि है । जिसे ब्रह्म कर्म करनेवाला पाता है–इसी स्थिति को प्राप्त करने पर कर्म सम्पूर्ण रूप से विश्वात्मिका सत्ता में लय हो जाता है—मनुष्य मुक्त हो जाता

है, व्यापक विश्व चेतना से एकाकार हो वह कृत कृत्य अनुभव करता है। इसीलिये मैंने कहा था—

'यज्ञायाचरत: कर्मसमग्रं प्रविलीयते"
संस्कारों की श्रृंखला समाप्त हो जायेगी।

रामकाज

"देवान् भाव यतानेन ते देवा: भावयन्तु व:
परस्पर भावयन्त: श्रेय: परमाप्स्यथ।"

वह यज्ञ हैं अपने चारों ओर के संसार को पहले से अधिक सुदर और विकसित बनने का।

हमारा जन्म इसी रामकाज के लिये हुआ है। विराट् महाशक्ति ने जो सृष्टि यज्ञ चालू कर रखा है—हम इसमें अपने को, अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं और चेतना के साथ झोंक दे—अपनी ही आहुति दे दें—अपने को भागवती संकल्प की धारा में बहा दें और तब एक करिश्मा होगा।

"देवान् भावयत अनेन ते देवा भावयन्तु व:
परस्परं भावयन्त: श्रेय परमाप्स्यथ।"

जब हम सृष्टि को सजाने, संवारने, विकसित करने के इस दैवी कार्य में अपने को दिलोजान से (Whole hearted by) लगा देंगे तो एक करिश्मा होगा—

"राम काज लगि तव अवतारा, सुनतेहि भयहु पर्वताकारा।"

वह जो महाशक्ति है वह स्वत: हमारे अन्दर दैवी लक्ष्यों की पूर्ति के लिये उतरने लगेगी। हमें चारों ओर से शक्ति मिलेगी, प्रेरणायें मिलेंगी। अदृष्ट दैवी शक्तियां हमें वरदानों से मंण्डित करने लगेगीं।

यही बात उस काल में मैंने समझाई थी—"तुम सत्कार्यों से विश्व-नियन्ता परात्पर प्रभु का भजन करो इससे देवगण प्रसन्न होंगे। देवगण हैं—विश्व का शासन नियमन करनेवाली अदृष्ट शक्तियां—वे प्रसन्न होकर तुम्हारे पास प्रत्युत्तर में शक्ति

की, सामर्थ्य की, क्षमता की तरंगे भेजेंगे। तुम्हें वरदानों से, विभूतियों से मण्डित करेंगे।

यह विचार आप गीता के श्लोक में पढ़ सकते हैं—

"देवान् भाव यतानेन ते देवा: भावयन्त: व:
परस्परं भावयन्त: श्रेय परमास्यथ।"

मनुष्य अपने प्रयासों द्वारा भगवान के सृष्टि में योगदान करेगा, और प्रसन्न हुई देव शक्तियां उसके ऊपर विभूतियों और शक्तियों की वर्षा करेगी। जो व्यक्ति गुम सुम सा वैठा रहता है—वीमार सा रहता था, वह भी दैवी यज्ञ में भाग लेने पर दैवी शक्तियों से मण्डित हो उठता है, पर्वत, महासागर और अन्तरिक्ष लांघ जाता है। उसकी शक्तियों का ओर छोर न दिखेगा। मन प्रसन्न, तन तेज विराजा वाली हालत हो जायेगी। भगवान उस साधारण से मानव पुतले से (Robot) बड़े से बड़ा काम करवा लेगे और वह सफलता-पूर्वक उनको करता चलेगा। यह सफलता उसको तभी प्राप्त होगी जब वह अपना दृष्टिकोण (Attitude of mind) वदलेगा, लक्ष्य स्थिर करेगा। सृष्टि की इस महान् ईश्वरीय योजना में (Grand design) में अपनी स्थिति को समझेगा और योगयुक्त होकर अपना योगदान सृष्टि-कर्म में देगा। तब उसकी कर्म-परम्परा विराट् की कर्म-परम्परा में लय हो जायेगी। पुनर्जन्म और कर्म श्रृंखला बनाने का तब सवाल ही नहीं उठेगा।

"यज्ञाय आचरत: कर्म समग्रं प्रविलीयते"

वह अपने विहित सहज कर्म करेगा। बड़ी प्रसन्नता से बड़े से बड़े कार्य (Highest acts) करेगा। पर अपने व्यक्तिगत अहकार (Personal ege)को (Feed) पुष्ट करने के लिए नहीं अपितु महासत्ता के सृष्टिकर्म में योगदान देने के लिए।

बड़े से बड़ा कार्य करते समय भी मन में दृष्टिकोण (Attitude) सन्यास का रखा जाय—हम अपने सामर्थ्य से अपने सीमित स्वार्थों की पूर्ति के लिए कुछ नहीं कर रहे हैं वलिक हमसे जो कुछ बन रहा है—वह भगवान् हमसे करा रहे हैं, अपनी सृष्टि को सुन्दर, श्रेष्ठतर भव्यतर बनाने के लिए हमारी (Will) इच्छा शक्ति उनकी इच्छा शक्ति की अंश है, हमारी चेतना असीम चेतना का एक अंश है। हम भागवती संकल्प (सृष्टि-संरक्षण विकास) को पूर्ण करने के एक यन्त्र हैं। इच्छा हमारी नहीं उस महासत्ता की पूरी होगी।

यह दृष्टिकोण रखकर कार्य करने पर कर्मों में सफलता तथा कार्य करते समय मानसिक-शान्ति और आनन्द प्राप्त होगा। यह आनन्द ही ब्रह्म कर्म-समाधि

है। कर्मों में कोशल उत्पन्न होगा, करिश्मा पैदा होगा—अनेकों अपौरुषेय कार्य एक हाड़ माँस के पुतले से सम्पादित होंगे। दैवी शक्तियों के नए अचिन्त्य क्षितिज खुलेंगे। मनुष्य के मन की एक नई व्यवस्था आरम्भ होगी जिसे मैंने योगयुक्त—युक्तात्मा का नाम दिया है—एक बात और उल्लेखनीय है—

'यज्ञ शिष्टा-मृत भुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्"

भगवान के इस दैवी सृष्टि-कर्म में भाग लेने पर अदृष्ट शक्तियां जीव को दैवी वरदानों से मण्डित करने लगती हैं—जीव के ऊपर अनेकों विभूतियों की वर्षा होने लगती है। चारों ओर से वैभव, शक्ति, सफलता, यश और अपार क्षमताएें उसके ऊपर बरसने लगती हैं।

सृष्टि-यज्ञ में लगे हुए मानव को चाहिए कि अदृष्ट शक्तियों से प्राप्त इन विभूतियों को दूर दूर तक बिखेरे, फैलाये। बिराट् (विश्वात्मा) से प्राप्त विभूतियां उसे बिराट् विश्व) की ही सेवा में लगा देनी चाहिये। विराट् से विश्वात्मा जीव को और जीव से फिर विराट् (विश्वात्मा) को और फिर विराट् (विश्वात्मा) से जीव को इस प्रकार विभूतियों का यह अक्षय क्रम चलने लगता है।

सृष्टि कार्यों में लगे रहने पर जब आपके पास धन आने लगे—आप उस धन को फिर विराट् के, समष्टि के महत् कार्यों में लगा दीजिये—विराट् आपको ठीक रास्ते पर जाते देखकर फिर अपनी विभूति की वर्षा करेगा। अच्छे कार्यों के लिये आप को धन की कमी पड़ ही नहीं सकती। विश्वात्मा अगर आपके ऊपर क्षमताओं की बर्षा करता है तो आप उन क्षमताओं का भरपूर प्रयोग विराट् प्राणी समुदाय के हित में कर दीजिये। ख्याल रहे शक्ति की एक बूंद भी व्यर्थ न जाय, सब कुछ विराट् जगत् के थिये खप जाय।

इस प्रकार विराट् महासत्ता की दी हुई शक्ति या विभूतियां विराट् (विश्व) को अर्पित करने पर अक्षय हो जाती हैं कभी चुकती नहीं हैं—विराट् (विश्वात्मा) से एक को, एक से विराट् (विश्व) को यह क्रम चलता रहता है। यही यज्ञ-शिष्ट-अमृत है—विराट् महासत्ता की दी हुई विभूतियों को विराट् (विश्व) ही को ही अर्पित कर देना। मेरे ख्याल से आपकी आधुनिक भाषा में यही समाजवाद भी है।

समाधि-योग (ब्रह्म संस्पर्श)

A Touch of the Divine.

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति
सम: सर्वेषु भूतेषु मदभक्ति लभते पराम् ।।
प्रशान्त मनसं-ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्
उपैति शान्त रजस ब्रह्मभूतमअकल्मषम् ।।
सुखमात्यन्तिकं यत तद् बुद्धिग्राह्यं अतीन्द्रियं
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वत: ।।

समाधि के नाम पर बहुत सी गलत धारणायें फैल रही हैं । एक तमाशा सा बना रखा है समाधि के नाम पर, मानों कोई मदारी नाच नचा रहा है और बहुत से बन्दर झूम झूम कर मुड़िया हिला रहे हैं और कह रहे हैं वाह क्या सुख है—क्या आनन्द है—क्या समाधि है ।

कुछ लोग धरती में गड़े रहने का असम्भव प्रयास कर रहे हैं उनके अनुयायी (followers) हजारों की संख्या में इकट्ठे होकर इस महान् समाधि को देख रहे हैं योग-शक्ति के इस महान् चमत्कार को देखकर बौखला रहे हैं । जमीन में गड़े हुए मृतप्राय योगी जी को देखने के लिए जनता भागी चली आ रही है । Medical दृष्टि से Animated suspension of life एक अवस्था है, इस अवस्था को प्राप्त करके मालूम नहीं योगी जी क्या प्राप्त कर लेते हैं, क्या प्राप्त करने की उम्मीद रखते हैं । मेढ़क और साँप भी वर्फीले प्रदेशों में वर्षों तक बर्फ में दबे पड़े रहते हैं उनकी शारीरिक प्रक्रियायें सुस्त होकर बिल्कुल सुन्न पड़ जाती है—ऐसे मेढ़क को अगर निकाला जाय तो बिल्कुल निष्प्राण सा निकलता है बाद में गर्मी पाकर धीरे-धीरे चैतन्य हो जाता है । यह एक प्रकृति का तरीका है·········अगर आदमी इसी

अवस्था को लक्ष्य मानकर इसे प्राप्त करने के लिये प्रयास करने लगे तो इससे फायदा क्या होगा।

यह शरीर को सुन्न करके उसे सुरक्षित रखने का प्रयास है (At best it will a conservation of fridged body so what) इससे मनुष्य की मानसिक स्थिति में कौन सा कल्याणकारी परिवर्तन आ जायेगा। क्या यह समाधि स्पृहणीय है।

कुछ ऋषिगण एक अन्य दुराशा में फँसकर (Unproductive) बेकार के प्रयासों में लगे हुए हैं। सांस रोकते हैं, छोड़ते हैं, साँस छोड़ते हैं, रोकते हैं········ साँस को प्राण शक्ति समझते हैं साँस को जबरन रोकने से समझते हैं प्राण रुक जायेगा, प्राण रोकने से मन की गति रुक जायेगी। मैं समझ नहीं पाता हूँ इस हठ-योग से आखिर वे क्या लाभ प्राप्त कर रहे हैं। सांस तो स्वत: ही विश्वात्मा के आदेश से विश्व से, प्राण-शक्ति को आपके अन्दर ले जा रही है, आपके अन्दर के अवयवों को प्रतिक्षण नव जीवन दे रही है। साँस को भीतर रोककर प्राण-शक्ति का कोटा आप बढ़ा नहीं लेंगे और साँस लेना बन्द कर आप अपने भीतर के कोषाणुओं को आक्सीजन से वंचित कर कोई बढ़िया काम नहीं कर रहे हैं। इससे तो आप बहुत शीघ्र थकान का अनुभव करने लगेंगे। साँस को भीतर रोकना अथवा बाहर रोकना इन उपायों से मनुष्य विश्व की प्राण शक्ति को अपने कब्जे में कर नहीं सकता—नहीं इससे वह किसीं प्रकार की दिव्यता ही अनुभूति कर सकता है। यह व्यर्थ की उठक बैठक है। यह समाधि प्राप्त करने का गलत तरीका है।

कुछ लोग योग सूत्रों को पढ़कर "योगः चित्त वृत्ति निरोधः" का सूत्र रटकर अपनी मानसिक वृत्तियों को रोकने, निश्चल बनाने के चक्कर में रहते हैं। कुछ मत सोचो, कुछ मत करो- कोई सांस पर ध्यान लगाकर अपने मन की हलचलों को रोकने का प्रयास कर रहा है- तो कोई महानुभाव वैराग्य के द्वारा चित्त प्रवृत्तियों की जड़ें काटने में लगे हुए हैं। अफसोस तो तब होता है जब अच्छी मानसिक शक्तियों और अच्छे दिमाग वाले व्यक्तियों को भी इन उलझे हुए तरीकों में फँसकर अपने को विचार शून्य, भावना सून्य और लक्ष्य शून्य बनते हुए भी देखता हूं। नहीं तो (otherwise) जो व्यक्ति संसार के लिए कल्याणकारी कार्यों और विचारों का स्रोत बन सकता है वह जब इन निरर्थक प्रक्रियाओं में फँसकर अपने दिमाग को ऊसर (Barren) बनाता है और बिश्व के लिए निरर्थक बन जाता तो सचमुच अफसोस होता है। मन को निस्तब्ध करने की इन जटिल प्रक्रियाओं द्वारा सिवाय

एक प्रकार की शून्यता या जड़ता सी दिलो-दिमाग के ऊपर छा जाती है और कुछ हासिल नहीं होता और उससे भला मानव का और समाज का क्या लाभ होता है। कम से कम यह प्रक्रिया वह समाधि नहीं है जिसका जिक्र मेरी गीता में किया गया है। क्लोरोफार्म सूंघने के बाद भी तो Nerves स्नायुओं के सुन्न हो जाने पर एक प्रकार की जड़ता और वेहोशी छा जाती है तो क्या हम उसे समाधि कहें-दिव्य अनुभूति कहें !

कुछ आधुनिक योगियों ने बड़ा भारी वाग्जाल रचकर Transcedn cintal meditation का विराट महल खड़ा किया है वे कहते हैं- किसी भी नाम या मन्त्र का शाब्दिक चिन्तन करते करते धीरे धोरे वह आवृत्ति की लहर भी शान्त हो जाती है- और शुद्ध चेतन अवस्था रह जाती है-मैं मानता हूं चेतना के एकीकरण में चित्त की एकाग्र अवस्था लाने में यह प्रक्रिया सहायता करेगी लेकिन इसके बाद फिर क्या होगा...चित्त की एकाग्र अवस्था आने के बाद हमें क्या करना चाहिए यह भी तो एक प्रश्न है-अगर मन्त्र योग को ही हम अपना आधार बनाते हैं तो मन्त्र के अर्थ का चिन्तन किये बिना किस प्रकार हम उस लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं जिस पर मन्त्र पहुंचाना चाहता है। अगर मन्त्र एक रेलगाड़ी है और मनुष्य की आत्मा सवार है तो मन्त्र का अर्थ वह डिब्बा (Compartment) है जिसमें बैठकर मनुष्य तीर की तरह अपनी मंजिल Destination की ओर पहुंच सकता है। निरर्थक नामों की आवृत्ति एक उबा देने वाली प्रणाली है। मनुष्य की आत्मा के आरोहण का सोपान नहीं बन सकती। कुछ लोग अपने से अधिक प्रबल मनोबल वाले व्यक्तियों के विचारों के प्रबल प्रक्षेपण से आक्रान्त हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में वह अपनी सुध बुध खो बैठता है, मन उसका शिथिल और सुन्न होकर दूसरे के आक्रामक व्यक्तित्व का अन्ध अनुसरण करने लगता है। आज की भाषा में इसे (Hypnosis) सम्मोहन कहते हैं। हिप्नोटाइजर Hypnotiser Hypnotised को suggestions आदेश देकर जो चाहे (scene) दृश्य आदि दिखा सकता है सम्मोहित व्यक्ति अपने मन की रही सही शक्ति गँवाकर सम्मोहक के पीछे पीछे फिरता है, लोग समझते हैं कि वह समाधि में है। इस तरह मनुष्य जब अपने होश हवास गवांकर दूसरे के संकेतों पर अपने मन को छोड़ देता है तब वह क्या करेगा क्या पायेगा यह अनिश्चित हो जाता है।

कुंडलिनी जागरण

हर जीव को प्राण चेतना का एक निश्चित कोटा (Quota) मिलता है यह चेतना जिसमें प्राणशक्ति भी मिलती है (consciousness व vitalty) जीव

के जीवन को धारण करने के लिए शरीर के अन्दर जो, स्नायुजाल है (nerves) है उनके अन्दर बहती है। जीव-चेतना विश्व चेतना का एक अंश होती है। विश्वात्मा विश्व चेतना में से कुछ अंश (Part) जीव के जीवन धारण (Sustenance) के लिए (Allot) करता है। चेतना शक्ति जीव की देह में स्नायुओं में (Nerves) बहती है। प्राणशक्ति शरीर के अणु-परमाणुओं तक पहुंचती है। बिजली के उदाहरण से समझिये आप के घर में जो बल्ब जल रहे हैं, पंखे चल रहे हैं हीटर जल रहे हैं और कूलर चल रहे हैं, उनमें बिजली कहां से प्रवाहित हो रही है– आपने देखा होगा उनमें बिजली आ रही है-उन तारों में जो आपके पूरे घर में लकड़ी के ऊपर लगे हुए हैं। ये तार खम्भों पर चढ़कर बाहर की ओर जा रहे हैं–पावर हाउस की तरफ। पावर हाउस में बिजली का जैनेरेटर (Generator) लगा हुआ है—बिजली वहां बन रही है, बिजली पावर हाउस (Power House) में बन रही है वहां खम्भों पर लगे हुए तारों पर चलकर घर में प्रवेश करती है घर में लगे वार्यरिंग पर होती हुई बल्वों तक पहुंच रही है। स्विच बोर्ड (Swich (Board) पर कन्ट्रोल (Control) होकर वल्व में आ जा रही है इस तरह वल्व जल रहे हैं अथवा (फैन्स) पंखें चल रहे हैं।

अब इसी चीज को समझिये मानवीय विद्युत के बारे में जिसे हम प्राण-चेतना अथवा आत्मा (Spirit) कह सकते हैं। प्राण-चेतना विश्व चेतना के रूप में जगत् में परिव्याप्त है पर इसका जैनेरेटर (Generator) विश्वात्मा है। विश्वात्मा से निकलती हुई प्राण चेतना अदृष्ट नियमों के अनुसार शरीर मे पहुंचती है शारीरिक ढांचे में हड्डियों के ऊपर स्नायु सूत्र बंधे हैं–(Nerves) तारों की तरह। स्नायु-सूत्रों की इस (Wiring) में या नर्व्स (Nevres) में प्राण चेतता उसी प्रकार प्रवाहित हो रही है जैसे वार्यरिंग में बिजली। इस प्राण चेतना की सबसे मोटी धारा मेरूदण्ड में रखी हुई सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित हो रही है। सुषुम्ना नाड़ी में जो विश्वात्मा से प्राण चेतना आ रही है—वह मस्तिष्क के रास्ते से खिचकर सुषुम्ना के अन्दर बह रही है—बड़ी मोटी धारा है यह—सुषुम्ना से ३१ जोड़े और मस्तिष्क से १२ जोड़े नर्व्स (Nerves) निकलकर सारे शरीर में फैल रहे हे। इन नर्व्स (Nerves) में बाहर की ओर बहती हुई यह शक्ति-जीवन में विविध काय-कलाप कराती है और जीवन में मन के बहिर्मुखी प्रवाह को बनाये रखती है साथ ही विश्वात्मा के आदेश से शरीर का आंतरिक संचालन भी करती है।

कुछ लक्कड़ झक्कड़ टाइप (Type) के लोगों ने एक रास्ता निकाला कि प्राण चेतना का जो बहिर्मुखी प्रवाह वह रहा है उसे उलट दो। यानी सुषुम्ना से

जो प्राण चेतना शरीर के बाहरी (Tips) छोरों की ओर झर रही है उसके प्रवाह को पहले रोक दो फिर अपने आप जब वह बाहर की ओर वह नहीं पायेगी तो आप से आप उसका प्रवाह उलटेगा वह फिर सुषुम्ना के ऊपर से नीचे की ओर न बहकर नीचे से ऊपर की ओर बहेगी। इसका तरीका भी उन्होंने बड़ा नायाब निकाला है। पहले अपने को संसार के क्रिया कलापों से मुक्त करो, उसमें फंसी हुई प्राण धारा मुक्त (Energy release) हुई, फिर आंखें मूदकर संसार की ओर से आँखे फेर लो, और भी (Energy withdraw) होगी प्राण शक्ति लौटेगीं। सांस वेहद धीमें और कम चलेगी तो शक्ति (Energy) और भी कम खर्च होगी। कोई चिन्तन मत करो, मानसिक हलचल में फंसी हुई और प्राण शक्ति मुक्त होगीं। सप्रयास समकाय शिरोग्रीव बैठकर अपने जीवन व्यापार को सुन्न करते हुए इस (Position) में ऐसे आ जाओ कि शरीर व्यापारों में प्राण चेतना प्रयुक्त न होकर सुषुम्ना में स्थित मुख्य (Main) धारा में लौट आये। बाहर की ओर जब कोई कार्य ही न होगा तब चेतना की धारा ही वह कर क्या करेगी। इस तरह शरीर कार्यों से मुक्त हुई प्राण-चेतना को जबरन लौटाकर योगी उसे सुषुम्ना में ऊपर की ओर ठोकर देना चाहते हैं (ठेलना चाहते हैं) प्राण विद्युत का प्रवाह ऊपर की ओर होने पर वह मस्तिष्क की ओर लौट पड़ती है, ऐसी स्थिति में सम्भवत: योगी को मूल चेतना के आनन्दीय रूप का कुछ आभास हो जाता है और वह विचित्र अनुभूतियां करता है—लेकिन मैं एक प्रश्न करता हूं—क्या मनुष्य के आन्तरिक जीव-शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं के साथ छेड़ छाड़ खतरे से बाहर है ? सारे ही संसार और शरीर के भीतरी भागों से प्राण शक्ति का लौट पड़ना क्या सम्भव हैं ? और यदि बहुत सी कोशिशों से ऐसा भी हो जाता है तो क्या कुछ फायदा है। आप अच्छे से अच्छा खाना खा सकते हैं पर यह तो जरूरी नहीं है कि आपका खाना भीतर शरीर में किस तरह और कहां कहां कैसे जमा हो रहा है यह आप देखें और जाने। खाने का रस लिवर (Liver) में बन रहा है या आंतों में इसमें आप टांग अड़ायें (Interfere) हस्तक्षेप करें। यह सब बातें अस्वाभाविक और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध हैं। फिर मान लीजिए शरीर और संसार में झरती हुई प्राण चेतना सुषुम्ना में लौट भी पड़ी तो फिर योगी जी आप क्या करेंगे ? अपनी चेतना के तीर को लेकर आकाश में उड़ जायेंगे ? क्या करेंगे ? २-४ मिनट के बाँध के बाद प्रकृति के अटूट नियमों के अनुसार चेतना फिर नीचे उतरेगी फिर नर्व्स (Nerves) में बहेगी—तब आप क्या करेंगे आप रह जायेंगे ढाक के वहीं तीन पात फिर बच्चू जी इस ऊट पटाँग तरीके से कुण्डिलनी आप के कन्ट्रोल (Control) में आने से रही। आपको पता होना चाहिए आपको जो विश्व-प्राण (Cosmic)

Energy) का कोटा (Quota) दिया गया है वह जीवन-धारण करने के काम के लिए दिया गया है, वहिजगत् की ओर आंख खोलकर देखने के लिए दिया गया है, शरीर यन्त्र की आन्तरिक प्रक्रियाओं को आप के अनजान में ही कायदे से, शान्ति से चलाने के लिए दिया गया है। इस यन्त्र के साथ छेड़ छाड़ कर आप कुछ पायेंगे नहीं बल्कि आप के असन्तुलित (Abnormal) होने का डर है। शरीर को अस्वाभाविक ढंग से तोड़-मरोड़कर किसी मानसिक स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास योग-समाधि नहीं है। न ही यह उच्च फल दे सकता है। शरीर के जैविक व्यापार को अवरुद्ध कर कोई वाँछनीय सुफल प्राप्त हो यह भी निश्चित है।

चेतावनी

यह चेतावनी मैं फिर दोहराता (Repeat) हूं। अगर कोई प्रदर्शनकारी तुम्हें आंखें ऊपर कपाल पर चढ़ाकर, नाक की नोक पर दृष्टि जमाकर, सांस रोक कर जमीन में गड़कर प्रभावित करना चाहे और कहे कि यह समाधि है तो समझ लो कि वह तुम्हें भ्रम में डालने वाला एक बाजीगर है। शरीर की मुद्राओं से समाधि का कोई सम्बन्ध नहीं। समाधि एक मानसिक स्थिति है शारीरिक नहीं। उसके लिए यह कतई जरूरी नहीं है कि मेरुदण्ड सीधा रखा जाय, पद्मासन लगाया जाय, शिर ग्रीवा और काया एक लाइन में खड़ी की जाये। न ही समाधि किन्हीं विशेष क्रियाओं में निहित है सांस रोकने और छोड़ने में अथवा शरीर के किन्ही विशेष स्थानों में समाधि नहीं रहती है। समाधि आधुनिक योगियों के बाजीगरी के लटकों में नहीं है जिन्हें वे मंच (Stage) पर दिखाते फिरते हैं। शरीर की मुद्रायें (Postures) समाधि की अवस्था नहीं ला सकती।

आइए अब इन सब फालतू बातों को झाड़-बुहार कर हम ठण्डे दिल से विचार करें समाधि क्या है ?

समाधि

समाधि चेतना की एक अवस्था है। इसका शरीर की किसी भी मुद्रा (Posture) से सम्बन्ध नहीं है -यह हमारी चेतना (consciousness) की ही एक अवस्था (state) है। और यह कोई दुर्लभ अवस्था भी नहीं है जैसा कि बहुत से वितन्डावादियों ने इसे बना रखा है। परात्पर प्रभु ने अपने जीव पुत्र को चेतना की सभी अवस्थायें सुलभ कर रखी हैं। सिर्फ पहचानने की बात है। मानवीय चेतना की कई पर्तें हैं। यह तो आधुनिक मनोविज्ञान वेत्ता भी स्वीकार करते हैं चेतन

अवस्था के चारों ओर (Concious state) के बाहर अवचेतन अवस्थायें (Subconscious states) लिपटी हैं इनके परे पराचेतना की अवस्था (super concsous state) भी है। चेतना तरल है-एक परत से दूसरे परत तक आराम से आती जाती रहती है (थर्मामीटर के पारे की तरह) जिसे हम परा चेतना (super concious) ....कहते हैं वह भी चेतना की ही उछाल का एक स्तर है। अब चेतना की अवस्थायें (states) देखिये। मनुष्य की चेतना अधिकतर इन अवस्थाओं (states) से गुजरती है-जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति। कभी हम जाग रहे हैं (जाग्रत) स्वप्न-सो रहे हैं, सपने देख रहे हैं यह भी चेतना की एक अवस्था है। गहरी नींद में चले गये। कोई सपना भी व देखा। जगे तो एकदम ताजे (fresh) कोई सपना नहीं- कहेंगे आज बड़ी गहरी नींद आई......तो जिस तरह जगना, सपना देखना, गहरी नींद सोना चेतना की विशेष अवस्थायें हैं-वैसे ही समाधि भी चेतना की एक विशेष अवस्था है।

मनुष्य की चेतना अधिकतर जाग्रत अवस्था में किसी न किसी विषय में उलझी रहती है। कोई न कोई काम, कोई न कोई विचार, कोई न कोई कामना उसे उलझाये रहती है और निरन्तर चेतना किसी न किसी विषय (subject matter) की ओर दौड़ती रहती है उनमें उलझती, रहती है, झरती है। एक के बाद एक मानसिक तरंगे उत्पन्न होती रहती हैं- ,किसी विषय के सम्बन्ध में अथवा किसी भी विषय की स्मृतियों को लेकर मनुष्य के मन को किसी समय चैन नहीं- हर समय किसी न किसी उधेड़ बुन में वह फँसा रहता है। मन के विचारों की इन तरंगों को हम वृत्ति कहेंगे। सारा जीव जगत् मन की इन तरंगों पर तैर रहा है- वृत्तियों के भंवर में फँसा हुआ है। चेतना में एक के बाद एक वृत्तियाँ उठती रहती हैं और चेतना हर समय किसी न किसी विषय में उलझन में फँसी हुई रहती है कुछ न कुछ सोच-विचार चलता रहता है। बहिर्जगत् में कहीं न कहीं चेतना चिपकी रहती है उससे निकलना मुश्किल है—और याद रखिये चेतना एक तरल शक्ति है।

समाधि

समाधि मानवीय चेतना वह अवस्था है जिसमें चारों ओर बिखरी हुई चेतना बाहरी विषयों से लौटकर (withdraw) होकर सिमट कर, अपने ही में केन्द्रित और पुंजीभूत हो जाय, एकत्रित हो जाय। साथ ही चेतना की सतही हलचलें शांत हो जांय। शांत लहरों वाले सरोवर की तरह सम्पूर्ण तरल चेतना प्रशान्त होकर एक ही जगह पुंजीभूत हो जाय अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ। समाधि की

अवस्था में सम्पूर्ण चेतना सब विषयों से लौटकर एकत्रित होती है और किसी भी दिशा में फँसी हुई नहीं होती (uncommitted) साथ ही किसी आग्रह में अथवा कामना में किसी उधेड़ बुन में फँसी हुई न होने के कारण चेतना एक प्रशान्त सरोवर की तरह हो जाती है...तबियत बड़ी मौज में होती है। किसी प्रकार का तनाव नहीं एक सहज प्रसन्नता की अनुभूति, संक्षेप में पूंजीभूत चेतना जो किसी विषय में फँसी नहीं है- प्रशान्त स्थिति में (Tranquil) बड़े आराम से पड़ी है प्रसन्न (Relaxed) जैसे कोई व्यक्ति अपनी भागदौड़ समाप्त कर बड़े आराम से दो मिनट चैन की साँस ले रहा हैं, उसे कितना अच्छा लगता है। मानसिक तनावों, दबावों विक्षेपों से हींन मन की यह प्रशान्त अवस्था जीव के लिए भगवान की परात्पर की एक देन है। उनके कृपा प्रसाद से ही जीव को यह अवस्था बड़े मजे में मिलती है इस प्रशान्त (Relaxed uncommitted) अवस्था को (जब मन के ऊपर किसी प्रकार का बोझ (Load) न हो) जीव प्रभू की कृपा से बड़े आराम से प्राप्त करता है। एक क्षण के लिए भी चेतना इस स्थिति में आ जाती है तो मनुष्य के बड़े बड़े गम गलत हो जाते हैं, बड़ी बड़ी जन्म जन्म की थकानें मिट जाती हैं वह फिर से विश्व चेतना से पुन: ताजगी तथा शक्ति प्राप्त कर कर्म क्षेत्र में नई उड़ाने भरने को प्रस्तुत हो जाता है।

एक पहचान

कभी कभी आप देखते होंगे कि अनायास ही आप का मन एक अजीव सी मौज में आ जाता है कोई संकेत भी करता है आज तो आप बड़ी मौज में हैं। सब कुछ अच्छा लग रहा है (We are at peace with the world) हमें संसार में सब कुछ अच्छा लग रहा है। किसी के ऊपर कोई गुस्सा नहीं- किसी इच्छा को पूरी करने का आग्रह नहीं ---- (No hankerings no regrets) कोई उत्कंठा, कोई लालसा नहीं कोई गम नहीं। मन एक अजीब मस्ती में झूम रहा है- साथ ही उस परिवेश की रम्यता से मन उड़ रहा है- चाँदनी के साथ खिल रहा है, फूल की खुशबू के साथ मगन हो रहा है, एक सुन्दर सुरीली गीत ध्वनि आप को चेतना के गम्भीर अगम्य प्रदेश में पहुंचा देतीं है- देखते देखते आप खो जाते हैं, सुखद अनुभूतियों में डूबे हुये अगर ऐसे किसी क्षण की आप को याद हो तो समझ लीजिए कि आप उस समय समाधि में थे। उस समय जो सहज प्रसन्नता की (At ease relaxed) अनुभूति हो रही थी वह समाधि चेतना की ही देन थी।

और भी आप को आप के जीवन के वे सुखद क्षण याद दिलाना चाहता हूं जब आप समाधि की अवस्था में थे। आप पार्क में बैठकर अपनी प्रेयसी बाला

का ध्यान कर रहे थे। बार बार घड़ी निकाल कर देख रहे थे। उसने आठ बजे आने को कहा था। वह अभी तक क्यों नहीं आई। आप का इन्तजार आप की विकलता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। पार्क में होने वाले विविध कार्य कलापों से हटकर आपकी चेतना एकदम गेट की ओर लगी होती है जिससे कि आप की प्रेयसी अपनी मदमाती गति से आपको पागल बनाती हुई आने वाली है। कहीं उसके पिता या भाई ने उसे रोक न लिया हो वे जान न गये हों। आखिर ४५ मिनट के विकल इन्तजार के बाद वह मनमोहिनी आप को आती हुई दिखाई देती है। अजीब प्रसन्नता और आवेग में भरकर आप उसकी ओर दौड़ पड़ते है और उसको अपनी बाँहों में भर लेते हैं। आप को यह भी होश नहीं रहता कि आस पास खड़े लोग क्या कहेंगे। एक क्षण को आप वेसुध होकर उसे कलेजे से लगा लेते हैं। विश्वास करिये आप उस क्षण समाधि में हैं, पूर्ण समाधि में (Believe me at that moment you are in trance, complete trance) प्रेम समाधि में आप की सम्पूर्ण चेतना संसार के सारे विषयों की उलझनों से निकल कर पुंजीभूत हो रही हैं और आप की प्रेमिका की चेतना के साथ एकात्मता स्थापित कर रही हैं। आप का बच्चा स्कूल पढ़ने गया है–निश्चित समय गुजर गया है– अभी तक नहीं आया। मां का हृदय चिन्तित हो रहा है। अब सब कामों से हटकर चेतना एक ही जगह पर पुंजीभूत हो रहे है–बच्चा क्यों अभी तक नहीं आया, बच्चा क्यों नहीं अब तक आया आप का मन अब किसी काम में नहीं लग रहा। मन बच्चे पर ही केन्द्रित हो रहा है। अचानक बच्चा आता हुआ दिखाई देता है–एक क्षण के लिए आप सब कुछ भूलकर झपट कर उसे गोद मे उठा लेती हैं, उसका मुंह चूम लेती हैं–बड़ा चैन आता है, तबियत हल्की हो जाती है।—फिर संसार अच्छा लगने लगता है—विश्वास करो (Believe me) जिस क्षण आप बच्चे का मुँह चूम रहीं थीं आप प्रेम समाधि में थीं और आप को होश न था।

मन पसन्द गाने का रिकार्ड (Record) चाहे कहीं क्यों न बज रहा हो—आप सारे काम छोड़कर कैसे उसे तन्मय होकर सुनने लगते हैं। सुनते सुनते आप को कितना अच्छा लग रहा हैं। सारी चेतना पुंजी भूत होकर मन में सिमट आई है दस काम छोड़ देंगे आप अपने मन पसद गाने को सुनने के लिये। फिर कितना मजा कितना आनन्द आया उस गाने में तन्मय होकर। पुंजीभूत चेतना किस सहज सुख की अनुभूति दे गई आपको।

जो काम आप को अच्छे लगते हैं—जो गाने आप को अच्छे लगते हैं—जो व्यक्ति आप को प्रिय लगते हैं, जो दृश्य आप को मन भावन हैं वे सहज ही आप का

ध्यान आकर्षण करते हैं—सहज ही बड़ी आसानी से आप की चेतना पूँजी भूत हो जाती है—बड़े ही आराम से आप की पूँजीभूत चेतना उस समय आप को एक सुख की अनुभूति करा जाती है। आप प्रसन्नता (Relaxed) हलकापन (At ease) और प्रशान्त मनोदशा अनुभव करते हैं—ये सब अनायास आप को प्राप्त निर्विषय समाधि की अवस्थायें हैं प्रशान्त प्रसन्न (Relaxed) पूंजीभूत चेतना जब 'आप के मन पर कोई बोझा या Load न हो। ये अवस्थायें बार बार हमको प्राप्त होती रहती हैं, कल्याणकारी कार्य करते समय, किसी को प्यार करते समय, गहरी नींद में सोते समय, क्योंकि तब भी चेतना प्रसन्न (Relaxed) और पूंजीभूत होती है। अतः जो अवस्था हमें स्वत: ही प्राप्त हो रही है उसके लिये किसी टोटके बाजे की अथवा तोड़ मरोड़ की अथवा आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। हमें समाधिस्थ होकर कर्म करना है। विश्वात्मा का कर्मों से अर्चन करना है समाधिस्थ अथवा योगस्थ होकर मनुष्य को धरती के अन्दर प्रवेश नहीं करना है (भूगर्भ समाधि) न कमरे में बन्द होना है।

योगस्थः कुरु कर्माणि

अथवा तन्मयता

पुंजीभूत चेतना का विनियोजन—आपने देखा होगा जब कोई काम हमें सावधानी से (Rapt attention) ध्यान पूर्वक करना होता है तो हम पहले अपनी चेतना को एकाग्र करते हैं—चारों तरफ से ध्यान हटाकर एक जगह लाते हैं–फिर उस एकत्र की हुई चेतना को किसी विशेष लक्ष्य पर नियोजित करते हैं। इसका मतलब यह है कि जब भी हमें कोई भी काम ध्यानपूर्वक (Rapt attention) के साथ करना होता है तो हम समाधि की प्रक्रिया में से गुजरते हैं–चारों ओर बिखरी हुई चेतना को ध्यान को, एक स्थान पर ले जाते हैं और फिर सम्पूर्ण चेतना को उस लक्ष्य पर केन्द्रित कर देते हैं। कोई भी काम जो इस प्रकार सम्पूर्ण चेतना को केन्द्रित करके किया जाता है, जिसमें हम अपने कर्म में तन्मय हो जाते हैं—बाहरी होश हवास खो कर—जैसे कहते हैं फलां विद्यार्थी है वह अपने गणित (Mathematics) के सवालों में इस तरह जुटा हुआ था कि उसे यह भी होश नहीं रहा कि खाने की घण्टी कब बजी, कब लड़के आये कब चले गये। कवि अपनी काव्य रचना में, चित्रकार अपनी चित्र रचना में इस कदर मगन हो गया कि परिवेश उसकी आंखों से ओझल हो गया। उसके सामने केवल उसका कर्म रह गया।

कर्म करनेवाला कर्म के साथ तन्मयता हो गया तो समझ लीजिए ऐसी मन: स्थिति जब कर्म करते समय हो जाय तो समाधिस्थ होकर कर्म कर रहे हैं—इसी कर्म को तन्मयता को मैंने योगस्थ होकर कर्म करना कहा है।

अब प्रश्न यह है कि ऐसी कर्म समाधि क्या आपको समाधि की अवस्था की प्रशान्ति, सहज सुख की अनुभूति प्रसन्नता और शान्ति तथा मानसिक विश्राम (Relexation and Tranquility) दे जायेगी-जो कि समाधि के साथ संलग्न होती है।

इसका उत्तर यह है यदि आपका लक्ष्य अच्छा है, कल्याणकारी हैं, उच्च है, श्रेयस्कर (Ennobling) है, परहित चिन्तन से प्रेरित है तो यह तन्मयता, यह कर्म समाधि भी आपको समाधि में निहित सहज प्रसन्नता का अनुभव कर देगी और आपका मन प्रसाद सौम्यता, शान्ति आदि से लबालब भर उठेगा। कर्मों में अपने लक्ष्य की महानता निश्चित रूप से खिचती है इसलिए जब भी कोई श्रेयस्कर (Ennobling) कार्य किया जाता है तन्मय होकर, चेतना की सम्पूर्णता को नियोजित करके तो निश्चय ही कर्म समाधि लगती है और मनुष्य समाधि के सहज सुख और आनन्द की, पूर्ण कामता की अनुभूति करता है, इसी को योगस्थ होकर कर्म करना कहते हैं। मन को एकाग्रकर चारों ओर बिखरी हुई चेतना को एकत्रित कर सम्पूर्ण चेतना—सम्पूर्ण मनोयोग के साथ कोई भी काम किया जाय तो उस कर्म में चमत्कार उत्पन्न होता है—कर्म में कुशलता उत्पन्न होती है—

लेकिन यही चेतना और मनोयोग किसी घटिया काम में नियोजित किया जाय (सम्पूर्ण चेतना की इस प्रक्रिया को असुरों ने आसुरी कामों में भी प्रयुक्त किया है) तो इसमें सन्देह नहीं कि वह काम बड़े बेढब तरीके से होगा किन्तु साथ ही परिणाम (Result) भी बड़े वेढब होंगे—मन का प्रसाद और प्रसन्नता (Relaxation) न मिलकर चेतना फिर उलझनों में फसकर विनष्ट होने लगेगी।

पुंजीभूत चेतना और तन्मयता के चमत्कार

(Beauty) या रम्यता मनुष्य का ध्यानाकर्षण करती है। सुरम्य वातावरण या परिवेश मनुष्य के मन को, चेतना को खींचता है, सुरम्य वातावरण को देखकर मनुष्य का मन खिल उठता है-उसकी चेतना बड़े आनन्द से पुंजीभूत, एकत्र होकर हलोरें मारने लगती है। धीरे धीरे एक सहज प्रशान्ति की अवस्था में आ जाती

है और यदि उस समय किसी बाहरी उलझन की व्यग्रता न तो तो सहज ही वह उस प्रशान्त (Tranquil relaxed and uncommitted state of mind) सहज प्रसन्न स्थिति में आ जाता है। जब मन पर किसी प्रकार का बोझ नहीं होता है जिसे हम समाधि कहते हैं। मन को पसन्द आने वाली सभी चीजें चाहे वह एक मनोरम दृश्य हो, एक प्रिय गान हो, एक मन पसन्द स्वर लहरी हो एक प्रिय काम हो, ध्यानाकर्षण की शक्ति रखते हैं चेतना सहज में ही घनीभूत हो जाती है।

पुंजीभूत चेतना यदि स्वाभाविक ढंग से अपने प्रिय लगने वाले कामों में प्रयुक्त की जाती है तो तन्मयता की स्थिति उत्पन्न होती है और यदि अनावश्यक और अप्रिय कामों में तन्मयता की स्थिति उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है तो बजाय तन्मयता के एक प्रकार का मानसिक तनाव या दवाव उत्पन्न होता है जो सिर दर्द तक पैदा कर देता है। तनाव, दवाव (Tension pressure) और व्यग्रता चिन्ता ठीक समाधि की विपरीत दशायें हैं जो चेतना को विक्षेप करती हैं।

वास्तव में देखा जाय तो समाधि (पुंजीभूत चेतना अपनी प्रशान्त अवस्था में) का प्रयोग स्वार्थपरता और परमार्थ दोनों में प्रयुक्त किया जा सकता है क्योंकि आप अपनी चेतना को सब जगह से लौटाकर (Withdraw) एक पुंजीभूत सरोवर के रूप में लायेंगे फिर उस चेतना के जल से किसी न किसी कार्य क्षेत्र को ही सीचेंगें ' यदि समाधि का प्रयोग नीच कार्यों में दूसरों को उद्विग्न करने में हुआ तो समझ लीजिए यह भी उसका एक आसुरी प्रयोग है और आसुरी प्रयोग अन्त में प्रयोग कर्ता के ही विनाश का कारण बनते हैं। मनुष्य अच्छे या बुरे किसी भी विचार या काम में तन्मय हो सकता है और उसका फल भी वैसा ही प्राप्त होगा लेकिन अगर समाधि का प्रयोग श्रेयस्कर (Ennobling) कार्यों में, लोकरंजन कल्याणकारी कार्यों में, जीव के मन को ऊपर उठाने वाले कार्यों में होता है तो तन्मयता की यह यह स्थिति कर्मों के चमत्कार लायेगी और विश्व के लिये कल्याणकारी बनेगी। मुख्य लक्ष्य ब्रह्मसंस्पर्श (Contact with divine) है। यानी जो भी काम हम कर रहे हों उसीके माध्यम से हमें परात्पर ब्रह्म के संस्पर्श का सुखद अनुभव हो—हमारी चेतना जीवत्व के सीतित कारागार निकल कर विराट-चेतना का स्पर्श पाकर उसकी दिव्य अनुभूति कर धन्य हो जाय। समाधि (Helipad) है, एरोड्रोम (Aerodromme) है। आपका मन जब इस एरोड्रोम पर पहुंच जायेगा तब वह इस लायक होगा कि चेतना के (Helicopter) हेलीकाप्टर पर चढ़कर ऊंची उड़ानें भर सके। समाधिस्थ मन हैलीपैड (Helipad) बन जाता है इस लायक बन जाता है कि आपको चेतना का वायुयान ऊपर उठकर उड़ाने ले सके अथवा विश्वात्मा चेतना आपके (Helipad) पर आराम से इच्छानुसार उतर सके। पृथ्वी से लेकर आकाश

तक जो महाचेतना चारों ओर परिव्याप्त है वह आप पर उतर सके, आप उसके स्पर्श का सीधा अनुभव कर सकें उससे एकाकार होकर उसमें विलय हो सकें। समाधि की अवस्था के बाद ब्रह्मसंस्पर्श के लायक मनुष्य की चेतना होती है और निरतर इस अवस्था में आते आते वह इस अवस्था को पहुंचती है जिसे कि मैंने ब्रह्मभूत कहा है। जब जीव अपने को विराट् चेतना का एक अंग देखता—और अन्त में उसमें प्रवेश कर जाता है—"विशते तदनन्तरम्" यह सब कैसे साध्य है?

सहज कर्मों में समाधि और चमत्कार

एक ऐक्ट्रेस को देखिये—यदि वह एक सच्ची ऐक्ट्रेस है ऐक्टिंग उसका सहज कर्म है. कितनी आसानी से वह अपनी केंचुली बदलती है जहाँ उसके सामने उसके रोल का विवरण आया उसने रोल को समझा-उसका व्यक्तित्व (Indentity) बदला। अब मीना कुमारी मीना कुमारी नहीं बल्कि साहेब जान हैं—शारदा है। अब हेमा मालिनी हेमा मालिनी नहीं बल्कि 'लाल पत्थर' की सोदामिनी है। इसके बाद जो कुछ वह कह रही है, सोच रही है, हँस रही है सब उस रोल (Role) के अनुसार। साहेबजान गा रही, नाच रही है सोदामिनी गुस्से में दांत पीस रही है मीना कुमारी नाम की नारी (The woman) हेमा (The girl) नाम की लड़की खो गई पात्रों में लय हो गई यह हुई ऐक्टिंग की समाधि। इसके बाद जो पात्र परदे पर आया वह जीवन्त (full of life) स्वाभाविक प्राणवान् और कहेंगे कि क्या Acting है, क्या चमत्कार है, क्या कमाल है। यह हुई Acting की समाधि। ऐक्ट्रेस की जीव चेतना (conscionsness) पात्र की चेतना (Consciousness) में लय हो गई। खो गई। पात्र जीवित हो उठा।

एक लेखक है वह अपने प्रिय विषय पर या अपनी मन पसन्द कहानी लिख रहा है। चारों तरफ से चेतना खिचकर उसके अन्तर में केन्द्रित हो जाती है। बड़ी सहजता के साथ वह उस सम्पूर्ण चेतना को (Novel writing) अपने लेखन में डुबो देता है। धीरे धीरे वह अपने प्रिय मनोनीत दृश्यों (scenes) का सृजन करने में इतना मस्त हो जाता है कि हर तरफ से चेतना सिमट कर उसके मनोजगत में समा जाती है, बाहरी जगत की ओर से वह एकदम खो जाता है—उसकी वाह्य चेतना (Outer consciousness) गायब हो जाती है, वह अपने मनोजगत् में आंखें खोल देता है, (Scene after scene) दृश्य के बाद दृश्य उसकी आंखों के सामने तैरने लगते हैं, उसकी अन्तः प्रज्ञा चुम्बक की तरह अतीत के दृश्यों को खीचने लगती

है, जाने कौन से अन्धकार में खोये हुये दृश्यों पर वह टार्च (Torch) की तरह पड़ने लगती है—अन्धकार और विस्मृति के आवरणों को चीर कर वह अपने पात्रों के वास्तविक मनोभावों (Motives) और जीवन को, आर पार देखता चलता है और लेखनी उसकी चेतना के निर्देशानुसार ज्यों का त्यों अंकित करती चलती है। विश्वास कीजिए, लेखक महाशय इस समय Trance (समाधि) में है, पूर्ण ट्राँस (Complete trance) में, उनकी सम्पूर्ण चेतना बाहरी जगत् से सिमट कर उनकी मानसिक सृष्टि में बिहार कर रही है—इस समय शायद बाहर शादी के बाजे (Drum) भी बज रहे हों तो उनको सुनाई नहीं पड़ रहे। वह बहिर्जगत् से पूर्ण रूप से बेखबर है और अन्तर में जगकर देख रहा है, सुन रहा है। यह लेखक की पूर्ण रूपेण समाधि की अवस्था है इसके बाद जो कथानक सामने आता है तो पढ़ने वाला कहता है-भई वाह—कहां से यह खोज लेखक महाशय ने कर डाली—कहां से यह महान् कथानक उतर रहा है, धन्य है यह लेखनी आदि।

चित्रकार जब चित्र सृजन में तन्मय हो रहा है, अपने अनजाने में ही उसकी जीव चेतना बिराट् चेतना में लय हो रही है और अनुपम रेखाओं और रंगों का समन्वय हो रहा है। कविता की सहजात प्रतिभा वाला कवि भी जब अपने विषय पर सृजन करने में तन्मय होता है तब उसकी चेतना महाचेतना में लय होकर अनुपम निधियां प्राप्त करती है। एक श्रेष्ठ और सच्चा वैज्ञानिक जिस समय अपनी छानबीन में लगा होता है उस समय उसकी चेतना सहज में ही मूल प्रकृति में लय होकर मेटीरियल आडर (Meterial order) या भूत व्यवस्था के अटूट नियमों को देख और समझ पाती है।

एक सहज वैज्ञानिक को अपने प्रकृति अनुशीलन, में सहज चित्रकार को अपने चित्र सृजन में, सहज कलाकार को अपनी कला में, मन को ईश्वरार्पित करके सत्कार्य करने में पुरुष को अपने आप अनायास सहज समाधि प्राप्त होती है और यह समाधि उसकी चेतना के आरोहण के लिए एक अन्तरिक्ष यान का काम करती है।

चेतना का आरोहण अथवा ब्रह्मसंस्पर्श

इतने सब उदाहरण मैंने इसलिये दिये ताकि आप समझ जायें जीवन में कहाँ कहां समाधि आप के हृदयतल पर उतर रही है। आप चकित (Confuse) होकर मूर्खों, धूर्तों और वितन्डावादियों से सम्मोहित (Hypnotise) न हो जायें। जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति की तरह समाधि भी एक सर्व सुलभ अवस्था है हर व्यक्ति को

प्राप्त है—जीवन के विभिन्न अवसरों पर हमें इसका लाभ मिल रहा है। केवल हमें इसकी पहचान नहीं है।

चेतना जब बाहरी विषयों से वापस (Withdraw) होकर अपने में ही पुंजीभूत हो रही है– किसी प्रकार की व्यग्रता या तनाव नहीं है। मन के ऊपर कोई बोझ नहीं है तब ऐसे विश्राम पूर्ण क्षणों में चेतना सहज ही एक प्रशान्त (Tranquil) और सहज मस्ती की अनुभूति बन जाती है। यही समाधि है, सम् आधिमन की सम, प्रशान्त (Levelled) स्थिति।

समाधि एक महाशक्ति है। उसी प्रकार जिस प्रकार मनुष्य अपनी बिखरी हुई शक्तियों को बटोर कर शक्तिमान् हो उठता है, मनुष्य अपनी बिखरी हुई चेतना को बटोर कर अपनी चेतना के आरोहण के लिये तैयार हो जाता है। चेतना का सागर केन्द्रीभूत होकर प्रशान्त पड़ा है—इसमें चेतना की सम्पूर्ण शक्तियां निहित हैं। अब किसी सदुद्देश्य को लेकर यह सम्पूर्ण चेतना उछाल लेगी, अन्तरिक्ष यान की तरह उड़ चलेगी—अगर लौकिक किन्तु कल्याणकारी कार्यों में इस चेतना का उपयोग होता है तो भी योगस्थ होकर समाधिस्थ होकर कार्य करने से कर्मों में कुशलता तथा महान् चमत्कार उत्पन्न होगा। यदि ब्रह्म संस्पर्श के लिये (Contact with the divine) के लिये सम्पूर्ण (Total) चेतना को प्रयुक्त किया गया तो भी चेतना का आरोहण निश्चित है। प्रश्न यह है कि आप ने अपना क्या लक्ष्य स्थिर किया। लक्ष्य की कुछ न कुछ महानता अवश्य ही साधक को प्राप्त होती है। यदि आप का लक्ष्य आध्यात्मिक है, यदि आप ने पराचेतना (Super consciousness) को अपनी समाधि का लक्ष्य बताया है–यदि ब्रह्म संस्पर्श को अपने इसी जीवन में प्राप्त करने के लिये आप लालायित है तो समाधि अवश्य ही आपकी चेतना के अन्तरिक्ष-यान की उड़ानों के लिये एरोड्रोम का काम करेगी। जहाँ से आप की चेतना (Total) सम्पूर्ण एक रॉकेट की तरह छूटकर परात्पर की कक्षा (Orbit) में प्रवेश कर जयेगी।

"प्रणवो धनुः शरोहि आत्मा ब्रह्म तद् लक्ष्यमुच्यते,
अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।

ब्रह्म संस्पर्श तथा चेतना का आरोहण

मैं मानता हूं कि आध्यात्मिक लक्ष्य वाले व्यक्ति होने के नाते आप ब्रह्म संस्पर्श के लिए तड़प रहे हैं आप उत्सुक है कि आप अपनी चेतना (Consciousness)

को उसके जीवत्व के कारागार से निकाल कर व्यापक ब्रह्म की अनन्त महान् चेतना के साथ एकाकार कर दें, जीव चेतना की सीमाओं को असीम में लय कर दें लेकिन उससे पहले कि आप ब्रह्म संस्पर्श को अनुभूति को समझे आपको यह मालूम होना चाहिए कि ब्रह्म (Divine) किस तरह संसार में और आपके जीवन में कार्य (Operate) कर रहा है। तभी आप ब्रह्म संस्पर्श के प्रयासों को सही रास्ता दे सकेंगे। एक और बात बहुत अच्छी तरह समझने की है ब्रह्म संस्पर्श आपको बिना ब्रह्म की कृपा के (उसके प्रसाद के, उसकी करुणा (Grace) के प्राप्त नहीं हो सकता। चेतना का आरोहण और ब्रह्म में विलय कृपा साध्य है—प्रयत्न साध्य नहीं यहां कोई ट्रिकबाजी टैक्नीलोर्जा (Technology) नहीं चलेगी। ब्रह्म संस्पर्श प्राप्त करने के लिए हमें ब्रह्म की शरण में सर्वतोभावेन जाना पड़ेगा—उसके कृपा प्रसाद की याचना करनी पड़ेगी। ब्रह्म की कृपा (Grace) से ही हम ब्रह्म का संस्पर्श (Divine touch) उससे योग (Contact) और उसकी कक्षा (Orbit) में अपने प्रवेश की अनुमति प्राप्त कर सकते हैं।

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि अव्ययम्"

विश्वात्म-चेतना के प्रसार के चार छोर

(The four poles where the universal spirit acts)

आइये हम उन चार (Poles) केन्द्रों का स्मरण करें जिनका आश्रय लेकर परात्पर चेतना विश्व में कार्य कर रही है यही वे बिन्दु हैं जहां हमारी जीव चेतना लपक कर उससे योग कर सकती है।

ब्रह्म संस्पर्श की बातें करने से पहले एक और बात बहुत ध्यान से समझने की है। हर समय (All the time) सारे जीव ब्रह्म के ही संस्पर्श में है। चित्-सागर में ही जीव रूपी बोतलें तैर रही हैं। (Pure spirit) बाहर भी चारों ओर (Spirit) या चिति का महाअनन्त सागर हिलोरें मार रहा है। बोतल जिस पदार्थ की बनी है वह स्वयं ब्रह्मनिर्मित है। जिसे हम प्रकृति या परिवेश या जगत् कहते हैं वह भी उसी सूक्ष्म अव्यक्त तत्व का प्रकटीकरण है उस प्रकृति का आनन्द लेने वाला जीव पुरुष भी ब्रह्म का चिदंश है—उसकी शरीर रूपी बोतल भी ब्रह्म के ही व्यक्त से रूप बनी है तब वोतल के अन्दर का चिदंश—बाहर के चितसागर के संस्पर्श में क्या नहीं है। केवल ढक्कन खुलने भर की देरी है। यह ढक्कन कब खुलेगा। यह

ढक्कन तब खुलेगा जब ढक्कन लगाने वाले की मर्ज़ी होगी, उसकी इच्छा होगी। उसकी कृपा, उसकी मर्ज़ी के बिना किसी उपाय से नहीं खुलेगा। क्योंकि ऐसा नियम नहीं है। आसानी से जीवत्व का ढक्कन खुलता नहीं है, आसानी से जीव जीवत्व का परदा हटाकर अनन्त पराचेतना में झाँक नहीं सकता। क्योंकि जीवत्व का नियम यही है—वह बाहर की ओर देखे-भीरत की यन्त्र रचना (Mechanism) से उसका मतलब ही क्या ? जीवत्व का ढक्कन उठना और पराचेतना का जीव की बोतल में धक्का मार कर प्रवेश अथवा जीव चेतना का पराचेतना में ढ़लक जाना, विश्वात्म चेतना के सागर में गडड मडड हो जाना एक ही बात है और यह तभी होगा जब परा चेतना का स्वामी परात्पर पुरुष आप के ऊपर ऐसी कृपा करने की इच्छा करेगा (Divine will Divine grace) भगवान् की इच्छा उनकी कृपा—इसलिए सर्वतो भावेन जीव पुरुष को अपने स्वामी परात्पर प्रभु की शरण में जाकर उनकी कृपा की याचना करनी चाहिए। उनकी कृपा के बिना, उनके प्यार और मर्ज़ी के बिना जीव को ब्रह्म संस्पर्श की अनुभूति नहीं हो सकती।

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत
तत्प्रसादात् पराशान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि अव्ययं।"

इसलिए जो भी सम्प्रदाय अथवा धर्म गुरू यह दावा करते हैं कि वे तुम्हें समाधि दे सकते हैं, तुम्हें परात्पर ब्रह्म का संस्पर्श करा सकते हैं—तुम्हें ब्रह्म लीन कर सकते हैं, उनका यह दावा गलत है। न ही किसी मशीनी क्रिया या साधना से परात्पर समाधि प्राप्त हो सकती है ब्रह्म की मर्ज़ी या कृपा ही उसको प्राप्त करने का एक मात्र साधन है।

परात्पर प्रभु जीव के समस्त सत्कर्मों और तपस्या को ग्रहण कर प्रसन्न होने वाले वे समस्त विश्व के स्वामी हैं, साथ ही इतने महान् विराट्, विराटोत्तर होने पर भी मेरे परम प्रिय सुहृद हैं—

इस प्रकार की भावना ही जब प्रगाढ़ हो जाती है, जीव परात्पर प्रभु की चुम्बकीय आकर्षण शक्ति से खिचता हुआ विराट् चेतना में लय हो जाती है। विराट् चेतना में लय होने के फलस्वरूप प्राप्त समाधि में अपार शान्ति, अपार ताजगी और शक्ति को प्राप्त कर जीव चेतना पुन: संसार में उतरती है और नई ताजगी लेकर ईश्वर प्रेरित कार्यों को करती है, यही ज्ञानोत्तर कर्म है। समाधि में विश्वात्म चेतना का आलिगन प्राप्त करके भी सिद्ध पुरुष संसार में आँखें खोलते हैं खुशी खुशी

अपने कार्यक्रमों को करते हैं। तब उन्हें विशेष प्रकार के फल का आग्रह नहीं रहता, ईश्वर की दी हुई क्षमता को ईश्वर प्रेरित कार्यों में नियोजित कर स्वयं ब्रह्म संस्पर्श की निरन्तर अनुभूति का आनन्द लेते रहते हैं।

भगवान की कृपा से ही मनुष्य के चारों ओर बिखरी हुई चेतना अपने में ही केन्द्रीभूत और पुंजीभूत होगी– भगवान की ही कृपा से जीव चेतना पर से जिस पर निरन्तर परिवेश की अच्छी बुरी छायायें पड़ रही है, छायायें हटेंगी–जीव चेतना अपने निर्मलतम रूप में निखरेगी–प्रशान्त स्वच्छ सरोवर के निर्मल तल के समान और फिर यह निर्मलतम पुंजीभूत चेतना पराचेतना के महाकाश में शूट करेगी दो रोकेट्स पर–एक तो स्वतन्त्र चिन्तन, दूसरे, ईश्वरीय प्रेरणायें।

समाधि की अवस्था में ईश्वर के संदेश सत्प्रेरणाओं, सत्‌विचारों–सद्‌विवेक के रूप में हृदय में स्फुरित होंगे। उन प्रेरणाओं को जीवन और जगत में कार्यान्वयन करने की शक्ति भी मिलेगी साथ में स्वतन्त्र चिन्तन और ईश्वरीय प्रेरणायें। इन दोनो पंखों पर उड़कर जीव चेतना निरन्तर परा चेतना की अगम्य अप्रमेय ऊँचाइयों तक पहुँच जाती है और परात्पर संस्पर्श प्राप्त कर फिर जीवन में उतरती है अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान अनन्त प्रेम लेकर।

हम पहले ही कह चुके हैं परात्परा चित्शक्ति दो प्रकार से संसार में उतरती है पहले सम्पूर्ण विश्व की सम्पूर्ण आत्मा के रूप में विश्वात्मा या (Cosmic spirit, Total universal spirit) दूसरे हर (Indivisual) जीव में विश्व चेतना (Universal spirit) की एक किरण के रूप में उसका प्रवेश होता है। हर एक जीवित प्राणी में अन्तरात्मा के रूप में उसका प्रवेश और निवास है जैसे हर जीव की अन्तरात्मा एक इकाई है उसी प्रकार विश्वात्मा की आत्मा भी एक इकाई (Unit) है। जैसे हर बूंद सागर की एक इकाई (Unit) है। जीव की अन्तरात्मा विश्वात्मा के सम्पर्क में है। अतः हर जीवात्मा हर क्षण परात्पर ब्रह्म के संस्पर्श में है मनुष्य को सिर्फ पहचान होनी है, अनुभूति होनी है (All science is, of what is and not what should be) तो परात्पर चेतना (Transcendental spirit) विश्व में अन्तरात्मा बहिरात्मा (आप से भिन्न जीवों की आत्मा) सम्पूर्ण विश्व की सम्पूर्ण आत्मा (Cosmic spirit) विश्वात्मा के रूप में कार्य (Operate) कर रही है। परात्पर चित्शक्ति से हम इनमें से किसी भी कोण पर अपना संस्पर्श स्थापित कर सकते हैं।

(ब्रह्म संस्पर्श)

मैं ब्रह्म संस्पर्श अथवा समाधि योग को सरल से सरल समझ में आने योग्य ज्ञान (Understanding) के स्तर (Level) पर ले आना चाहता हूं।

अन्तरात्मा की समाधि या ध्यान—योग

आप अपनी ही अनुभूति करने चले हैं, इसके लिए आपको अपनी ही अन्तरात्मा के ऊपर जो प्रकृतिकी—परिवेश की धूल की परतें पड़ गई हैं उन्हें हटाना है लीजिए आपका शीशा चमकने लगेगा।

अन्तरात्मा के रूप में स्थित परमेश्वर के दर्शन और उनके अनुग्रह को प्राप्त करने का एक बहुत ही सरल तरीका है, प्रार्थना (Prayer) यह समाधि प्राप्त करने का सबसे सुन्दर सरल वैज्ञानिक उपाय है।

जब आप अपने इष्टदेव की प्रार्थना करते हैं—बाहर की बाह्य जगत की उलझनों और व्यग्रता को दो क्षणों के लिए भुलाकर शान्त सुस्थिर होकर तब आपकी सम्पूर्ण चेतना चारों ओर से वापस होकर (Withdraw) अपने ही में पुंजीभूत हो जाती है फिर उस पुंजीभूत चेतना को समेट कर आप अन्तः में स्थिति इष्टदेव का ध्यान और उनसे बातचीत करते हैं (Heart to Heart talk) आन्तरिक एकदम गोपनीय। अन्तर की उस गुप्त बातचीत में चाहे एक ही क्षण के लिए क्यों न हो आप तन्मय हो जाते हैं, आपकी बाहरी चेतना (Consciousness) भीतर लय हो जाती है, आप केवल अन्तः चेतना (Inner consciousness) के रूप में रह जाते हैं—अन्तः चेतना (Inner conciousness) में आप का आवाह्न परात्पर इष्टदेव का ध्यानाकर्षण करता है आँखें स्वयं चेतना स्वरूप होने के नाते आपकी चेतना से खिचकर आने लगते है। छोटी चेतना और बड़ी चेतना मिलकर गड्डमगड्ड होने लगती है—बोतल का तरल पदार्थ ढक्कन हटाकर बाहर सागर के जल में गड्ड-मड्ड होने लगता है।

अतः यही कारण है जब आपकी प्रार्थना (Prayer) समाप्त होती है तो आपको बड़ी ही आन्तरिक शान्ति, निर्भयता, विशालता का अनुभव होता है कारण कि प्रार्थना (Prayer) की तन्मय अवस्था में आप की जीव चेतना, विश्वात्म चेतना में डुबकी लगा गई थी और कुछ उसके गुण खीच लाई थी। ईसा के अनुयायियों में प्रचलित प्रार्थना (Prayer) मानसिक स्तर पर समाधि योग का ही सोपान है।

अन्य किसी साधन का आश्रय न लेने पर भी केवल प्रार्थना (Prayer) द्वारा ही मनुष्य को ब्रह्म संस्पर्श प्राप्त होता है।

ध्यान समाधि

यही बात ध्यान के बारे में भी है। इष्टदेव के ध्यान में मनुष्य की जीव चेतना स्वत: ही चारों ओर से इकटठी होकर इष्टदेव की ओर प्रवाहित होती है और इष्टदेव कौन हैं ? वे आप ही की आत्मा हैं। आखिर इष्टदेव में मनुष्य अपने ही आदर्शों और कल्पनाओं के चरमोत्कर्ष को देखता है। आपके हनुमान जी इष्ट-देव हैं। इसका मतलब यह है कि आप पराक्रम और सेवा के चरम रूप का प्रकटी-करण देखना चाहते हैं—आपके कृष्ण इष्टदेव हैं इसका मतलब यह है आप अनन्त प्रेम, अनन्त ज्ञान, अनन्त सामर्थ्य को मूर्तरूप में अनुभव करना चाहते हैं। आपके क्राइस्ट इष्टदेव हैं इसका म लब यह है कि आप अनन्त प्रेम, अनन्त करुणा को मानवीय आकार में देखना चाहते हैं। इस तरह हर मनुष्य का इष्टदेव उसके आदर्शों का ही मूर्तरूप होता है। जब वह इष्टदेव का ध्यान करता है अन्तरात्मा के तेज से ये मानसिक आकार ध्यान के समन जीवन्त हो उठते हैं या हम कह सकते हैं कि अन्तरात्मा हो आपकी आन्तरिक कल्पनाओं को जानने के कारण इष्टदेव का ज्योतिमय रूप धारण कर आप को अपनी झलक दिखाती है। इष्टदेव का ध्यान वस्तुत: अपनी ही अन्तरात्मा का ध्यान है। ध्यान में योगी या भक्त जिनका दर्शन पाकर कृतार्थ हो जाता है वह उसकी अपनी ही आत्मा है।

मन्त्र योग

"प्रणवोधनु: शरोहि आत्मा ब्रह्म तत्लक्ष्यमुच्यते
अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।"

एक और सरल सा उपाय है जिससे मन रूपी रौकेट तत्काल ब्रह्म रूपी मंजिल पर पहुंच जायेगा किसी भी रुचिकर रम्य मन्त्र में जो आपके प्रिय इष्टदेव का हो—साथ ही उस मन्त्र में इष्टदेव का परात्पर शक्ति के रूप में चिन्तन निहित हो तो फिर एक क्षण का भी मन्त्र का अर्थ चिन्तन आपकी अपनी जीवात्मा को परात्पर चेतना तक पहुँचा देगा। होगा यह कि जब आप अपनी चेतना को चारों ओर से समेटकर एक क्षण के लिये उस मन्त्र का गहराई से चिन्तन करेंगे, उसके अर्थ पर ध्यान-पूर्वक विचार करेंगे तो आपकी विचार समाधि लग जायेगी। विचार (Thought) के स्तर (Level) पर आप मंत्र का परात्पर चेतना का

आवाहन करेगा, विचार के ही स्तर (Level) पर जीव चेतना विश्वात्मा चेतना की ओर प्रवाहित होने लगेगी और ध्यान के आकाश में सीमित और असीम मिलने लगेंगे। नदी की धारा समुद्र में गिरकर एकाकार होने लगेगी यह तभी सम्भव होगा जब मन्त्र के इष्टदेव के रूप में आप सर्वोपरि महान् परात्पर सत्ता को रखेंगे चाहे उनका आकार कुछ भी क्यों न कल्पित कर लिया हो—और गहराई से मन्त्र के उस अर्थ का चिन्तन करेंगे जो आपके चित्त को परात्पर शक्ति की ओर ले जाने वाला होता है। यह चिन्तन चाहे एक क्षण के लिए क्यों न हो आपको ब्रह्म संस्पर्श के अक्षय सुख को प्राप्त करने में सहायक होगा और हजारों बार के मशीनी मन्त्र आवृत्ति से भी कुछ लाभ होने वाला नहीं। यदि मन्त्र एक तीव्रगामी ट्रेन है और आप का मन यात्री तो अर्थ चिन्तन ही वह बोगी है जिसमें आप के मन रूपी यात्री को बैठना चाहिए। यदि वह इस डिब्बे में (Compartment) में बैठेगा ही नहीं तो किस प्रकार अपनी मंजिल पर पहुंचेगा ? मन्त्रार्थ के गहरे चिन्तन के समय ध्यान शक्ति से आत्म चेतना विश्वात्म चेतना से एकाकार अनुभव करती है। संगीत विशेषकर शास्त्रीय संगीत में भी स्वर और लय आरोह-अवरोह के माध्यम से मन अन्तरात्मा में लय हो जाता है।

बहिरात्मा की समाधि अथवा प्रेम योग

जगत् में हमारे चारों ओर बहिरात्मायें खड़ी हैं। हर बिन्दु पर, हर कोण पर हमारी मुलाकात उनसे हो रही है, सम्पर्क स्थापित हो रहे हैं। हमारे अलावा ये जो अन्य प्राणी बहिजगत् में दिखाई दे रहे हैं उनके अन्दर अन्तर्यामी के रूप में ईश्वर ही कार्य (Operate) कर रहा है मैं उन्हीं को बहिरात्मा कहता हूं। हमारा अन्तर्यामी निरन्तर इन बहिरात्माओं के सम्पर्क में आ रहा है।

एक कहावत आपने सुनी होगी—ना जाने केहि वेश में नारायण मिल जायं इसको दूसरी तरह से समझिए—

'हर वेश में हर रूप में नारायण ही आपके पास रह रहे हैं, इसलिये हर रूप में नारायण का अर्चन प्रेम के पुष्पों से ही हो सकता है।"

माता के रूप में, बालक के रूप में, पड़ोसी के रूप में, प्रेमिका के रूप में, नौकर के रूप में यह जो बहिरात्मा खड़ी है यह कौन है ? यह स्वयं परमात्मा ही है और यह आप से क्या अपेक्षा करती है-यह आप से आपका प्रेम मांगती है। मि० इसके देने में आप किसी प्रकार की कंजूसी न करियेगा—वहीं तो समझें

लीजिए कि आप स्वयं नारायण को ही अपने प्रति उदासीन बना रहे हैं। वहि रात्माओं के प्रति आपके प्यार का जो आवेग आता है उसमें स्वतः हीं समाधि लग जाती है। एक गाय को देखिए जिस वक्त वह प्यार के आवेग में अपनी बछिया को चाट रही है वह सहज समाधि की अवस्था में है। उसकी चेतना सम्पूर्ण विषयों से हटकर केवल प्रेम के भाव में इकट्ठी हुई है। एक मां जिस समय तल्लीन होकर अपने बच्चे को नहला रही है—घुला रही है, कपड़े पहना रही है, पाउडर लगा रही है, दुद्धू पिला रही हैं—वह कैसी मग्न है, कैसी तन्मय है और साहस समझिये या न समझिये वह तो पूर्ण समाधि की अवस्था है—वही तन्मयता, वही चेतना का एकत्रीकरण, वही चेतना की मस्ती, आन्तरिक सुख पूर्ण कामना की अनुभूति। बहिरात्मा के प्यार में ब्रह्म संस्पर्श धरा धराया है ज्यों का त्यों कुछ नहीं करना पड़ता। बहिरात्मा स्वयं चुम्बक की तरह प्रेमी की आत्मा को खींचती है और दोनों आत्मायें एकाकार होकर सायुज्य मोक्ष का अनुभव करने लगती हैं। एक बालिका को देखिये—वह किसी ऐसे युवक को प्रेम कर रही है जिससे उसके घर वाले मिलने की अनुमति नहीं दे रहे हैं। किस तरह उसकी चेतना शरीर के कारागार से निकल कर उन्मुक्त आकाश में प्रवाहित होती हुई प्रियतम के अंक में पहुँचती है, इसे सिर्फ एक प्रमिका ही समझ सकती है। किस तरह उसकी चेतना संसार के सारे रास्तों से लोटकर केवल उस स्थान पर पहुँचती है जहाँ उसका प्रियतम खड़ा है। किस तरह उसकी अशरीरी चेतना, अपने अशरीरी प्रियतम से युवत रहती है। इसे केवल मात्र एक प्रेमिका ही जानती है। विरह प्रेम की सबसे प्रगाढ़ ध्यानावस्था है यह समाधि है. यह ब्रह्म संस्पर्श है जहाँ एक अशरीरी चेतना दूसरे की चेतन के साथ भाव और विचार के स्तर पर एकाकार हो रही है और याद रखिये यह दूसरी चेतना और कोई नहीं साक्षात् आत्मा है, परमात्मा का विदश। संयोग की सुखद अनुभूतियों में भी जब आपके तन मन प्राण और चेतना बहिरात्मा के तन, मन, प्राण और चेतना में लय होने लगते हैं तब भी समाधि की ही अवस्था होती है।

बड़े अफसोस की बात है कि प्यार के इस रम्य मार्ग को छोड़कर जिसमें आदमी फूलों की खुशबू से भरी हुई घाटी से चलता हुआ कदम कदम पर ब्रह्मसंस्पर्श का आनन्द लेता हुआ अपनी मंजिल पर पहुँच जाता है, जिस सुरम्य मार्ग में प्रेयसी के रूप में साक्षात् मूलशक्ति राधा प्यार पाने के लिये और देने के लिये खड़ी है, प्रियतम पति के रूप में साक्षात् रासेश्वर श्रीकृष्ण ब्रह्म संस्पर्श का सुख देने के लिये बाँह फैलाये खड़े हैं। छोटे से मुन्ने के रूप में स्वयं बाल गोपाल आपके सामने मनुहार कर रहे हैं, बहिन के रूप में करुणामयी जगदम्बा स्वयं राखी बाँधने के लिये

खड़ी हैं प्रेम के इस मनोरम पथ में कदम कदम पर ब्रह्म संस्पर्श है, पग पग पर समाधि प्रेम की इस सुरम्य बीथी को छोड़कर ये दाढ़ीवाले बाबा जाने कौन से कंटकाकीर्ण रास्तों पर चलकर स्वय क्षय-विक्षत हो रहे हैं और अपने अन्धानुयायियों को काँटों में घसीट रहे हैं। जहाँ बहिरात्माओं के प्रेम-सामुज्ज में इतनी आसानी से ब्रह्म संस्पश का सुख मिल रहा है—वहाँ उसे हेय और निन्दनीय समझ कर न जाने किस काल्पनिक ईश्वर की पूजा अर्चा वे स्वयं कर रहे हैं और अपने चेलों से करवा रहे हैं। सारी सृष्टि के अणुकण में मैंने मधुराकर्षण का आनन्द भर रखा है। सारी जीव सृष्टि मैथुनी है। जहाँ मिथुन है—वहीं प्यार है वहीं ब्रह्म संस्पर्श है। मूर्खों तुमने यह कैसे समझ लिया कि मूल प्रकृति की अंश रूपा नारी का सृजन तुम्हें पथ भ्रष्ट करने और छलने के लिये हुआ है। नारी आनन्द और प्रेम का महास्रोत है उसके ढाँचे से महामाया का निराला दिव्य श्रोत प्रेम और आनन्द के रूप में झर रहा है। बड़े सौभाग्य से प्रेम गंगा में स्नान मिलता है। इस मनो-मोहनी राधा के प्रेम की अवज्ञा कर तुम जो बड़े लक्कड़-झक्कड़ टाइप (Type) के महात्मा बनकर पुज रहे हो, इससे तुम्हारे एक छिछले अहंकार की पूर्ति भले ही हो लेकिन तुम उस रस समाधि से वंचित रह कर प्यासे ही मरोगे जिसमें महामाया की साक्षात् प्रतिमूर्ति प्रेम मयी नारी अपने प्रियतम को ले जाती है। इन अभागे दाढ़ी वाले ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों को मैं क्या कहूँ मे प्यासे आये थे और प्यासे ही इस संसार से जाँयेगे। प्रेममयी नारी पुरुष के लिये सृष्टिकर्ता का सबसे बड़ा वरदान है। उसी प्रकार पुरुष का प्यार नारी के लिये परमेश्वर की सबसे दुर्लभ देन है।

प्रेम के द्वारा व्यक्तित्व के दिव्यीकरण के नियम

Law of divinization of the personality in love.

प्रेम परात्पर के प्रकटीकरण का एक मात्र साधन है। प्रेम का ही आश्रय लेकर सनातन अव्यक्त व्यक्त होता है, कार्य (Operate) करता है, अवतार लेता है। प्रेम ही व्यक्ति के दिव्यीकरण की सबसे बड़ी तरकीब है—

जिस व्यक्ति को हम प्रेम करते हैं—सम्पूर्ण चेतना से उसे दिव्यता से मंडित कर देते हैं। उस व्यक्ति के वाह्य दोषादि तब हमारे लिये अपना महत्त्व खो बैठते हैं। ये जो बालिकायें मद भरे नयनों से अपने प्रियतम की ओर निहारा करती हैं और उन्हें अपना प्राणेश्वर, रासेश्वर अपना देवता और भगवान् समझती रहती हैं तो सच ही उनके प्रेमाकर्षण से खिचकर देवता और भगवान् उनके प्रियतम के शरीर

में उपस्थित (Operate) हो जाते हैं। वह युवक सचमुच ही सहसा, दिव्यता से मण्डित हो उठता है। परात्पर श्रीकृष्ण अचानक ही उस शरीर में प्रकट होकर उस प्रिया को कलेजे से लगा लेते हैं .. कृष्ण मैं स्वय क्योंकि याद रखिये आपको प्यार कोई नहीं करता सिवाय परात्पर के, सिवाय परमात्मा के आपको और कोई प्यार नहीं करता—उसी प्रकार आप जिस युवती को ओर उन्मुक्त, निश्चित प्रेम के साथ आर्कषित होते हैं—उस युवती के शरीर में आपके प्रेमाकर्षण से स्वतः प्रेम भाव रूपा श्री राधा का आविर्भाव होगा, क्योंकि प्रेम की मूल श्रोत वही मूल शक्ति है। इस तरह व्यक्तित्वों का दिव्यीकरण (Divinizing Transformations) होता है और यह रासलीला यह प्रणयलीला आधिदैविक स्तर पर होने लगती है और जगत् के नियम हमारे ऊपर लागू होने (Apply) लगते हैं।

व्यक्तित्व के दिव्यीकरण के नियम

(Transformation of personality.)

हमारी चेतना जिस स्तर पर बिहार करती है हम उसी लोक के प्राणी होते हैं। धीरे धीरे होता यह है जिसे प्यार किया जाता है—वह वैराज पुरुष बन जाता है यानी दिव्य परम पुरुष, उस व्यक्ति के अन्तःकरण में बैठकर विराजमान् (Operate) हो जाते हैं। हमारी अनुराग पूर्ण धारणा के फलस्वरूप प्रेम पात्र का जीवत्व अनजाने ही खिसक जाता है और परात्पर परिपूर्णतम परमेश्वर को अजस्त्र प्रेमधारा उसके अन्तःकरण से प्रवाहित होने लगती है। हमारे प्रगाढ़ ध्यान और प्रेमावाहन के फलस्वरूप दिव्याति—दिव्य परम-पुरुष का आकर्षण उस व्यक्ति के अन्तर में होता है जिसे हम चाहते हैं उसकी तरफ से दिव्य प्रेम धारायें हमारी ओर चलेंगी और प्रेम करनेवाला स्वयं ही दिव्यता से मण्डित हो जाएगा। ऐ प्रेमका यदि तुम अपने प्रियतम को देवता और भगवान् समझ रही तो सच ही वह तुम्हारे लिए परमात्मा बन जायेगा फिर परम पुरुष से कोई साधारण नारी तो प्रेम कर नहीं सकती। उनकी दिव्य परात्परा आल्हादिनी शक्ति ही प्यार कर सकती है। तो उस प्यार के फलस्वरूप तुम स्वयं रासेश्वरी राधा बन जाओगी। इस प्रकार प्रेम में प्रियतम और प्रेमिका दोनों का दिव्यीकरण हो जाता है। दोनों की आत्मायें उदात्त और निस्सीम ब्रह्मसंस्पर्श को प्राप्त कर धन्य हो जाती हैं।

याद रखिये जब भी कोई बालिका अपने प्रियतम के प्रति सरल, उन्मुक्त, निश्छल प्रेम से, प्रेरित होती है—बिना किसी प्रतिदान की आशा के तो उस बालिका में साक्षात् अव्यक्ता राधा का आविर्भाव हो रहा है। यदि कोई भी बालिका किसी

प्रियतम के प्रेम को प्राप्त करने के लिए कष्ट सह रही है तो समझ लीजिए उस बालिका में शिव के लिए तप करने वाली गौरी का उदय हो रहा है। इस प्रेम को आप नत मस्तक होकर प्रणाम करिए। जो जीवन में ब्रह्म संस्पर्श का सबसे महान और सुलभ उपाय है। प्रेम से वंचित कर आप अपने को अनोखा मत बनाइये इसे सादर ग्रहण करिये। यदि आप अपनी प्रेयसी का निरादर कर इस प्रेम घट को लुढ़का देंगे तो उसका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा—सनातन अव्यक्त परात्पर स्वयं उस प्रेमार्चन को ग्रहण कर लेंगे लेकिन मिथ्या धारणाओं से ग्रस्त होकर आप अपने जीवन को मरु प्रदेश अवश्य बना देंगे। क्योंकि प्रेम ही परात्पर की आल्हादिनी शक्ति है और बहिरात्मा के प्रति प्रेम सायुज्य बहुत ही सहज समाधि की अवस्था है और ब्रह्म संस्पर्श की स्थिति है।

विश्वात्मा की समाधि अर्थात् ब्रह्म कर्म समाधि अथवा सेवायज्ञ

जिस प्रकार अन्तरात्मा का अर्चन ध्यान-योग के द्वारा होता है। बहिरात्माओं का अर्चन प्रेम योग द्वारा उसी प्रकार विश्वात्मा का अर्चन मनुष्य कर्मो द्वारा करता है। कर्मो के करने से किस प्रकार ब्रह्म संस्पर्श मनुष्य को अनायास प्राप्त होता रहता है यह भी बताने की कोशिश करता हूं।

सम्पूर्ण विश्व परात्मा का भौतिक शरीर है। इसमें जो एक अशरीरी अव्यक्त परात्मा निवास कर रही है उसीको मैं विश्वात्मा कहता हूं। सम्पूर्ण सृष्टि उसकी देह भी है और निर्माण भी है। उसकी अनन्त किरणें अनन्त जीवों में आत्मा बन कर प्रविष्ट हैं। विश्वात्मा ने यह सृष्टि निर्माण की है वह चाहता है कि उसके जीव उसकी सृष्टि के निर्माण कार्य में सहयोग दें। सृष्टि को सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम बनाने में भाग लें। हर जीव पुत्र जिसे वह अपनी इस सुरम्य सृष्टि में भेज रहा है उससे वह आशा करता है कि वह इस फुलवारी में नये नये सुन्दर फूल खिलाये और नये नये फलों के वृक्ष लगाये—इसके कांटे निकाले और इसे मनोरम बनाये—जो पुत्र अपने कामों द्वारा उनकी इस आशा को पूरा करता है उससे वे सनातन अव्यक्त परम पुरुष प्रसन्न होते हैं—उस पर अपना कृपा प्रसाद बरसाते हैं जिसे हम ब्रह्म संस्पर्श कहते हैं वह विश्वात्मा की कृपा है।

उसी प्रकार जैसे कोई अच्छा काम करके दिखाए तो पिता उसकी पीठ ठोकता है—प्यार करता है। तो विश्वात्मा का अर्चन मनुष्य के उन सत्कर्मों के द्वारा होता है जो लोक कल्याणकारी हों सृष्टि को, परिवेश को, जगत् को अधिक सुन्दर और मंगलमय बनाने वाले हों।

एक बार मैंने आपको बताया था—हर कर्म मनुष्य को समाधि देनेवाला हो सकता है, हर कर्म ब्रह्मसंस्पर्श का अक्षय सुख देने वाला हो सकता है—हर कर्म मनुष्य की आत्मा को विश्वात्मा में लय करा सकता है बशर्ते कि वह कर्म ठीक भावना (Right spirit) में किया जाय और उसका उद्देश्य (Motive) किसी अन्य जीव को नुकसान पहुंचाना न हो। वह (Right spirit) ठीक भावना क्या है।

योगस्थः कुरु कर्माणि

संग त्यक्त्वा धनजय

जब मनुष्य योगस्थ होकर कर्म करने की टैकनीक (Techique) सीख जाता है तब समझना चाहिए कि वह समाधि के एकदम करीब है। चारों ओर बिखरी हुई चेतना को एकत्रित करिये, इधर उधर के विषयों से मन का योग हटाइये और उसी विषय पर केन्द्रित करिये जिसे आपको करना है। इसे कहते हैं मनोयोग पूर्वक कार्य करना, ध्यान लगाना—तन्मय होकर जुट जाना इसीको मैं कहता हूं "योगस्थ कुरू कर्माणि" इसके बाद आप देखिये पुंजीभूत चेतना के चमत्कार से आप के कर्म में कितनी कुशलता आती है। यह है समाधिस्थ होकर कार्य करना।

ऊपर मैं आपको बता चुका हूं कि योगिक दृष्टिकोण के साथ योगिक अन्दाज़ में कार्य करने पर हर कार्य आपको ब्रह्म संस्पर्श दिला सकता है और वह दृष्टिकोण यह है कि हर परिस्थिति जो हमारे सामने आती है. वह विश्वात्मा की ही प्रेरित होती है। इसे हम समझें कि परिस्थितियां विश्व प्रभु के महान् संकल्प (Grand design) के अनुसार हमारे सामने आ रही हैं और इन परिस्थितियों में हमारे सामने जो कार्यक्रम आप कर रहे हैं वे भी ईश्वर नियुक्त हैं। हमें समझना चाहिये कि इन ईश्वर-नियुक्त परिस्थितियों में कर्तव्य कर्मों को करने की क्षमतायें की विश्वात्मा की मर्जी से हमें मिल रही हैं तब फिर हम अपनी सम्पूर्ण चेतना और शक्ति के साथ उन कर्तव्यों को करते हैं ईश्वरीय संकल्प (Divine will) को पूर्ण करने के लिये—और इस अनुभूति के साथ कि जो कुछ भी कर्म हमारे माध्यम से हो रहा है उसका फल-निर्णय भी वह अव्यक्त महाशक्ति करेगी। जिसकी इच्छा पूरी करने में हमारा शारीरिक और मानसिक यन्त्र (Psychic and physical) लगा हुआ है। फल-निर्णय का अधिकार हमारे हाथ में नहीं उसी महाशक्ति का है जिसके संकल्प (Design) के अनुसार परिस्थितियां और कर्म हमारे पास पहुँच रहे हैं। वह हमारे कर्मों को सफल भी बना सकती है और असफल भी —मनोनुकूल

फल भी दे सकती हैं और एकदम आशाओं के विपरीत— बहुत करने पर थोड़ा फल भी प्राप्त हो सकता है और थोड़ा करने पर बहुत सा भी।

हम नहीं जानते उसकी योजना और आदेश (grand design) से हमारे लिये क्या कर्मफल आ रहा है। हम तो उस महाशक्ति को अपने अन्तर के प्रणाम अर्पित करते हुए उसके यन्त्र (Robat) मानव की तरह अपनी सम्पूर्ण विद्युत के साथ कार्य कर रहे हैं। हम किसी खास प्रकार के फल की जिद नहीं कर रहे हैं। उसके संकल्प (Grand design) के अनुसार जो भी प्राप्त होगा सहर्ष बड़ी मौज से स्वीकार करते हैं। हमारे कर्म भगवदर्पित हैं।

इस प्रकार भगवदर्पित बुद्धि से फलासक्ति की जिद को छोड़कर जो कार्य किये जाते हैं उनमें हर कार्य मनुष्य को ब्रह्म-संस्पर्श दिलाने वाला होता है। फल का भार अव्यक्त विश्वात्मा पर डालकर मनुष्य तरह तरह के तनाओं से मुक्त हो जाता है निश्चिन्तता की सांस लेता है। मानसिक विश्राम (Relaxed feeling) प्राप्त करता है। उसका दिल हलका रहता है—बड़ी बेखुदी में, मौज में उसका समय कटता है और यह समाधि के पूर्ण लक्षण हैं हम अपने कर्म को, विश्वात्मा को अर्पण करते हैं, विश्वात्मा को उसे परात्पर अर्पित कर देते हैं और परात्पर हमारे प्रति कृपाप्रसाद बरसाते हैं—उचित Spirit में कार्य करने के कारण हमें वह योग-युक्त अवस्था (Divine awareness) देते हैं जिसे आप ब्रह्म संस्पर्श कहते हैं।

It is the spirit which matters.

छोटे से छोटा काम यदि Right Spirit सही अन्दाज़ में किया जाय तो ब्रह्म संस्पर्श का सोपान बन सकता है और अच्छें से अच्छा कार्य भी यदि गलत तरीके से किया जाय तो आसुरी हो सकता है और केवल मात्र मनुष्य के अहंकार का पोषण करने में समर्थ हो सकता है।

It is the spirit in which the action is done which matters.

एक डाक्टर है उसे अस्पताल में अपने कामों की तनखा मिलती है। उसके सामने मरीज़ आते हैं जिनका कि वह इलाज करता है। वह इस काम को उदासीनता से (Indifferently) भी कर सकता है, बड़े बेमुरव्वत ढंग से—मरीज़ मरें चाहें जिये नुस्खे (Prescirption)) लिख दिये हैं—अपना काम हमने कर दिया है तनखा हमें सरकार दे रही से मरीज़ साले का क्या ? यह भी एक तरीका है।

दूसरा तरीका यह है कि डाक्टर अपने मन में यह भाव रखे कि यह जो मरीज़ मेरे सामने आया है यह ईश्वर-प्रेरित है—विश्वात्मा स्वयं पीड़ित शरीर के अन्दर बैठकर मेरी सहायता की याचना कर रहा हैं। अपनी समस्त क्षमता को, अपनी समस्त शक्ति को, अपने समस्त ज्ञान-विज्ञान को मैं इस व्यक्ति को ठीक करने में लगा दूंगा। इस मरीज़ के रूप में मैं स्वयं खड़ा हूँ—अगर मुझे इस डाक्टरी सहायता (Medical Aid) की आवश्यकता होती और मैं स्वय मरीज होता तो कैसा इलाज चाहता—मेरे चिकित्सा कार्य में मरीज़ की जो सेवा हो रही है उसे मैं अपनी पूजा समझकर विश्वात्मा को अर्पित करता हूँ—विश्व-प्रभु मुझे अपनी महान् मर्जी (Divine will) को पूरा करने का एक अदना या यन्त्र समझें। यह हुई योग युक्त अवस्था (Divine Awareness) इस दिव्य अनुभूति के साथ जब एक डाक्टर काम करता है तब देखिये कि उसके कर्मों का प्रभाव (Impact) कहां-कहां तक पहुंचता है और क्या-क्या गुल खिलाता है। इस दैवी चेतना (Divine Awareness) के साथ काम करने वाला ही योगी है, सन्यासी है। समाधिस्थ है ब्रम्ह संस्पर्श कदम-कदम पर उसके सामने बिछता है। उसे अलग से किसी तप, किसी यज्ञ किसी साधना को करने की जरूरत नहीं होती है। उसका हर कर्म ब्रह्म समाधि देने वाला होता है। इसी को मैंने गीता में ब्रह्म कर्म समाधि कहा है—हर कर्म में समाधिस्थ चेतना हर कर्म का सम्बन्ध ब्रह्म से।

सेवाकार्य विश्वात्मा की पूजा

मनुष्य की चतना जिन कर्मों में सीमाओं को तोड़कर व्यापक होने लगती है—भूमा में विराट् में लीन होने लगती है वे कर्म निश्चय रूप से वे हैं जिनमें मनुष्य अपने स्वार्थों के सीमित दायरे से ऊपर उठकर परहित चिन्तन मे लगता है, परहित के उद्देश्य (Motives) से प्रेरित होकर कर्म करता है। जिस दिन मनुष्य ने अपने स्वार्थों का दायरा तोड़ा—उसकी चेतना उसी दिन सीमित अह के वृत्त को तोड़कर असीम में विलीन होने के लिये उछलने लगी आरोहण करने लगी। जीव ससीम है, ब्रह्म असीम है. जीव एक शरीर में अपनी अहमिति मानता है। ब्रह्म विश्व के समस्त शरीरों में व्यापक है जिस जीव की चेतना जितना अधिक विस्तार कर रही है वह उतना ही ब्रह्मत्व के निकट है। एक पक्का जीव केवल मात्र अपने शरीर को ही विश्व समझता है 'आपन पेट हाऊ मैं ना दइहों काऊ' का ही सिद्धान्त समझता है। अपने पेट पालने के सामने उसे अपने स्त्री पुत्र भी नहीं सूझते। दूसरा व्यक्ति उससे कुछ अधिक व्यापक मनोवृत्ति रखता है—वह कुटुम्ब के बरे में सोचता है—कुटुम्ब वालों को खिलाकर तब खुद खाना चाहता हैं।

उसका जीत्र पहले वाले से अधिक विराट् और व्यापक है। एक तीसरा व्यक्ति पूरे गांव या मोहल्ले के बारे में सोचता है। वह ऐसा काम नहीं करता जिससे गांव मोहल्ले का कोई सदस्य भूखा रह जाय। एक और इन्सान है जो गांव से भी ऊपर उठकर देश के बारे में सोचता है—जाति के बारे में सोचता है—देशहित के कार्यो को करना चाहता है, उसके ममत्व का घेरा इतना व्यापक हो चुका है कि पूरे देश को समेट रहा है। इससे भी ऊपर वह स्थित है जिसके ममत्व की परिधि में पूरा विश्व आ जाता है। वह विश्व के कल्याण की बातें सोचता है और करता है। शरीर, कुटुम्ब, जातीयता, प्रान्तीयता और संकीर्ण राष्ट्रीयता की परिधि को लांघकर उसकी चेतना सारे विश्व को अपने में देखती है—महात्मा गांधी, एब्राहीम लिंकन जैसे महापुरुष मानव शरीर में लहराती हुई विश्वात्मा की लहरें हैं जो शरीर के आर-पार निस्सीमता में बह रही हैं।

ध्यान योग के द्वारा अन्तरात्मा की अनुमति तो हो सकती है पर पूर्ण समाधि नहीं प्राप्त हो सकती। पूर्ण समाधि मनुष्य को तब प्राप्त होती है जब वह अपने निजी स्वार्थों के संकुचित दायरों से अपनी चेतना (Consciousness) को निकाल कर विश्व की अन्य बहिरात्माओं के सेवायज्ञ में अपने को लगाता है। बहिरात्माओं की तृप्ति विश्वात्मा विश्व रूप प्रभु की तृप्ति होती है। विश्वतोमुख परमेश्वर विश्व के अनन्त प्राणियों के शरीर में स्थित होकर भक्त के भोग ग्रहण करते हैं, उसके द्वारा की हुई बहिरात्माओं की सेवा को अपनी अर्चा के रूप में स्वीकार करते हैं। हजारों, लाखों, करोड़ों प्राणियों के रूप में ये विश्वदेव ही साधक की पूजा ग्रहण करने के लिये प्रस्तुत हैं। इन विश्व रूप परमेश्वर की सेवा में जिसने अपने मन को लगा दिया उसे उसी क्षण ब्रह्मसस्पश प्राप्त हो गया और इन विश्वरूप परमेश्वर की अवज्ञा कर जो अपने किसी अलग काल्पनिक ईश्वर की किसी गुफा की खोह में स्थापना कर उसकी पूजा अर्चा से समाधि प्राप्त करना चाहते हैं, वे समाधि से कोसों-कोसों दूर रहकर जड़ता में खो जायेंगे। जड़ता (Stupor) को ही समाधि समझकर भले ही प्रसन्न हो लें।

संसार के पीड़ित, दुखी, रोगी अशक्त जीवों की सेवा एक ऐसा महायज्ञ है जिसमें अपने प्रयत्नों की आहुति देने वाला इसी जीवन काल में ब्रह्म कर्म-समाधि प्राप्त कर लेता है। सेवा कार्यो में लगे हुए व्यक्ति जानें या न जानें वे हर समय समाधि में हैं—उनके मुंह पर जो एक आभा फैली हुई रहती है—मन में एक अनिर्वचनीय शान्ति, पूर्ण कामता और कृत कृत्यता की भावना है वह आन्तरिक समाधि की ही द्योतक है।

मैं उन सेवा भाव वाले साधुओं को प्रणाम करता हूं जो गुफा की खोहों में और मन्दिर के गर्भगृह में ईश्वर को न खोजकर विश्व के प्राणियों के सेवा कार्य में जुटे हैं—बहिरात्माओं को प्रसन्न करने में जो निरन्तर अपने प्रयत्नों की आहुति दे रहे हैं। एक स्थिर मूर्ति के सामने अपनी पूजा अर्पित करने की जगह हजार-हजार जीवन्त सजीव मूर्तियों का नमन कर रहे हैं।

विश्वात्मा-प्रभु हर कोण पर हर बिन्दु पर ऐसे महा प्राज्ञों का आलिंगन कर रहे हैं और उन्हें पूर्ण समाधि का आनन्द दे रहे हैं। जो शिक्षक बनकर नन्हें बच्चों को पढ़ा रहे हैं जो चिकित्सक और परिचारक बनकर रोगियों की सेवा कर रहे हैं जो छोटे-छोटे कामों में विश्व की छोटी-छोटी इकाइयों (Units) जीवों की मदद कर रहे हैं—वे समाधि में ही हैं, निरन्तर क्योंकि उनको बहिश्चेतना विराट चेतना में लय होकर कार्य कर रही है चाहे उन्हें इसका पता हो या न हो, और जो आत्म केन्द्रित व्यक्ति अपने को महान समझते हुये दूसरों से अपनी पूजा करवा रहे हैं, जो अपने को इस विराट् विश्व देव से अलग समझते हैं, दूसरों से संस्पर्श से बचते हैं, अपनी निराली साधनायें करते रहते हैं—अपने को भगवान का अवतार सिद्ध करते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि जब तक वे इस विश्व में व्याप्त महान् जीवन में सक्रिय भाग नहीं लेंगे—विश्व के अन्य प्राणियों के साथ एकात्मता स्थापित नहीं करेंगे. ब्रह्म संस्पर्श और समाधि उनके लिये दुर्लभ माया–मरीचिका ही रहेगी। क्योंकि समाधि के लिये यह आवश्यक है कि वे अपनी जीव चेतना को विश्व चेतना में लय कर दें और अहंकार की मोटी धात्वीय चादर ओढ़े रहने के कारण वे यह स्थिति प्राप्त करने में असमर्थ हैं।

चेतना का आरोहण परात्पर की कृपा से ही साध्य है—ब्रह्म संस्पर्श चाहे अन्तरात्मा की अनुभूति में हो या बहिरात्मा के प्रेम सामुज्य से प्राप्त हुआ है अथवा विश्वात्मा प्रभु की सत्कर्मों और सेवा कार्यों द्वारा प्राप्त किया गया हो—हमेशा-हमेशा परात्पर की कृपा द्वारा ही जीव को मिलता है। परात्पर की कृपा और स्वतन्त्र चिन्तन की शक्ति, आन्तरिक प्रेम का जगत में प्रसार और भगवद् अर्पित कर्मों को योगस्थ होकर करना...ये माध्यम ऐसे हैं जिनका सहारा लेकर बहुत आसानी से आत्म चेतना, विश्व चेतना या पराचेतना में आरोहण करती है और लय होती है। यही पूर्ण समाधि की अवस्था है जिसके पश्चात शान्त और प्रसन्न आत्मा हुआ सिद्ध पुरुष पराज्ञान और ज्ञानोत्तर प्रेम को प्राप्त करता है और फिर विश्व में अपनी आंखें खोलता है और सम्पूर्ण विश्व में अपने इष्ट देव को पहचान कर मन्द-मन्द मुस्कराने लगता है।

मद्भक्तिं लभते पराम्

समाधि एक (Helipad) हैलीपैड जिस पर पहुंचने के बाद ब्रह्म संस्पर्श की सम्भावना उत्पन्न होती है जिसमें पुंजीभूत समन्वित चेतना का परात्पर गुरूत्वाकर्षण को मानकर आरोहण भी सम्भव है। दोनों की स्थितियां कृपा साध्य हैं और उदार स्थितियां हैं जिसमें जीव को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है और इस दिव्य दृष्टि से वह सृष्टि की ओर फिर देखता है तो समस्त सृष्टि दिव्य दिखाई देती है—"निज प्रभुमय देखहिं जगत् केहिसन करहिं विरोध।" इसी स्थिति से तुलसीदास ने कहा है—"सियाराम मय सब जग जानी, करहुं प्रणाम जोर जुग पानी।" दिशायें आलिंगन करती हैं हवायें चूमती हैं, रवि किरणें मैत्री का सन्देश लाती हैं, बादलों से हंसकर बातें होती हैं। समस्त सृष्टि चिन्मय हो उठती है और जीव स्वयं अपने को अजर, अमर, अविनाशी अनुभव करता है। कहीं भी विरोध या वैषम्य न होने के कारण वह जीव नहीं रहता—जीवत्व की संज्ञा से ऊपर उठ जाता है। वही शिवो अहम् कहने का अधिकारी है। जड़ता (Stupor) और मूर्च्छा संज्ञा-शून्यता की अवस्थायें हैं यह समाधि नहीं हैं, मृत्यु भी समाधि नहीं है जिसमें चेतना का आरोहण हो सके वह स्थिति नहीं है। समाधि के बाद (Postive) पौज़िटिव अवस्था जाती है जब कि (Stupor) मूर्च्छा आदि नैगेटिव (Negative) हैं।

"ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति कांक्षति।"

परात्पर संस्पर्श अथवा ज्ञान समाधि अथवा आनन्द समाधि

Relaxed, Tranquil uncomitted state of mind

अभी तक समाधि और ब्रह्म संस्पर्श के बारे में जो कुछ बता चुका हूं उसके अलावा भी एक और स्थिति है जिसमें परात्पर का प्रत्यक्ष (Direct) संस्पर्श हो सकता है। मैंने बताया था ध्यान योग के द्वारा अन्तर में स्थित ईश्वर को अनुभूति हो सकती है। प्रेम के द्वारा विविध शरीरों में स्थिति बहिरात्मा का दर्शन और स्पर्श हो सकता है। कर्मो, सत्कर्मो और सेवा कार्यो द्वारा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त एक विश्वात्मा का अर्चन और उनका संस्पर्श प्राप्त हो सकता है। इस तरह परात्पर के तीनों ही रूपों में से किसी भी रूप के साथ जीव चेतना एकाकार होकर ब्रह्मभूत हो सकती है। परमात्मा की कृपा से जीव ब्रह्म संस्पर्श पाकर धन्य हो सकता है वह भी अपनी रुचि के माध्यम से।

मैंने एक दफा और भी बताया था आनन्द समाधि जीव को सहज प्राप्य है। यानी आपको रोज ही मिलती रहती है। आप पहचान (Realise) नहीं करते हैं। गहरी नींद में सोने पर, नींद से जागने पर थोड़ी सी देर तक स्वाभाविक रूप से मनुष्य आनन्द समाधि की अवस्था में होता है। परिवेश अत्यन्त मनोरम होने पर अपनी प्राकृतिक सुषमा से भी मनुष्य को आनन्द समाधि की अवस्था में डुबो देता है। आनन्द समाधि बहुत ही सहज और स्वाभाविक तरीके से मनुष्य को पकड़ (Grip) लेती है।

इतने स्वाभाविक ढंग से कि हम समझ न पायें कि कोई अति मानवीय क्रिया हुई है। ये सभी समाधियां चेतना की आनन्दमयी लहरें है। आनन्द समाधि मनुष्य को आनन्दमय बनाती है। मनुष्य अपने आस पास के परिवेश में आनन्द की लहर दौड़ा देता है।

चेतना की एक शक्तिशाली आनन्दमयी लहर मानव को डुबो देती है यहां तक कि उसे किसी भी प्रकार से अपने अस्तित्व का भान नहीं रहता है। लहर के निकल जाने पर जब वह बहिर्जगत् में जगता है तो उस अवस्था का वर्णन नहीं कर पाता है पर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है और अपने में महाशक्ति का अनुभव करता है।

वस्तुत: अपने सीमित स्वार्थ से उठकर मनुष्य यदि कोई लक्ष्य रखता है—तो उसके लिए प्रयत्न करने पर और उस लक्ष्य की सिद्धि होने पर जो अनिर्वचनीय प्रसन्नता के आवेग आते हैं वे आनन्द समाधि की लहरें ही होती हैं और जैसे जैसे मानव अपनी सीमित परिधि से ऊपर उठता जायेगा वैसे वैसे उसकी आनन्द समाधि की परिधि भी व्यापक होती जाएगी।

ज्ञान समाधि

अभी तक ब्राह्मी संस्पर्श का आनन्द दिलाने वाली जितनी भी समाधियों का जिक्र मैंने किया वे जीव को स्वाभाविक रूप से प्राप्य हैं लेकिन ज्ञान समाधि इन सबसे विलक्षण है और वह हर एक को प्राप्य भी नहीं है।

जिन बिरले महापुरुषों ने ज्ञान को अपने जीवन का लक्ष्य माना है और स्वतन्त्र चिन्तन को उस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन बनाया है—वे ही विचक्षण व्यक्ति परात्पर की कृपा से ज्ञान समाधि प्राप्त करने के योग्य बनते हैं। ज्ञान समाधि प्राप्त कर परा चेतना के परात्परीय महासागर में मनुष्य की चेतना हंस

की तरह तैर जाती है। इसे ऐसे समझिए। परात्पर अनन्त, अविच्छिन्न, विराटोत्तर सत्ता में मानव चेतना का प्रवेश स्वयं महाचेतना की अनुमति के बिना नहीं हो सकता उनकी अनुभूति जीव को उनकी कृपा के रूप में मिलती है। परात्पर कोई अन्य शक्ति नहीं है। वे अव्यक्त अनन्त मानव चेतना हैं। (He is a Magnified human) करोड़ों करोड़ों गुना मानव से शक्तिशाली इसलिए उनके रहस्यों का ज्ञान उनकी (Direct) कृपा के बिना सम्भव नहीं है।

ज्ञान समाधि प्राप्त करने के लिए मनुष्य के मन में ज्ञान प्राप्ति एक लक्ष्य के रूप में विद्यमान होनी चाहिएं। चाहे यह ज्ञान पराज्ञान का रूप ले रहा हो— या इस विराट जगत का जिसे विश्व कहते हैं। ज्ञान प्राप्ति की लालसा चाहे (Material order) भूत जगत के रहस्यों की जानकारी के लिए हो अथवा विराट् में व्याप्त और देश काल निरपेक्ष परा महाशक्ति (Transcendental spirt) के बारे में जिन महान् आत्माओं के हृदय में ज्ञान प्राप्त करने की लालसा परात्पर प्रभु स्वयं कृपा करके उनके अन्तर में ज्ञान दीप जला देते हैं और उन्हें बुद्धियोग प्रदान करते हैं। यह मैंने गीता में स्पष्ट रूप से बताया।

तेषामेवानु कम्पार्थमहमज्ञानजं तमः
नाशयाम्यात्म-भावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता।
तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्तिते।

बुद्धियोग अर्थात् स्वतन्त्र-चिन्तन परात्पर प्रभु की कृपा से अन्तर को आलोकित करने के लिये जो बुद्धि योग जीव को दिया जाता है वह क्या है। जिस बुद्धि योग के द्वारा मनुष्य का अन्तर तेज आलोक से आलोकित हो जाता है—जिसे टार्च की रोशनी में अंधेरे पड़े हुये अज्ञात रहस्यों पर से पर्दा उठने लगता है मनुष्य को दिव्य दृष्टि मिल जाती है और वह विराट जगत में घटित होने वाले विविध रहस्यों को और उससे भी पार अनन्त से अनन्त तक जीवित रहने वाली अनन्त चेतना को अन्तर की दृष्टि से देखने में समर्थ हो जाता है……वह बुद्धियोग स्वतन्त्र चिन्तन का ही दूसरा नाम है।

अफसोस है कि संसार में जितने भी धर्म हुये हैं—उन्होंने बहुत (Deliberately) सावधानी से मनुष्य के 'स्वतन्त्र चिन्तन' को दण्डित (Condemn) और कुण्ठित किया है। धर्माचार्यों ने जहां तक हो सका अपने अनुयायियों को स्वतन्त्र चिन्तन के मार्ग पर चलने से रोका और आंखें मूंदकर उन लोगों से अपनी ईजाद की हुई आस्थाओं पर निष्ठावान होने को कहा। 'ईमान लाओ' 'श्रद्धा करो' आदि वाक्यों

में फँसी हुई मानव चेतना 'स्वतन्त्र चिन्तन' के उस मार्ग को भूल गई जिस पर चलकर परात्पर का प्रत्यक्ष (direct) संस्पर्श मिल सकता था—अंध विश्वासों और ईमानों की भूल भुलैया में भटक कर वह निरे अज्ञान के जगल में खो गई।

स्वतत्र चिन्तन

स्वतन्त्र चिन्तन की शक्ति मनुष्य को कहां से कहां नहीं ले जा सकती। आज के मनुष्य ने विज्ञान के क्षेत्र में उसका करिश्मा देख लिया है। स्वतन्त्र चिंतन ने एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक जाना साध्य बना दिया, 'स्वतन्त्र चिन्तन' अध्यात्म जगत में नये-नये आयामों तक मनुष्य की चेतना को पहुंचाने की क्षमता रखता है।

बाल कहानीवत् धार्मिक कल्पनायें मनुष्य जाति के शैशव का इतिहास है—मनुष्य मात्र को चाहिये कि वह अपने अन्दर स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता उत्पन्न करे—हर आध्यात्मिक विषय पर वह यह न सोचे कि पिछले किसी लेखक ने क्या कहा है वलिक यह सोचे कि उसका दिमाग क्या कहता है—वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करे, अपने दिमाग को इस्तेमाल में लाये—पिछले ऋषियों के श्लोकों का उल्लेख (quote) न करे बरन् अपनी ही आत्मा को एक श्रेष्ठ ऋषि समझकर विचार करे और विचार की तीक्ष्ण धार से उन सब फ़ालतू कूड़ा करकटों के ढेर को काटकर फेंकता चले जो पीढी दर पीढ़ी मनुष्य ने बुद्धियोग का प्रयोग न करके इकट्ठा कर रखा है।

हर चीज जो हमारे सामने आती है, हर विचार, हर विश्वास, हर परंपरा हम स्वतन्त्र चिन्तन की तेजधार पर रखकर देखेंगे। यदि स्वतन्त्र चिन्तन उसे काट कर फेंक देता है तो हम निर्मम होकर उसे फेंक देंगे चाहे वह लख चौरासी का सिद्धान्त हो, कयामत के दिन का सिद्धान्त हो, या दुःख को जीवन का आर्य सत्य बताया गया हो—तब आप देखेंगे कि स्वतन्त्र चिन्तन को तेज धारा द्वारा कैसे-कैसे भयानक पर्दें कटकर गिरेंगे और मानवीय चेतना परात्परीय चेतना के आमने-सामने सीधी खड़ी हो जायेगी।

एक बात और मैं आपको बताना चाह रहा हूं। केवल मात्र 'स्वतन्त्र चिन्तन' ही जीव को ज्ञान समाधि देने के लिये पर्याप्त नहीं है। परात्पर की अनुमति से ही परात्पर की कक्षा (Orbit) में प्रवेश हो सकता है। जब तक परात्पर की कृपा जीव के ऊपर घनीभूत होकर बरसने नहीं लगती है तब तक जीव परात्पर चेतना में प्रवेश का अधिकारी नहीं बनता है और यह कृपा उस जीव पर बरसती है

जिसका कि वह स्वयं वरण कर लेती है। बिना कृपा प्राप्त किये खाली स्वतन्त्र चिन्तन के बल पर तो मनुष्य नक्सलवाद की भूल भुलैया में पहुंच सकता है, मार्क्सवाद में खो सकता है। लेकिन ज्ञान समाधि की वह अवस्था प्राप्त करने के लिये जिसमें कि आत्मा हंस की तरह उड़कर परात्पर चेतना के परम गगन में बिहार करने लगती है—वह ज्ञान समाधि परात्पर की जीव पर कृपा के बिना साध्य नहीं है। हर आदमी को स्वतन्त्र चिन्तन की शक्ति नहीं मिलती है, हर आदमी को बुद्धि योग प्राप्त नहीं होता है। ज्ञान गंगा हर आदमी के सिर पर नहीं उतरती है। एक शंकर ही उसे धारण कर सकता है। ज्यादातर लोग तो अन्धेन अन्धा इव नीयमाना:, भेड़ों की तरह दूसरों का अन्धानुकरण करते रहते हैं। बड़े सौभाग्य से युगों में जाकर परात्पर किसी दुर्लभ जीव को स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता और बुद्धि योग देते हैं। स्वतन्त्र चिन्तन के द्वारा मनुष्य बुद्धि के यन्त्र द्वारा उन विचारों, प्रेरणाओं और ज्ञान धाराओं को पकड़ने लगता है जो स्वयं परात्पर से उतर रही हैं और मानव मस्तिष्क पर छा रही हैं। बुद्धि चेतना का प्रखरतम रूप है—जैसे आग में नीली लपटें उसके सामने जो कुछ भी झूठा और अवास्तविक आता जायेगा वह स्वतन्त्र चिन्तन की अग्नि में भस्म होता जायेगा।

एक तथा कथित (So called) धार्मिक व्यक्ति की अपेक्षा, एक सच्चा दार्शनिक एक लगनयुक्त वैज्ञानिक, एक मेधा सम्पन्न विद्यार्थी ज्ञान समाधि को धारण करने में अधिक सक्षम है।

गहरा चिन्तन करते करते ऐसा चिन्तन जिसमें मनुष्य अपने को भूलकर अपने विचारों में खो जाए, मनुष्य का मस्तिष्क एक ट्रांजिस्टर (Transister) की तरह परात्पर के द्वारा प्रेषित ज्ञान धारा को ग्रहण करने लगता है। विचार के रूप में स्वयं अव्यक्त सत्ता जो ज्ञान रूपिणी है उसके अन्तःकरण में अवतरित होने लगती है और वह सहसा चेतना की ज्ञानमयी धारा में प्रवेश कर जाता है और जब उस धारा से बाहर निकलता है तो अनन्त सत्ता के संस्पर्श के फलस्वरूप वह ज्ञान और आनन्द में नहाया हुआ निकलता है—वह परात्पर दृष्टि से सम्पन्न होकर युगों के पार देखता है। सृष्टि के अन्दर और बाहर भी एक ही महासत्ता को लहराते हुए देखकर वह आनन्द मग्न हो जाता है।

ज्ञान समाधि को प्राप्त करने पर उस महापुरुष का छोटा अहं अपने दायरे को तोड़कर विराट् में विलीन होकर स्वयं विराट् होने का अनुभव करता है। 'बूंद' सागर में गिर पड़ी और अपने बूंद रूप को भूलकर विराट् सागर में लय हो गई।

वह अनुभव करने लगी मैं ही विराट् सागर हूं। यही हाल जीव चेतना का हुआ। जीव चेतना ज्ञान समाधि में गर्क होते समय अनायास विराट्-चेतना में गिर पड़ी—विचारों के घर्षण में जीवत्व का खोल घिसकर गिर गया—विशुद्ध अन्तरात्मा परात्पर के महासागर में लय होकर विराट् की व्यापक अनुभूति करने लगी। जब जीवत्व का खोल गिर पड़ा तब जीव के अन्दर निहित ईश्वर अंश तुरन्त ही तुरन्त विश्वात्म-चेतना के साथ लय हो गया, एकाकार होकर आनन्द में मस्त हो गया। मैं ही अक्षर, अव्यय, अविनाशी विराट् परम पुरुष हूं—मैं (Infinite to infinite) अनन्त कालीन हूं—मैं ही विश्व के रूप में प्रकट हो रहा हूं, दिशायें मेरा आलिंगन करती है लेकिन मैं दिशाओं से भी पार हूं मेरा न ओर है न छोर।

जब मनुष्य की चेतना अपने सीमित दायरे को तोड़कर विश्वात्म चेतना के साथ एकाकार होने लगती है तब उसे जो व्यापकत्व की अनुभूति होती है। वह तीन प्रकार से हो सकती है। मनुष्य प्रथम पुरुष में विराट् की अनुभूति कर सकता है। अहं ब्रह्मास्मि, शिवोअहं आदि। (Second person) या मध्यम पुरुष में जब जीव चेतना विराट् को अपने सामने खड़ा हुआ देखकर प्रसन्नता के आवेग में भरकर कांपने लगती है और पुकार उठती है—

"त्वं आदिदेव: पुरुष: पुराण: पुराण: त्वमस्य विश्वस्य परं निधानं।"
वेत्तासि वेद्यं परं च धाम त्वया ततं विश्वं अनन्त रूपद्यावा
पृथिव्यो: इद अन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन जगत् च सर्वं।

हे आदिदेव, हे पुराण पुरुष, हे अनन्त रूपों में प्रकट हुए विश्वात्मा पृथ्वी और आकाश के बीच का यह अवकाश—तुम अकेले ने घेर रखा है।"

विराट की अनुभूति एक तीसरी तरह भी हो सकती है। मनुष्य अनुभूति करे वह परमात्मा सारे विश्व में व्याप्त है, वह परमात्मा देशकाल निरपेक्ष सत्य के रूप में इस विश्व से भी परे अपनी चिरन्तन सत्ता में स्थित है। "एको देव: सर्व-भूतेषु गूढ़: सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा कर्माध्यक्ष: सर्व भूताधिवास: साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।"

मनुष्य के छोटे अहं के सीमित दायरे जब टूटने लगते हैं और उसकी अन्त: चेतना विराट् चेतना के साथ गड्ड-मड्ड होने लगती हैं तब मनुष्य की अन्त: चेतना कई तरीकों से उसकी अनुभूति करती है। हर बार उसका परीक्षण (Test) उसकी व्यापकता की अनुभूति है—अन्त: चेतना, विश्व चेतना और परात्पर चेतना में जितनी

ज्यादा लय होती जाती है ज्ञानी के कर्म और अनुभूतियां उतने ही व्यापक स्तर पर विश्व के लिए होने लगते हैं। साधारण जीव अपने को अपने शरीर में सीमित मानता है इसलिए शरीर के लिए जीता और मरता है लेकिन ज्ञानी की चेतना विश्वात्म चेतना के साथ है एक हो रही है—वह विश्व भर में अपनी अनुभूति करता है सारा विश्व उसकी आत्मा है—वह सम्पूर्ण जगत् के कल्याण के लिए जीता और मरता है—विश्वात्म चेतना को भी परात्पर चेतना से झरती हुई देखकर उसकी दिव्य दृष्टि और भी ऊंचे आरोहण करती है और उसी परात्पर परात्पर चेतना की किरणों को अपने में चेतना के रूप में प्रवेश करते हुए देखकर वह विश्व में, विश्व के हर प्राणी में उसे उसी रूप में प्रवेश करते देखकर समस्त प्राणियों के साथ यह मैं हूं इस प्रकार एकात्मा की अनुभूति करता है। ज्ञान समाधि भगवान की कृपा से और केवल एक मनुष्य पर उतरते हुए भी उसकी वाणी, व्यवहार, विचार द्वारा मानव जाति के नहीं वरन् सम्पूर्ण जीव समुदाय के एक बहुत बड़े भाग पर छा जाती है। आपके युग में विवेकानन्द एक उदाहरण है, ज्ञान समाधि उनके ऊपर उतरते हुए भी उनकी वाणी और कर्मों द्वारा मानव जाति के के एक बहुत बड़े भाग को प्रभावित कर गई।

गुणातीत अवस्था

एक ऋषिवर बहुत आग्रह से मुझसे पूछने लगे—गुणातीत स्थिति क्या है ?

गुणातीत स्थिति को समझने से पहले आपको यह समझना होगा—ये गुण आखिर हैं क्या—कुछ लोग हर समय त्रिगुणों की रट लगाये रहते हैं, सत्व, रज, तम पर बड़ा जोर देते रहते हैं आखिर सत्व, रज, तम हैं क्या बला ?

नेचर या प्रकृति अपने आप में ब्रह्माण्ड (Cosmos) को उत्पन्न करने में असमर्थ थी। मूल प्रकृति (Matter) में पुरुषतत्व (Spirit) का प्रवेश होता है तभी प्रकृति प्राणवान हो उठती है और विराट् के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

अपने मूल रूप में अव्यक्त प्रकृति विशिष्टता हीन निराकार थी या हम कह सकते हैं विशिष्टतायें, विविधितायें अन्तर्निहित थीं। Spirit आत्मतत्व से संयुक्त होने पर अव्याकृता प्रकृति सहस्त्रों विविधताओं में बिखर पड़ी, बहुरंगी वैचित्र्यपूर्ण दृश्य जगत Multicoloured varied Phenomenon प्रकट हो गया। जैसे कि श्वेत रश्मि, स्पैक्ट्रम के सात रंगों में बिखर जाती है। प्रकृति, विश्व विद्युत (Negative) में ऋण तत्व है। पुरुष Spirit धन तत्व Positive है दोनों के मिलने पर गति उत्पन्न होती है।

अजां एकां लोहित शुक्ल कृष्णां
बह्वी-प्रजा: सृजम्पनां सरुपा: ।

जो अनादि अजन्मा एक मूल प्रकृति थी वह पुरुष तत्व से प्राणवान् होने पर विविधताओं में बिखर गई—एक से रूपवाली बहुत सी प्रजाओं का निर्माण करने लगी ।

तो यह प्रकृति अपने विविध रूपों से हमें चारों ओर से घेर रही है । प्रकृति का स्पैक्ट्रम (Spectrum) परिवेश के रूप में हमारे चारों ओर बिखरा हुआ है । हमारा घर, हमारे स्त्री, पुत्र, भाई, बहन, मित्र, शत्रु, बाग बगीचा, स्कूल कालेज यहां तक कि हमारा शरीर और अन्त:करण भी परिवेश में आते हैं । यह प्रकृति निर्मित परिवेश गुणात्मक है । चाहे कह लीजिये यही गुण है ।

संसार के मनोरम वैचित्र्य में, परिवेश की विविधता में जीव का मन खूब लगा रहता है । परिवेश प्रकृति उसे प्यार करती है, वह प्रकृति को प्यार करता है । प्रकृति उसे प्यार करती है क्योंकि वह ईश्वर का चिदंश है और वह प्रकृति को प्यार करता है क्योंकि प्रकृति उसके सुख (Enjoyment) के लिये परिवेश के रूप में आती है ।

नीति-विधान (Moral Law) भी यही है कि जीव परिवेश का श्रृंगार करे और परिवेश जीव को खूब खेल खिलाये ।

जीव को जब परिवेश में सहज आनन्द की अनुभूति होती है, शान्त सुख की अनुभूति, जब मनोरम परिवेश में मनुष्य बड़ा प्रसन्न और मौज का अनुभव करता है तब यह सतोगुण की स्थिति है । सतोगुण की विश्रामपूण (Relaxed) स्थिति में मनुष्य का मन जब मौज की हिलोरों पर झूमता है तो आसानी से गुणातीत स्थिति में कूद (Jump) जाता है ।

अपने परिवेश से असन्तोष और उसे सुधारने की इच्छा रजोगुण की भूमिका है ऐसी स्थिति में मनुष्य का मन चंचल रहता है, परिवेश में सुधार करने की इच्छा मनुष्य को कर्म की ओर ले जाती है । रजोगुण में मन रहने पर ही मनुष्य कर्मरत होता है, निर्माण कार्य में लगता है परिवेश को अपने अनुकूल ठोक पीट कर करना चाहता है । जिस परिवेश में वह अपने को सुविधा में अनुभव नहीं करता, परेशान और तकलीफ में (Miserable) रहता है, चिड़चिड़ाता है, छटपटाता है, कर्म करने की

इच्छा भी नहीं होती—जैसे-तैसे उस क्लेशदायक स्थिति (Miserable situation) को गुजारता है आलस में, ऊब में (Boredom) पड़ा रहता है, वह मानव मन की तमोगुणी अवस्था है।

गुणातीत स्थिति

परिवेश–निरपेक्षता ही गुणातीत स्थिति है।

जहां मनुष्य अपने परिवेश की ओर निरपेक्ष होकर (React) प्रतिक्रिया न करके परिवेश से ऊपर उठ जाता है वहीं दिव्य चेतना का चक्र (Divine orbit) शुरू होता है। गुणातीत का अर्थ है प्रकृति से पार जाना, अतीत हो जाना–(Going beyond your surroundings) इसके बाद भी प्रकृति पार स्थिति आरम्भ होती है अपने परिवेश से ऊपर उठ जाना स्पैक्ट्रम (Spectrum) के एक छोर पर सत्वगुण है, दूसरे छोर पर तमोगुण है। बीच में रजोगुण है, बीच में रजोगुण की स्थिति में मनुष्य कर्म के द्वारा संसार को पकड़े रहता है किन्तु सतोगुण के छोर को पार करके भी वह प्रकृति से अतीत हो सकता है—और तमोगुण के रास्ते से भी गुणातीत स्थिति में प्रवेश कर सकता है। सत्वगुण के रास्ते से—सतोगुणी मन की अवस्था में मनुष्य जो सहज सुख की अनुभूति करता है—उसमें प्रसन्नात्मा (Realaxed) हो जाता है मौज मस्ती के उस क्षण में·····परिवेश को प्यार से चूम कर सहज ही परिवेश को बनाने वाले के ध्यान में डूब कर मानव हृदय बहुत आसानी से गुणातीत होकर प्रकृति से पार चला जाता है और परिस्थिति निरपेक्ष होकर—ध्यान की गहराइयों में जाता हुआ परमात्मा के संस्पर्श को प्राप्त कर लेता है। दूसरा रास्ता तमोगुण का यह है जो आजकल हिप्पी या पुराने अघोरी अपनाते हैं वे परिवेश के प्रति इतने उदासीन (Indifferent) इतने अनासक्त हो जाते हैं कि फिर उनकी परिवेश में कोई ममता नहीं रहती। सतोगुण की सहज (Realaxed) स्थिति में मनुष्य परिवेश की मनोरमता को आभार पूर्वक (Thank you) कह कर स्वीकारता हुआ गुणातीत होता है और परिवेश के भद्देपन की ओर (Damn care attitude) रखकर भी बहुत से व्यक्ति परिवेश–निरपेक्ष हो जाते हैं (हमें तुम्हारी रत्ती भर परवाह नहीं, दुनियां ने हमको दिया क्या, हम दुनिया की परवाह करें क्यों ?)

गुणातीत स्थिति को प्राप्त करने में प्यार एक बहुत बड़ा माध्यम है। प्रेम की उत्कटता में मनुष्य किस तरह अपनी परिस्थितियों से मुक्त होकर भाव के महाकाश मे विचरण करता है इसका अनुभव बहुतों को होगा। प्रेम दीवानों

मीरायें किस प्रकार प्रेम के झूले पर बैठकर–गगन मण्डल में सेज पिया की कहती हुई आकाश-मण्डल में बिहार करती हैं। इसे आप जानते हैं। एक और माध्यम है गुणातीत होने का निरहंकार होकर लोक संग्रह के लिए कार्य करना—निरहंकार होकर सत्कर्मों को पराकाष्ठा पर पहुंचाने पर मनुष्य का अन्त:करण धीरे धीरे प्रकृति से अतीत होकर अपने स्रोत में लय हो जाता है। विराट् परमेश्वर की समष्टि रूप से सेवा मनुष्य के सीमित मन को बहुत शीघ्र व्यापक ब्रह्म में लय कर देती है। अहंकार मनुष्य के गुणातीत होने में सबसे बड़ा बाधक है जो जीव को जीव बनाये रखता है। यह रजोगुण में जीव को पकड़े रहता है।

गुणातीत स्थिति को प्राप्त करने के उपाय

गुणातीत स्थिति मनुष्य को नित्य ही प्राप्त हो रही है। सृष्टिकर्ता अपने विदंशों को रोज बहु गुणमयी (Many faced spectrum) सृष्टि की विविधता का अनेकता का दर्शन देता है साथ ही ऐसा प्रबन्ध भी है कि वह अपनी गुणातीत अवस्था का आनन्द भी प्राप्त करता रहे।

रात्रि सृष्टि की महाशान्त अवस्था है और नींद के रूप में हर रोज जीव गुणातीत स्थिति प्राप्त कर रहा है। रात्रि के समय सृष्टि अपने असली रंग (Colour) में आ जाती है–जब प्रकाश के अभाव में सभी चीजें अपनी विविधता खो बैठती हैं—एकाकार होने लगती हैं और नींद में डूबकर जीव अपने परिवेश को भूलकर किसी सहज सुखमयी स्थिति में प्रवेश कर जाता है। दूसरे शब्दों में वह परिस्थिति निरपेक्ष या गुणातीत हो जाता है। बहुत सहजता के साथ नैसर्गिक ढंग से रोज ही यह गुणातीत होने की प्रक्रिया चल रही है।

लेकिन सृष्टिकर्ता यह नहीं चाहता कि जीव निरन्तर गुणातीत स्थिति में रहे इसलिये इस स्थिति को सीमित कर दिया गया है। प्रकृति की महाशान्त निस्तब्ध स्थिति अनेक रंगी, बहुगुणी दृश्यों में बदल जाती है। रोज सुबह सूर्य की टार्च (Touch) गुणातीत स्थिति में गर्क महानिस्तब्ध सृष्टि पर पड़ती है और साथ ही इस टार्च (Torch) के प्रकाश में—सृष्टि की हर चीज अपने अलग रंग में खिल उठती है चारों तरफ अनिवर्चनीय, अनुपम विचित्रता दिखाई देने लगती है और साथ ही परिवेश की विचित्रता में जीव का मन रमने लगता है, कर्म की हलचल आरम्भ हो जाती है।

जाग्रत् अवस्था में भी गुणातीत स्थितियाँ आती रहती हैं। सवाल उन्हें पहचानने का है।

अगर परिवेश सुखद है तब तो एक सहज आनन्द की अनुभूति होती ही रहती है। लेकिन यदि परिवेश प्रतिकूल है—संसार की उलझनें बहुत बढ़ गई हैं, उसमें फँस कर मनुष्य का मन अवसादग्रस्त हो रहा है तब वह क्या करे। वह परिवेश निरपेक्ष गुणातीत किस प्रकार हो।

सरल सा उपाय है—आप उस परिवेश से हट जाइये—मान लीजिए एक व्यक्ति आप से लड़ रहा है, उलझ रहा है, क्लेश-दायक स्थिति उत्पन्न कर रहा है—आप किसी प्रकार वहाँ से सरक जाइये—बाहर घूम आइये, उस परिवेश से अपने को काटकर खिसक जाइये। आप कम से कम उस परिवेश से अतीत Beyond हो जायेंगे।

एक दूसरा श्रेष्ठ उपाय गुणातीत होने का किसी श्रेष्ठ सत्कार्य में लग जाना होगा। पूरी चेतना के साथ श्रेयस्कर कार्य में लय होने का मतलब है, आप कार्य में जुटे आप की चेतना, फालतू परिवेश से कट गई। एकाग्रता के साथ किसी भी कल्याणकारी कार्य में रत मनुष्य की चेतना स्वयं उस कार्य का रूप रख लेती है—जैसे तल्लीनता के साथ शिक्षा देती हुई अध्यापिका का मन उस समय स्वत: शिक्षा बन जाता है और जब तक वह तन्मय अवस्था रहती है तब तक परिवेश भूला रहता है, मनुष्य का मन गुणातीत स्थिति में सहज ही प्रवेश कर जाता है।

प्रेम का महाभाव मनुष्य को बहुत आसानी से गुणातीत स्थिति के क्षेत्र (Realm) में ले जाता है। आत्मा एक से अनेक हो रही है—और फिर इस अनेकता की स्थिति से एकता की ओर जा रही है—अनेकता की स्थिति में वह एकता की अनुभूति करना चाह रही है। एक से अनेक फिर अनेक से एक यही अध्यात्म, आत्मा का प्रसार व केन्द्रीकरण है—इसीलिये प्रेम में व्यापकता है फिर एकत्व की की अनुभूति है। अपने अन्दर का अहं या मैं नष्ट नहीं किया जा सकता है लेकिन उसे व्यापक बनाया जा सकता है। मेरे मन का, अपने पन का जितना ही प्रसार होता जाता है उतना ही आत्मा के सहज गुण आनन्द की प्राप्ति मनुष्य को होती जाती है और अन्त में यह मैं व्यापक ब्रह्म के विराट् में लय हो जाता है।

वैराग्य

जब जीवन के, सृष्टि के, रंग (Colours) जीव को आकर्षित करते हैं चेतना का, प्रसार होता है—जीव की चेतना हर चीज को गले लगाना चाहती है—जब परिवेश किन्हीं कारणों से, अपना आकर्षण खो देता है उसके रंग फीके लगने

लगते हैं—वातावरण उजड़ा उजड़ा सा लगता है बल्कि कष्टदायक हो उठता है तब उस समय चेतना की परिवेश से (Withdrawal) वापसी होने लगती है, यह लौटने लगती है। बाहर से वाह्य परिस्थितियों से सिमटती हुई चेतना अपने अन्दर सिमटने लगती है—जीव अन्तर्मुख हो उठता है, जीवन के जागरण के समय चेतना का चतुर्मुखी प्रसार जिस प्रकार स्वाभाविक था—जीवन के क्रम में अनन्त की ओर चेतना के लौटने का वक्त जब आता है तो चेतना का वापस लौटना (With drawal) वाह्य जगत् से उसी प्रकार स्वाभाविक और Natural है। वाह्य जगत् से सिमटती हुई चेतना अपने केन्द्र की ओर लौटने को आतुर हो जाती है उसी में उसको शान्ति और चैन प्राप्त होता है। यह सब कुछ सहज स्वाभाविक है क्योंकि ट्रेन में सवार हुआ व्यक्ति पहले तो अपने बिस्तर सामान आदि ट्रेन के डिब्बे में फैलाता है जैसे जैसे गन्तव्य स्थान नज़दीक आता जाता है, बिस्तर समेटना, सामान समेटना आरम्भ हो जाता है और गन्तव्य स्थान आने पर यात्री अपना सामान लेकर नीचे उतर जाता है। जब भी परिवेश प्रतिकूल हो—चेतना को उस परिवेश से (Withdraw) कर लीजिये लौटा लीजिये और चेतना के प्रवाह को भीतर की ओर मोड़ दीजिये। यही वैराग्य है, यही असंग है—इस शस्त्र के द्वारा आदमी अपने अन्दर की चेतना का कठिन से कठिन परिस्थिति से सूत्र काट सकता है। इस गुणातीत स्थिति में पहुंचने पर जीव की यात्रा अनन्त (Eternity) में आरम्भ होती है।

———

जीवन-मृत्यु और तदुपरान्त

Life beyond and after.

सर्वस्य चाहं हृदिसन्निविस्टो मत्त: स्मृतिः ज्ञान मपोहनं च ।
वेदैः सर्वैः अहमेववेद्यो, वेदान्त-विद् वेदविदेव चाहं ।
ममैवांशो जीव-लोके जीव भूतः सनातनः
मनः षष्ठानि इन्द्रियाणि प्रकृति स्थानि कर्षति
ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः
तमेव चाद्यं पुरुष प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।।

मैं यह मानता हूं कि कभी कभी मनुष्य का परिवेश इतना कठिन इतना क्लेशदायक हो जाता है कि उस परिवेश से नाता तोड़कर किसी ऐसी स्थिति में प्रवेश करना लाजमी हो जाता है जिसमें परिवेश के ये असह्य धक्के उतार-चढ़ाव (Ups and downs) न हों ।

परिवेश सुन्दर है, मनोरम है तब तो जीव का मन उसमें लगेगा ही । परिवेश की रम्यता को वह मस्त होकर (Enjoy) करेगा, आनन्द लेगा ही लेकिन यदि दुर्भाग्यवश परिवेश न तो मधुर है न सुखदायी बल्कि क्लेशपूर्ण है और मनुष्य की चेतना परिवेश की उलझनों में फंसकर अवसाद ग्रस्त हो रही है तब परिवेश से चेतना को लौटाने (With draw) के अलावा और मनुष्य के सामने कौन सा रास्ता शान्ति प्राप्त करने का रह जायेगा ।

अपने द्वापर कालीन जीवन की एक दुःखद घटना का स्मरण करके आपको बता रहा हूं । महाभारत का युद्ध अभी जारी था—अचानक एक दिन अर्जुन लड़ते लड़ते युद्ध क्षेत्र से दूर जा पड़ा और उसकी अनुपस्थिति का फायदा उठाकर शत्रु

पक्ष के महारथियों ने अर्जुन के युवा पुत्र अभिमन्यु को घेर लिया। अन्यायपूर्ण युद्ध में अभियन्यु ने वीर गति पाई।

नव युवक पुत्र की मृत्यु का आघात ऐसा हृदय विदारक था कि अर्जुन की आत्मा चीख उठी—वह इस अप्रत्याशित आघात को सहन न कर सका—उठती हुई उम्र का नवयुवक बालक शील, सौन्दर्य और पराक्रम में अप्रतिम आखिर अर्जुन किसके लिए जी रहा था—किसका मुख देखकर—जिसको कि कहते हैं कि पैरों के तले की मिटटी खिसक जाना—वह अवस्था हुई उस समय अर्जुन की। बड़ी बे वफाई के साथ दैव ने उसके बाह्य संसार का, ताशों का महल गिरा दिया था। परिवेश की कोई भी वस्तु उसके मन को शान्त करने में समर्थ न थी। नैराश्य पूर्ण वातावरण में पत्नी, मित्र सेवक भविष्य की सुखपूर्ण अभिलाषायें सभी सारहीन हो गई। उसका मन उस वातावरण में जलती हुई बालू पर पड़ी हुई मछली की तरह तड़प रहा था।

वही हाल प्राय: मेरा भी था। अपनी बहन के उस प्रसन्न मुख बालक को मैं भी प्यार करता था—उस प्रियदर्शी नव युवक को कौन नहीं चाहता था। अर्जुन अपने कैम्प में बैठा था—बेचैन भयानक तड़प· आखिर जब परिवेश असह्य हो गया तब मैंने ही उसे समझाया····'प्रिय अर्जुन। यह बाह्य परिवेश, यह जगत् क्लेश-दायक हो गया है। इस क्षण इसके पास हमे दुख देने के अलावा कुछ नहीं है। बाह्य परिस्थितियां असह्य हो चुकी हैं हमारे लिए एक ही रास्ता है—बाहर फैली हुई चेतना को समेटकर अन्तर्मुख हो जाने का—अपनी चेतना के पंखों को सम्भाल कर चलो—उस पद की खोज में उड़ चले—जो हमारा अविनाशी धाम है—जो हमारा शाश्वत् स्थान है—जहां हम अपने अविनाशी रूप में स्थित रहते हैं"—मैं परात्पर परम पुरुष का ध्यान करता हूं जिनसे यह सारी सृष्टि निकली है—जो अनन्त, अव्यय चेतना और आनन्द (Bliss) के महार्णव हैं—मानसी सृष्टि के परे—जहां सृष्टि की अच्छी-बुरी हलचलें शान्त हो जाती हैं—वहां न मृत्यु है न जीवन की उथल पुथल है-उस महाप्रशान्त अवस्था में जिसमें चारों ओर आनन्द और अस्तित्व की अनुभूतियों के बादल घहराकर गम्भीर ध्वनि में बरस रहे हैं—उस परम धाम की कल्पना करो, उसके ध्यान में अपने मन को लय करो—परिवेश की डोरी को काट दो, तुम्हारी आत्मा हलकी होकर महाकाश में प्रवेश कर जायेगी।

धीरे धीरे मैं अर्जुन के मन को उस गुणातीत स्थिति में लाने में समर्थ हुआ जिसमें उसका मन अभिमन्यु वध की क्लेशपूर्ण परिस्थिति को भूलने लगा और हलका

होकर अनन्त के महाकाश में प्रवेश कर गया। समाधि की स्थिति से जब वह उठा तब उसका मन प्रकाश और आनन्द से भर गया। जीव और मृत्यु के पर्दे उठाकर उसे आरपार देखने की शक्ति प्राप्त हो गई।

जीवन-मृत्यु और तदुपरान्त

Life, death and beyond.

समाधि में अर्जुन ने जिस ज्ञान को प्राप्त किया था उसे आप भी आज ही प्राप्त कर सकते हैं।

संसार में यह जो चलता फिरता, हंसता बोलता पुतला है उसे हम 'जीव' कह सकते हैं, क्योंकि उसमें जीवन है—उसमें चेतना है, उसमें बाह्य जगत के बिम्बग्रहण करने की क्षमता हैं—बाह्य जगत में अगर शब्द, रस, स्पर्श दृश्य, गन्ध आदि के उपकरण मौजूद हैं तो इस पुतले में वे क्षमतायें, इन्द्रिय शक्तियां हैं जिनसे वह बाह्य जगत की वस्तुओं को अपनी इन्द्रिय क्षमता के द्वारा ग्रहण करता है। तो इस जीवित पुतले में दो बातें हुई एक तरफ मैटर (Matter) से बना हुआ शरीर दूसरी तरफ शुद्ध चिन्मय आत्मा (Pure spirit) जो इस पदार्थ (Matter) से बने हुए यान्त्रिक शरीर में प्रवेश करती हैं।

मानव देह में स्नायुओं में, मस्तिष्क में प्राण शक्ति की विद्युत् धारायें लहराती हैं और इस प्राण-विद्युत् के ऊपर या इसमें मिश्रित (Mix) होकर चित् शक्ति शुद्ध आत्मा (Pure spirit) प्रवेश करती हैं जो सब प्रकार के जीवन का आधार हैं यह चित्शक्ति (Siprit) आत्मा अविनाशी तत्व है-जैसे सैकड़ो हजारों बल्ब हैं—तार लगे हुए हैं-उनमें बिजली चल रही है, भक् से बल्ब जल जाता है चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश छा जाता है अब अगर एक बल्ब टूट भी जाय, फ्यूज हो जाय तो बिजली का क्या बिगड़ता है-वह तारों पर लहराती हुई अपने केन्द्र की ओर वापस चली जाती है।

इसी प्रकार प्राणियों के शरीर रूपी बल्बों में चित्शक्ति अथवा आत्मा बिजली की तरह जल रही हैं-मैटर (Matter) के सम्पर्क में आने पर उसमें जो विशिष्ट गुण उत्पन्न हो रहे हैं-वे हैं मन जो बाह्य जगत् को अपने अन्दर बिम्बों (Images) के रूप में ग्रहण करता है, इन्द्रिय क्षमता, जिनके द्वारा यह पुतला

संसार के दृश्यों सुगन्धों, स्पर्शों, आवाजों का आनन्द लेता है–एक विशिष्टता यह उत्पन्न होती है कि पुतले के अन्दर व्यापक चेतना अपने को सीमित समझने लगती है मैं बस यह हूं इतना हूं—चेतना के इस उपकरण के साथ एक प्रकार का (Psychic Mechanism) मानसिक यन्त्र (अन्तःकरण) जीव के अन्दर बन जाता है जो शुद्ध आत्मा (Pure spirit) के चारों ओर एक पर्दा सा डाले रहता है। या हम कह सकते हैं—पदार्थ के सम्पर्क से चेतना के बाहरी घेरे (Ring) में ये सब क्षमतायें खिंच आती हैं और जीवित व्यक्ति बाह्य परिवेश में अपनी आंखें खोलकर आनन्द लेने लगता है। प्रकृति और आत्म: (Spirit) तत्व के मिलने के फलस्वरूप इस चेतन पुतले में जीवन के वे लक्षण उत्पन्न होते हैं जिन्हें जीवन कहते हैं। यह बढ़ता है (Grows) वह बाह्य प्रकृति को देखता, समझता, बूझता है, वह अपने जैसे बच्चे पैदा कर सकता है, कालक्रम से उस पुतले का क्षयीकरण भी होता है—और इसके बाद वह अवस्था आती है जिसे आप मृत्यु समझते हैं जिसमें मैटर (Matter) अलग हो जाता है चित शक्ति (Spirit) या आत्मा अलग वह अपने गन्तव्य स्थान की ओर उस तरह लौट जाती है जैसे बल्ब के टूटने पर बिजली-बिजली घर चली जाती है। बल्ब के टूटने पर जैसे बिजली का कुछ नहीं बिगड़ता वैसे मृत्यु के बाद न तो आत्मा का कुछ बिगड़ता है न घटता है। वह जिस केन्द्र से निकली थी वहीं पहुंच जाती है।

उत्क्रमण

अब यह प्रश्न उठता है कि जीवात्मा जब मृत्यु के साथ शरीर से उत्क्रमण करती है तब क्या साथ ले जाती है ?

शरीर से उत्क्रमण करती हुई जीवात्मा बहुत कुछ छोड़ती जाती है। जैसे लम्बी यात्रा पर जाने वाला यात्री बहुत ही जरूरी सामान साथ ले जाता है, फालतू सामानों के बण्डल नहीं ले जाता है। उसी प्रकार जीवात्मा भी सिर्फ जरूरी चीजें (Essentials) ही ले जाती है फालतू सामान सब त्याग देती है। त्यागी जाने वाली चीजों में सबसे पहले अपना शरीर होता है जो निरे मृत पदार्थ (Matter) के लोदें के रूप में पड़ा रह जाता है और जल्दी से जल्दी उसे विदा (Dispose off) कर दिया जाता है।

शरीर से सम्बन्धित समस्त परिवेश और रिश्तेदार आदि यही छूट जाते है इस तरह सारा ही स्थानीय परिवेश (Local) संसार जीवात्मा के द्वारा त्याग दिया जाता है।

फिल्मरील (Reflective consciousness) प्रतिबिम्ब मयी-चेतना अपने जीवन काल में भी मनुष्य जो कुछ पसन्द नहीं करता था जिसमें उसका मन नहीं रमता था उन्हें तो वह जीवनकाल में ही भूलता जाता था, साथ ले जाने का तो सवाल ही नहीं उठता।

प्रतिबिम्ब–मयी चेतना

(Reflective consciousness)

जिस तरह चित्शक्ति Pure Spirit में यह गुण होता है कि ओर्गेनिक मेटर (Organic matter) के सम्पर्क में आने पर उसमें से चेतना (Consciousness) का एक चक्र (Ring) निकल आती है जो मन-बुद्धि-अहकार से युक्त होता है—एक प्रकार का (Psychic) मानसिक-उपकरण यंत्र विकसित (Develop) हो जाता है जो वाह्य परिवेश की संवेदनाओं को ग्रहण करता है, और वाह्य जगत् के प्रति जीव की प्रतिक्रिया (Responses) को प्रकट करता है। इस उपकरण में वे शक्तियां होती है जिनसे जीव-बाह्य जगत का आनन्द(Enjoy)लेता है। यह बहिश्चेतना कहलाती है। चित्शक्ति या (Spirit) में एक बाह्य घेरा (Ring) पड़ा होता है-यह चक्र प्रतिबिम्बशील चेतना (Ring, reflective consciousness) का होता है। इसमें गुण होता है जो भी बहिश्चेतना बाह्य जगत् के अनुभव ग्रहण करती है उसके विम्ब (Images) अपने में धारण (Retain) करती है। चेतना के इसी गुण के कारण मनश्चेतना में स्मृतियाँ काम करती हैं जो और कुछ नहीं बाह्य जगत् के अनुभवों की (Image) प्रतिबिम्ब है जो धारा प्रवाह चेतना में चलते रहते हैं। हर अनुभव चेतना में अपना प्रतिबिम्ब छोड़ता है और चेतना प्रतिविम्बों की एक रील तैयार रखती है जिसे जब चाहे वह खोलकर अपने सामने फिल्म रील की तरह फैला लेती है और हर अनुभव को दोहरा (Revise) सकती है। बिल्कुल फिल्म रील के नैगेटिव (Negative) के अनुसार अनुभवों के प्रतिविम्वों की यह रील—या टेप, चेतना (Conscionsness) में लिपटी हुई पड़ी रहती है। अवश्य ही (of course) चेतना जीवात्मा के जिन अनुभवों को पसन्द नहीं करती थी उन्हें मिटाती चलती है। उन अनुभवों को प्रतिबिम्बों की इस फिल्म रील में शामिल नहीं किया जाता हैं, वे भुला दिए जाते (Rejected) हैं। जिन अनुभवों में जीवात्मा की चतना खूब रमी, उन्हीं अनुभवों की फिल्म रील चेतना में लपेटी जाती है—और सुरक्षित रखी जाती हैं। मनश्चेतना में यही रील स्मृति के रूप में खुलती है और जब मन का विलय अन्त: चेतना भी हो जाता है तो संस्कारों (Negatives) के रूप में आत्मा में प्रतिबिम्बों की रील (Reflective Ring) पड़ी रहती है।

इस तरह शरीर से उत्क्रमण करते समय—जीव की चेतना अपने को शरीर से खींच कर अलग कर लेती है—बहिश्चेतना, अन्तः चेतना में लय होकर एक हो जाती है। अभी तक जो अन्तःकरण (Psychic mechanism) चेतना के बाहरी घेरे (Ring) में बन गया था वह भी शान्त होकर अन्तः चेतना में लय हो जाता है। जिस शक्ति के द्वारा चेतना बाह्य जगत् के प्रभाव (Impression) ग्रहण कर रही थी वह इन्द्रिय चेतना भी अन्तः चेतना में लय हो जाती है—चेतना की ये सभी शक्तियां—शरीर के नष्ट होने पर सिर्फ शान्त ही होती है, मरती नहीं हैं, सम्पूर्ण मनोयन्त्र (Psychic mechanism) को लेकर अन्तः चेतना बाहर निकलती है। वक्त आने पर और दूसरे शरीर के सम्पर्क में आने पर यह मानसिक यन्त्र फिर काम करने लगता है। इस अन्तःकरण यन्त्र के अलावा जीवात्मा अपने तत्कालीन जीवन के उन सब अनुभवों की फिलम रील अपने साथ ले जाती है, जिन्हें कि उसने खूब (Enjoy) किया था, जिसमें कि उसका मन खूब रमा था, खूब लगा था। उसकी प्रतिबम्ब-मयी चेतना के स्रोत Consciousness की Reflective ring) में यह फिलम रील संस्कारों के रूप में (Negatives) के रूप में पड़ी रहती है और फिल्म रील (Film reel) का सिलसिला (Continuity) दूसरे जन्म में भी चलता रहता है। याद रखिए इस फिलम रील में मनुष्य के उन्हीं अनुभवों के के बिम्ब हैं जिनमें मनुष्य की चेतना बहुत रमी थी। जिन अनुभवों में उसकी चेतना रमी नहीं थी उन्हें तो उसने तत्काल ही उड़ा दिया था। धारण (Ratain) करने का सवाल ही नहीं उठता। इस प्रकार मन पसन्द अनुभवों की रील के आधार पर ही जीवात्मा के दूसरे जन्म की रील तैयार होने लगती है और अन्तः पटल पर छपने (Project) लगती है। जीव अपनी इन्द्रिय चेतना की शक्ति, अन्तःकरण के यन्त्र (Mechanism) और प्रतिबम्बमयी चेतना (Reflective-Consciousness) में छिपी जीवन के अनुभवों को फिलम रील के साथ शरीर से निकल कर सूक्ष्म जीवन में प्रवेश करता है।

अपनी ही सर्वोत्तम मनोमयी प्रतिमा

Best Image.

साथ ही जब जीव शरीर छोड़ता है तब वह अपने को अपने सर्वोत्तम रूप (Best image) में ले जाता हैं। कोई भी मरने वाला अपने को अपनी बीमारी की वृद्धावस्था की क्षत-जर्जर मूर्ति (Image) के रूप में देखना पसन्द नहीं करता। वह अपने को अपने जीवन काल की सौंदर्य और तेज की चरम सीमा पर पहुंची हुई

(Pinnacle of glory) मूर्ति में देखना पसन्द करता है और मृत्यु के बाद अपनी सर्वोत्तम प्रतिमा (Best image) में बाहर जाता है। इस तरह मृत्यु से जीव का कुछ नहीं घटता अपने जीवन की फिल्म रील को छाती से लगाये और अपने जीवन के फिल्म (Film) का होरो (Hero) अपने आप बना हुआ जीवात्मा दूसरे जगत् में एक हल्के फुल्के यात्री की तरह प्रवेश कर जाता है हां यह बात जरूर है कि सद्गुण की रील वाले यात्री-दिव्य कक्ष ((Divine orbit) में जाते हैं—रजोगुण वाली रील के यात्री मध्य में प्रवेश कर जाते हैं और नीचो जघन्य गुण वाली रील जिसके पास है उनके सामने जीवन के निम्न स्तर ही आते हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद अर्जुन की विकलता शान्त हो गई।

मृत्यु के पहले भी अभिमन्यु अलक्ष्य था (आत्मा) और मरने के बाद भी अपने समस्त अनुभवों की (Reel) के साथ अलक्ष्य है, तब शोक किस बात का? बिजली बिजलीघर लौट गई, सिर्फ बल्ब टूटा है।

———

देशकाल सापेक्ष धर्म तथा देशकाल निरपेक्ष धर्म

अच्छी से अच्छी किताब, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ज्ञान क्यों ऐसा होता है कि किसी दिन उतना ताज़ा नहीं मालूम पड़ता है जितना किसी समय पहले मालूम पड़ता था—क्यों उसमें बताये हुए सत्य फीके मालुम पड़ने लगते हैं ?

उन्हें फिर से दोहराने (Revise) की नयी चमक (Polish) देने की सम्पादन (Edit) करने की जरूरत महसूस होती है, अच्छे से अच्छा खाना बनाइये—जो खाना इस समय पुष्टिदायक, मन मोहक और स्वास्थ्य वर्धक लग रहा है। दूसरे तीसरे दिन उसमें वह ताजगी, स्वास्थ्य वर्धकता और वह जायका क्यों नहीं रहता जो बनने वाले दिन था, जाहिर है कि प्राकृतिक कारणों से खाने में वह परिवर्तन आ गया है जिसे विकृति कहते हैं जो अवांछनीय है ! जो उसके स्वाद, शक्ल और शक्ति को बिगाड़ रहे हैं। चीज़ जो पहले दिन थी वह दूसरे दिन नहीं है जो दूसरे दिन है वह तीसरे दिन नही।

किताबों-धर्मग्रन्थों तथा शास्त्रों के विषय में भी वही बात है। हर किताब हर शास्त्र किसी न किसी देशकाल में लिया गया है। ज़माने की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति ही इन धर्म-ग्रन्थों का लक्ष्य है। वे किसी खास युग और खास देश की जनता को सम्बोधित (Address) किये गये हैं। समय के बदलने के साथ ही तत्कालीन धर्मग्रन्थों का मानवीय रूप भी बदलने की ज़रूरत पड़ जाती है। हर ग्रन्थ किसी खास जाति को किसी खास भाषा में सम्बोधित किये गये हैं। उनका एक खास तत्कालीन महत्व भी था। हर किताब देश काल सापेक्ष थी और है, देशकाल जमाने के बदलते ही धर्मग्रन्थों के पुनः सम्पादन की, उन्हें परिवर्तित (Changes) करने की आवश्यकता आ पड़ती है और इसी लिये प्रतियुग में महान्

पैगम्बरों तथा अवतारों का जन्म होता है। वे हर बार शाश्वत धर्म को (Moral Order) को नये रूप में, नयी वास्तविकता में, नये ज़माने में ढालते हैं और मानव मात्र के लिये कल्याणकारी बनाते हैं तथा धर्म के रूप को पुन: नया जामा पहनाकर समकालीन मानवों के लिये ग्राह्य बनाते हैं और उसके बासीपन और सँड़ाध को निकाल फेंकते हैं—वह प्रक्रिया हर युग में चलती रहती हैं। धर्म का नवीनतम ताजे से ताजा रूप, परम पुरुष हर युग में प्रकट करते हैं। किसी को यह न समझना चाहिये कि धर्म-शास्त्र पुनरावृत्ति (Revision) सम्पादन और पुनर्मूल्यांकन से परे हैं। जब सृष्टि प्रतिदिन प्रतिक्षण सृष्टि कर्ता के आदेश के अनुसार नवीन हो रही है तो नवीनीकरण की यह प्रक्रिया क्यों नहीं अध्यात्म जगत् में चलेगी। श्रीमद्भगवद् गीता, कुरआन, बाइबिल, वेद सभी न किसी न किसी देशकाल की जनता को समझाने (Suit) के लिये लिखे व बोले गये थे, कोई कारण नहीं कि वह जमाना गुजर जाने पर उसमें परिवर्तन (Change) करने की उन्हें दूसरी तरह सम्पादित (Edit) करने की जरूरत न रहे और इसी ज़रूरत को पूरा करने के लिये एक युग तक अवतारों और सन्तों की परम्परा चलती रहती है—जो फिर देशकाल सापेक्ष धर्म को संशोधित करने का अधिकार रखते हैं यह अधिकार उन्हें स्वत: पूर्ण पुरुष की ओर से मिलता है वे देशकाल सापेक्ष धर्म ग्रन्थों को पुन: संशोधित करते हैं और नयी समाज व्यवस्था के अनुसार फिर परिवर्तित करते हैं इसमें बुरा और गलत कुछ भी नहीं है।

भूत व्यवस्था (Material order) के शास्त्रों में, विज्ञान परम्परा में तो यह प्रक्रिया निरन्तर चल रही है-एक वैज्ञानिक शोध कार्य करता है-कुछ सिद्धान्तों का निरुपण करता है—दूसरा वैज्ञानिक फिर उन्हीं सूत्रों को पकड़ कर शोध में लग जाता है वह और कुछ फासला तय करता है—तीसरा वैज्ञानिक और उस परम्परा को और आगे चलाता है इस प्रकार Material order की यह विज्ञान धारा पीढ़ी दर पीढ़ी (Generation to Generation) चली जा रही है, आप ने किसी वैज्ञानिक को, किसी डाक्टर को यह कहते नहीं सुना होगा कि बस फलां किताब में वैज्ञानिक ज्ञान की इति हो गई इसमे आगे कोई ज्ञान नहीं होगा, कोई नयी चीज़ आगे नहीं आयेगी। हम इससे आगे किसी को वैज्ञानिक सुधार नहीं करने देंगे।

जब मैटीरियल आर्डर (Material order) में विज्ञान प्रक्रिया हर क्षण विकसित हो रही है, हर क्षण सुधर रही है तो अध्यात्म जगत् के शोधकों को ही यह कहने का अधिकार कहाँ है कि अमुक किताब बस जो द्वापर में या छठीं शताब्दी में लिखी गई थी वह ज्ञान की इन्तिहा है उसके आगे ज्ञान आने वाला नहीं है।

फलां नबी, पैगम्बर के बाद कोई अन्य नबी होने वाला नहीं है, फलां अवतार अन्तिम (Last) है। उसके आगे कोई अवतार उस टक्कर का होने वाला नहीं। बाइबिल में, कुरआन में जो कुछ लिखा गया है वह अन्तिम शब्द है, वेदों में जो लिखा गया वह ज्ञान की चरम सीमा है-गीता में, स्वयं गीताकार भी जन्म लेकर नया संशोधन प्रस्तुत नहीं कर सकते, तुलसी बाबा इतने सुन्दर राम चरित मानस में जो ...ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।...लिख गये हैं इसको पुस्तक से हटाया नहीं जा सकता है।

"किसी भी किताब या धर्म ग्रन्थ" को ज्ञान की अन्तिम सीमा मान लेना जड़ता और जहालत है। परमेश्वर अनन्त है, उसका ज्ञान इतना असीम, इतना विशाल है, हमेशा इतना अनन्त है कि कभी वह पूरा का पूरा एक ही मनुष्यके माध्यम से एक ही युग में मानवता को नहीं दिया जा सकता यह बात प्राय: असम्भव है। इसीलिए अव्यक्त परम पुरुष (Unmanifest absolute) सत्य का कभी कोई अंश किसी सन्त या महापुरुष के माध्यम से प्रकट करते हैं। कभी उसी सत्य का दूसरा अंश क्रमानुसार दूसरे काल में प्रकट करते हैं, कभी वह सत्य एक साथ कई जगहों में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार सत्य के प्रकटीकरण की यह प्रक्रिया बिल्कुल उसी तरह चलती है जैसे विज्ञान के क्षेत्र में अपूर्ण तत्व और आगे विकसित किए जाते हैं। विचार-विमर्श के द्वारा देशकाल सापेक्ष धर्म का बासीपन दूर किया जाता है उसे ताजा रूप और शक्ति दी जाती है—उसके जो अंश देशकाल के साथ मृत हो जाते हैं उन्हें निकाल कर उनमें जामे-सेहत का इन्जेक्शन (Injection) दिया जाता है। शाश्वत देश-काल निरपेक्ष सत्य पुन: नवीनतम रूप में समकाल में प्रतिष्ठा पाता है। अध्यात्म जगत् के सिद्धान्त भी भूत–जगत के अन्तर्हित नियमों की तरह अटल तथा अनुल्लंघनीय (inviolable) हैं। हर बार रिसर्च (Research) के द्वारा उनकी पुन: पुन: खोज तथा धर्म विधान (Moral order) के रूप में उनकी तत्कालीन समाज पर संस्थापना (Application) यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो भी धर्म'पुस्तक या धर्म सिद्धान्त इस वैज्ञानिक प्रक्रिया को कसौटी पर खरा उतरना नहीं चाहता, अपनी जान बचाना चाहता है श्रद्धा विश्वास और ईमान लाओ का हल्ला मचाकर अपने अनुयायियों की बुद्धि को जड़ बनाता है—उस धर्म को उठाकर सांप की छोड़ी हुई केंचुली की तरह दूर उठाकर फेंक देना चाहिए–अध्यात्म जगत् के देशकाल निरपेक्ष नियमों की अनुभूति और उनका मानव कल्याण में उपयोग (Application) यही एक वैज्ञानिक आध्यात्मिक धर्म का आधार है। आज का मानव इससे कम स्वीकार नहीं कर सकता और कोई किताब या ग्रन्थ मनुष्य की मर्मभेदी प्रज्ञा के परे नहीं है।

सनातन अव्यक्त, परम पुरुष (Absolute) या परात्पर, पूर्ण पुरुष अल्लाह के रास्ते इतने रहस्यपूर्ण हैं—उनकी सृष्टि ही असीम है जिसका (विस्तृत अध्ययन के बावजूद) सम्पूर्ण रहस्य अभी वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आया तो इस विराट् व्यक्त जगत् के पीछे जो असीम अनन्त परात्पर सत्ता का महार्णव लहरा रहा है उसका ज्ञान क्या सम्भव है कि एक ही व्यक्ति के माध्यम से सारे जगत् को हो जाए ? कितना भी बड़ा अवतार क्यों न हो—क्या वह (Absolute) परात्पर सत्ता का सम्पूर्ण ज्ञान भाषा के माध्यम से अपने समकालीन व्यक्तियों को करा सकता है ? गागर में सागर कितना भरा जा सकता है। सीमित अन्तःकरण असीम परात्पर का कितना वाहन बन सकता है। एक छोटे से प्याले में क्या समस्त समुद्रों का, नदियों का जल समा सकता है ? अतः परात्पर ब्रह्म अपने चिदंशों पर कृपा करके उनको सुखी करने के लिए, उनको कल्याण का मार्ग दिखाने के लिए समय समय पर (Time to Time) अपने प्रतिनिधि भेजते हैं जो मानव जाति के सामने शाश्वत धर्म का एक अंश रखते हैं फिर कालान्तर में दूसरा प्रतिनिधि आकर एक और अंश प्रकट करता है फिर एक दूसरी पीढ़ी (Generation) में एक तीसरा प्रतिनिधि आकर उसी पुराने को पुनः संशोधित करता है, नई फूंक भरता है इस प्रकार यह अध्यात्म-परम्परा, सन्तों, महात्माओं, विद्वानों भक्तों, पैगम्बरों, अवतारों और ज्ञानियों के माध्यम से बहती हुई चिर नवीन की जाती है—नई नई गीताओं का उदय होता है, नये नये वेदों का प्राकट्य होता है—नये सिरे से कुरआन पैगम्बर के अन्ताकरण पर उतरती है।

हर बार इस सनातन ज्ञान धारा का यही लक्ष्य होता है—अव्यक्त अमृत अध्यात्म सिद्धान्तों की पुनः स्थापना और उनके आधार पर मानव जाति का कल्याण।

द्वापर युग में जब मैंने श्रीकृष्ण के मुख से ज्ञान (शाश्वत धर्म) वि ान, उसका मानवहित में प्रयोग (Local application) की घोषणा की थी उस समय धर्म, (Moral Order) "अद्वेष्टा सर्वभूताना मैत्रः करुण सब च" के रूप में प्रकट हुआ था। उस युग का मनुष्य द्वेष, क्रोध, बदले और हिंसा की भावनाओं में इस इस कदर फंसा हुआ था कि प्रेम का सिर्फ "अद्वेषरूप" किसी से द्वेष न करना, यही समझना उसके लिए भारी सबक था।

कुछ हजार वर्षों बाद (सनातन अव्यक्त) ने फिर वही सन्देश बुद्ध के मुंह से कहलाया। "मैत्री मुदिता, करुणा, उपेक्षा," जीवों के प्रति मैत्री भावना रखो,

दूसरों को मुदित करो, प्रसन्न करो, अपने से कमजोर अबल जीवों पर करुणा रखो, अपने हितों की उपेक्षा करो, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय जियो। यह मौरल आर्डर (Moral order) "अद्वेष्टा सर्वभूतानां से एक कदम (Step) आगे था। तीसरे कदम (Step) में धर्म-विधान (Moral order) की यह प्रक्रिया और भी आगे चली और कुछ सौ वर्षों बाद ईसा ने मेरा प्रेम रूप घोषित किया-(Love isGod, God is Love) ईश्वर का स्वरूप प्रेम का स्वरूप है। ईश्वरीय व्यवस्था प्रेम की (Moral order) है। यह (Revelation) तत्कालीन जनता को इतना अग्राह्य सिद्ध हुआ वे इस रूप को निगलने में असमर्थ हो गये और उन्होंने ईसा के के पार्थिव शरीर को नष्ट कर दिया-वे ईसा के शरीर को नष्ट कर सके। उसके दिव्य विचारों के रूप में उसकी आत्मा ने सारे भूमण्डल के मनुष्यों को प्रभावित किया। इस प्रकार एक एक कदम उठाता हुआ (Step by step) मैं में ही मानवता को इस बिन्दु पर लाया जिसमें अव्यक्त परमेश्वर (Umanfiest God) ही प्रेम के भाव के रूप में मानवीय हृदयों में प्रवेश करता हुआ दिखाई पड़ने लगता है।

किताब या धर्म ग्रन्थ को संशोधन से परे (Irrevisable) समझने वालों को पता होना चाहिये ईश्वर एक सनातन शक्ति है-अनन्त प्राणवान्-अनन्त सामर्थ्य और क्षमताओं से युक्त—यदि वह ईश्वर किताब आयतें या धर्म ग्रन्थ के मन्त्र लिखवा सकता है तो उन्हें फिर भी लिखवा सकता है, दोहरा सकता है, आवश्यकतानुसार फिर दोहरा सकता है। धर्म के देश काल सापेक्ष रूप बराबर ईश्वर के ही द्वारा दोहराये जायेंगे-और शुद्ध किये जायेंगे—कोई चूँ नहीं कर सकता। पुरानी पुस्तकों को अकाट्य बनाने से काम नहीं चलेगा। वे बराबर काल की कसौटी पर कसी जायेंगी।

आप रेडियो ब्रोडकास्ट सुनते हैं। बी०सी०सी० एक विशेष समाचार प्रसारित (Broad Cast) कर रहा है। बी०सी०सी० सारे संसार को खबर प्रेषित कर रहा है। पहले वह अंग्रेजी समझने वाले वर्ग के लिए अंग्रजी में करता है फिर योरोप की फ्रेन्च आदि भाषाओं में वही समाचार प्रसारित (Rely) कर रहा है। उसके बाद वह रशिया के लिये ब्रोडकास्ट (Broad cast) करता है फिर उसका ब्रोडकास्ट एशिया के लिये होता है, उर्दू में होता है, बँगला में होता है, अन्य भाषाओं में होता है। वही समाचार भिन्न भिन्न भाषायी वर्गों के लिए बार बार दोहराया जाता है। थोड़े थोड़े समय के बाद जब तक सारे संसार में वह समाचार उसी प्रकार न फैल जाय जिस प्रकार कि बी०बी०सी० चाहता है।

जब कि मानवीय स्तर (Human level) पर विचारों के प्रसार का ऐसा सुन्दर इन्तजाम है तो क्या ईश्वर में इतनी भी बुद्धि (intelligence) नहीं है कि वह जब सन्देश एक भाषा के जरिए एक वर्ग को दे रहा है तब दूसरे वर्ग को वही सन्देश दूसरी भाषा के माध्यम से दे।

ईश्वर को भी कोई विचार मानवता में प्रसारित करना होता है तब वह भी भिन्न-भिन्न भाषाओं में, भिन्न-भिन्न जन समुदायों में, भिन्न-भिन्न अवतारों के पैंगम्बरों के मुख से वही वही सन्देश प्रसारित करता है ताकि अधिक से अधिक मानवता उस कल्याणकारी विचार को समझ सके। जिस समय मोहम्मद के मुख से मैंने मध्य एशिया के मानव समुदाय को एक सन्देश दिया था—इस सृष्टि का नियंन्ता एक ईश्वर है—उस एक ईश्वर के अलावा दूसरा कोई पूजनीय नहीं है · करीब करीब उसी समय (कुछ पहले) मेरा दूसरा भोंपू—भारत उप महाद्वीप में एक-परमात्मा और जीव की उससे अभिन्न स्थिति का सन्देश बोल रहा था। शंकराचार्य ने भी "एक ब्रह्म द्वितीयं नास्ति" का सन्देश भारत के जन समुदाय को दिया और प्रायः वही बातें कहीं जो मोहम्मद ने दूसरे क्षेत्र (Area) में कहीं। क्योंकि बोलने वाला मैं एक था, भोंपू दो अलग अलग जगह पर लगे हुए थे। अब आप मुझसे पूंछेगे कि कि यह सब तो ठीक है पहले आप यह बताइये कि देशकाल सापेक्षता क्या है? यह देशकाल निरपेक्षता क्या है।

ईश्वर और जीव के बीच में अन्तःकरण है। ईश्वर प्रकृति के अन्दर विद्यमान (Immanent) भी है प्रकृति से पार भी है। "प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी"

देश-काल सापेक्ष धर्म

ईश्वरीय ज्ञान की धारा परात्पर परम पुरुष से चलती है और सत्-पुरुषों के अन्तःकरण से गुजरती है। ज्ञान धारा को ग्रहण करने वाला शिव का मस्तक शिव का अन्तःकरण ही है। वक्त वक्त पर जो परात्पर से ज्ञान धारायें चलती हैं उनका उद्देश्य सिर्फ यही होता है कि मानव पहले से अधिक समुन्नत और विकसित हो जाय, संसार में क्लेश और परेशानियाँ पहले की अपेक्षा कम हो जायँ। ज्ञान की ईश्वरीय धारा जब किसी महा पुरुष के अन्तःकरण में उतरती है—तो वह उसे ज्यों का त्यों अपने तत्कालीन समाज में नहीं उतार सकता। पहले तो उसे भाषा का सहारा ग्रहण करना पड़ेगा—फिर वह भाषा उस ज्ञान का माध्यम किस हद तक बन सकती है—भाषा बिम्ब उस ज्ञान को किस रूप से श्रोताओं के मानस तक पहुं-

चाते हैं फिर जिस वर्ग को वह ज्ञान दिया जा रहा है वह अपने अन्त:करण यन्त्रों द्वारा उस ज्ञान का कितना अंश ग्रहण कर पाता है—यह सब बातें मिलकर उस ईश्वरीय ज्ञान को देश कालीन जामा पहनाती हैं और देशकाल से आवृत्त होकर ही वह ज्ञान तत्कालीन जन समुदाय ग्रहण करता है। यह ज्ञान हर हालत में तत्कालीन समाज में कुछ न कुछ क्रांति और समुन्नति लाता है लेकिन युग बीतने के बाद परिस्थितियाँ और बदल जाने पर (Advanced) मानव मन पहले की अपेक्षा अधिक विकसित हो जाता है और ज्ञान का पिछला देश कालीन रूप बासी हो जाता है, मानव मन को फिर नई ताज़ी खुराक चाहिये और फिर युगानुसार परिवर्तनों की आवश्यकता महसूस होने लगती है। जैसे कि छ: वर्ष की लड़की के नाप की एक फ्राक सिलाई गई और बहुत सी फ्राके उस नाप की बनवाकर बाँटी गई—अब जहाँ जहाँ छ: वर्ष की लड़की होगी उन्हीं पर तो वह फ्राक फिट होगी। आठ दस वर्ष की लड़कियाँ तो उस फ्राक को यह कह कर छोड़ देंगी कि हम यह फ्राक नहीं लेते हमारे छोटी आती है उसी प्रकार जब मानवता आगे बढ़ जाती है, पिछली बार जो ज्ञान दिया गया था उससे (Out grow) कर जाती है, परमेश्वर उनकी ज्ञान पिपासा को फिर नयी ताजी ज्ञान खुराक (Dose) देकर शान्त करते हैं—पुराने ज्ञान से दूसरे नये Steps पग जोड़े जाते हैं, फिर ज्ञान तत्कालीन मानव की ज्ञान पिपासा को शान्त करने का साधन बनाया जाता है।

वेदों का रूप बदलता है—गीता फिर से कही जाती है—कुरान फिर से नये रूप में उतरती है—बाइबिल के टैक्स्ट (Text) में संशोधन हो सकता है।

यदि कोई धर्म यह हुज्जत करे कि वेदा: अपौरुषेया, कुरआन अमानवीय है, बाइबिल डिवाइन बुक (Divine Book) है इनमें समयानुकूल संशोधन नहीं हो सकते तो इन लोगों को मालुम होना चाहिये—मैं सनातन अव्यक्त अपने बोले हुए को बदल सकता हूं, मैं अल्लाह अपने लिखे हुए को काट सकता हूं—मैं डिवाइन (Divine) आप को नया सर्मन (Sermon) दे सकता हूं. मैं एक जीवित गाड (God) हूं, मरा हुआ शक्तिहीन निष्प्राण नहीं हूं। जिस तरह आप ने मेरी अव्यक्त प्रेरणा से लिखे गये इन धर्म ग्रन्थों को आदर दिया वैसे ही मेरी मर्जी से होने वाले संशोधनों को भी आप स्वीकार करिये क्योंकि सृष्टि चिर-नवीन है और सृष्टि कर्त्ता आप को ताजा युगानुकूल ज्ञान देने को प्रस्तुत है। अध्यात्म का यही नियम है।

देशकाल निरपेक्ष धर्म

अगर आप परावर दृष्टि विकसित (Develop) कर लें तो आप की

अन्तर्भेदिनी प्रज्ञा देशकालीन आवरण को चीर कर अनादि सत्य, मुझ तक, पहुंच सकती है।

मानव समुदाय को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातियों में बांटना—जिसे आप वर्णाश्रम के रूप में समझते हैं—यह कोई शाश्वत सार्वकालिक धर्म नहीं है किसी युग में विजित और विजेता जातियों का मिलन हुआ था और विजेता आर्यों के रक्त से अनुपात से मनुष्यों को समाज में ऊंचे नीचे काम सौंप दिये थे, जिसमें जितना आर्य रक्त अधिक था उन्हें उतना ही बढ़िया काम सौंप दिया गया था और विजित जातियों के लोगों को, युद्ध बन्दियों को, नीचे दर्जे का काम सौंपा गया था। युद्ध वन्दी विजित तथा काले वर्ग के थे, विजेता गोर वर्ण। गोरवर्ण विजेताओं को ऊंचे दर्जे के कार्य मिले और विजित व्यक्तियों को घटिया रद्दी काम। इस प्रकार की व्यवस्था को वर्णाश्रम धर्म का नाम दिया गया था। ऊंची जाति या गोर वर्ण के लोग सैनिक बने, राजा व राज कर्मचारी वर्ग बने, पुरोहित आदि बने, कुछ लोग कृषक व व्यापारी बने और विजित कृष्णांग-टट्टी पाखाने उठाने वाले, मुर्दों का काम करने वाले, सड़कें आदि साफ करने वाले, मजदूर चर्मकार चांडाल आदि बने। इस प्रकार की यह व्यवस्था देशकाल सापेक्ष थी यानी यह उस समय के अनुरूप थी लेकिन वक्त अव बदल गया है, न ही अब विजेता और विजित का भेद (Distinction) नहीं रहा है, न काले और गोरे मनुष्यों का भेद—दोनों का सगम हो चुका है अब यह चातुर्वण्य व्यवस्था त्याज्य हो चुकी है और पुरानी वर्ण व्यवस्था के आधार पर वनी हुई जातियां अमान्य और अनुचित हो चुकी हैं। आज की जातियाँ काम के आधार पर नहीं हैं।

हांलाकि काम के आधार पर देखो तो—सच ही कपड़ों की मिल का मालिक एक बड़ा जुलाहा ही है, स्टील फैक्टरीज का स्वामी लुहार है, ब्रान्डी का निर्माण करने वाला कलार है और जूतों की बिजनेस व निर्माण (Manufacture) करनेवाला सेठ चर्मकार है। लेकिन क्या तुम उपरोक्त सज्जनों को उनके काम के आधार पर नीची जातियों में गिन सकते हो। उन्हें चमार, जुलाहा, कलार वगैरा कहकर पुकार सकते हो। अगर कोई ब्राह्मण है इस तत्कालीन व्यवस्था में तो कर्म के अनुसार प्रोफेसर (यूनिवर्सिटी) अध्यापक, रिसर्च स्कालर, लेखक विद्वान् ही ब्राह्मण हो सकते हैं।

यदि आज कोई क्षत्रिय है तो मिलिटरी (Military) के जनरल (General) मेजर (Majors) ब्रिगेडियर (Brigadiers) कैप्टन (Captains)

और सैनिक जवान ही हो सकते हैं, जो देश को रक्षा करते हैं वही शत्रु से त्राण करने बाले क्षत्रिय वर्ग हैं। यदि आज कोई वैश्य है—तो ये सभी व्यापारी, सभी कृषक-फैक्टरियों में काम करने वाले मजदूर, मैकेनिक, टैक्नीशियन्स वैश्य हैं। क्योंकि प्रकारान्तर से ये सभी देश की अर्थ व्यवस्था में भाग लेते हैं और शूद्र शब्द आप अपनी डिक्शनरी (Dictionary) से हटा दीजिए यह किसीको अच्छा नहीं लगता। कम से कम मैं तो शूद्र उसी व्यक्ति को कहूंगा जो स्वयं मेहनत न कर दूसरों की मेहनत पर जीना चाहता है। जो दूसरों के श्रम को शोषण (Expliot) कर खुद ऐश करना चाहता है (शोषण कर्ता) कुछ लोगों ने भ्रम फैला रखा है कि मैं चातुर्वण्य व्यवस्था का पोषक था। मैंने ही गीता में चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः का सूत्र दिया था।

यह बात गलत है इसीलिए आज हज़ारों साल बाद मुझे फिर इस भूखण्ड के निवासियों को समझाना पड़ रहा है—इस सारी व्यवस्था के मूल में देशकाल निरपेक्ष सत्य यही है कि अपनी अपनी योग्यता और प्रवृत्ति के अनुसार लोग व्यवसाय स्वीकार (Profession follow) करेंगे–इसमें उन्हें ऊंचा नीचा पद (Status) देना बहुत ही अनुचित है—और न ही यह वर्गीकरण समाज की व्यवस्था का आधार हो सकता है और न ही यह वर्गीकरण मानवीय सम्बन्धों के बीच दीवार बनकर खड़ा होना चाहिये। मानवीय सम्बन्धों का स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्धों का आधार शुद्ध प्रेम है। अर्थ को उसका आधार बनाने पर उसका आध्यात्मिक रूप नष्ट हो जाता है।

इसलिए मैं फिर एक वार समझाता हूं भरत खण्ड के निवासियों जिस जाति व्यवस्था को तुम जकड़े हुए हो वह गल चुकी है संड़ाध पैदा कर रही है उसे उठाकर दूर फेंक दो शुद्ध मानव धर्म ग्रहण करो? मनुष्य की मर्यादा बहुत ऊंची है—श्रम की शक्ति और मर्यादा महान् है–और मानवीय सम्बन्धों का आधार प्रेम है। उस प्रेम की दिव्यता को पहचानो। प्रेम को अपने जीवन में प्रकाश फैलाने दो। तुम्हारी इस सृष्टि में अगर मैं कहीं ज्यों का त्यों विद्यमान हूं तो वह प्रेम ही है। क्या तुम्हें मेरे और रुक्मिणी के परिणय की याद नहीं है–उस अकेली लड़की के प्रेम का सम्मान करने के लिए क्या मैंने सम्राटों ओर राजाओं की शस्त्र सुसज्जित सेन से लोहा नहीं लिया था?

इसी प्रकार से मध्य पूर्व के रहने वाले मोहम्मद के अनुयायियों से भी मुझे कुछ कहना है–

जिस समय मोहम्मद का अरब में आविर्भाव हुआ था उस समय अरब समाज की दशा बहुत गिरी हुई थी। आपस में लड़ाई झगड़े, सामाजिक अव्यवस्था, नारी-अपहरण, कबीलावाद और कबीले का अलग देवता था जो कि दूसरे कबीले के काल्पनिक देवता से टकरा रहा था। सब मिलाकर तत्कालीन समाज में एक ऐसा घृणित बातावरण फैला हुआ था जिसे मोहम्मद की आत्मा सहन नहीं कर सकी थी और उस वातावरण को शुद्ध करने के लिए वह कृत संकल्प हो उठे।

कुरान में दी हुई काफिरों को चेतावनी और अजाब की धमकी देश काल सापेक्ष थी—यानी यह चेतावनी और धमकी अरब लोगों के ही लिये ही थी—मोहम्मद का उद्देश्य अरब समाज को ही सुव्यवस्थित तथा समुन्नत और शुद्ध करना था। शिर्क की प्रथा भी अरबों में ही थी—अलग-अलग कबीलों में रहकर अलग-अलग देवताओं की पूजा भी अरब के फिरकों में ही थी। कुफ्र और शिर्क का गढ़ भी अरब समाज था और इसी को शुद्ध करने के लिए सर्व शक्तिमान अल्लाह ने मोहम्मद के माध्यम से उस भटके हुए समाज को ज्ञान दिया था। यह देशकाल सापेक्ष ज्ञान था और स्वयं मोहम्मद की भी यह मंशा न थी कि अरब समाज के सुधार के लिए जो ज्ञान प्रयुक्त हो रहा है उसे हिन्द या अन्य किसी देश में Apply किया जाय। बाहरी देशों के बारे में उन्होंने कुछ नहीं सोचा था।

गलती तब आरम्भ हुई जब एक देशकाल सापेक्ष सिद्धान्त को अन्य देशों और युगों में बिना सोचे समझे बल पूर्वक प्रसारित किया जाने लगा। इन लोगों ने शांति पूर्वक बैठकर कभी दूसरी जाति वालों से विचार विमर्श न किया न ही उन्होंने दूसरे के शास्त्रों का शान्ति से अवलोकन किया।

यदि वे शान्ति और धैर्य का रास्ता अपनाते तो पाते कि कुरआन का महान् देशकाल निरपेक्ष सत्य तौहीद, एकेश्वर वाद पहले से भारत में या क्रिश्चियन्स में मौजूद था।

पहले प्रकृति की शक्तियों की पूजा हुई थी फिर प्रकृति में व्याप्त एक सनातन सत्ता पकड़ में आ गई थी—उपनिषद् से लेकर शंकराचार्य तक "एकोदेव सर्व भूतेषु गूढ़ सर्व व्यापी सर्वभूतान्तरात्मा" का निर्घोष हो चुका था। साधारण मनुष्य भी जो मूर्ति की पूजा करता दिखाई देता था वह उस मूर्ति के माध्यम से एक ही अव्यक्त परमात्मा की पूजा कर रहा था।

भारत में ऐसा कुछ न था कि काफिर और शिर्क वाली थ्योरी (Theory) का प्रयोग (Application) यहाँ किया जाता। बिना सोचे समझे देशकाल सापेक्ष धर्म को सार्वकालिक सत्य के रूप में दूसरे वर्गों, दूसरे देशकाल में बलपूर्वक प्रतिष्ठित करने के प्रयोग में तौहीद का सात्विक अंश खो गया—वह एक विकृत रूप में तमोगुणी धर्म के रूप में आई। लोगों को इसी कारण उससे एलर्जी (Allergy) हो गई।

इस प्रकार अगर हम देशकाल सापेक्ष आवरण को निचोड़ें तो देशकाल से परे सत्य का दर्शन हो सकता है।

तौहीद—एकेश्वरवाद का देशकाल निरपेक्ष सत्य यह है कि सृष्टि की नियामक सत्ता एक है, एक ही शक्ति है जो भूत-जगत् व आत्म जगत् की स्वामिनी है।

लेकिन तौहीद का व्यवहार जगत् में जब प्रयोग होगा तब खुदा का एक होना (Oneness) सृष्टि की व सृष्टि के समस्त प्राणियों की एकता (Oneness) के रूप में प्रकट होगा। जीव मात्र के प्रति आन्तरिक प्रेम व्यवहारिक मैत्री ही तौहीद का सच्चा रूप होगा। कुफ्र का सिद्धान्त तौहीद के सिद्धान्त के खिलाफ है। जब एक ही खुदा है—तो दूसरा आदमी प्रकारान्तर से उसी खुदा की पूजा इबादत कर रहा है। अपने खुदा को काफिर के खुदा से अलग समझना तो खुद ही दो खुदा के सिद्धांत को मानना हुआ। इसलिए दूसरे मत के अनुसार ईश्वर की उपासना करने वाले खुद ही अपने खुदा का अपमान करते हैं और तौहीद के सिद्धान्त के खिलाफ चलते हैं और इस तरह ईश्वरीय चक्र (Grand design) के खिलाफ चलकर स्वय ही अजाब को बटोरते हैं?

अगर हम वैज्ञानिक दृष्टि को खुली रखें तो क्यों नहीं हमें देशकाल सापेक्ष धर्मों में से देशकाल निरपेक्ष सत्य दिखाई दे सकता है।

यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि जल का सपर्क मनुष्य को निर्मलता, स्वच्छता जीवन और प्राण शक्ति देता है। स्नान से शरीर स्वस्थ और निर्मल होता है। यह हुआ धर्म निरपेक्ष सत्य—अब इस पर देशकाल का आवरण चढ़ता है कोई कहता है चार बजे उठकर ब्राह्म मुहूर्त में गगा में डुबकी लगाओ—कोई कहता है हाथ को कोहनी तक और पैरों को घुटने तक धोकर वजू करो। कोई मध्यान्ह स्नान पसन्द कर रहा है. कोई प्रातः कालीन, कोई नैश स्नान। यह सब बातें देशकाल पर

निर्भर करती हैं—जहाँ समुद्र मिल रहा है। वहाँ सागर स्नान किया जायेगा—जहाँ पानी कम है वहाँ वजू किया जायेगा—यह कोई सार्वभौमिक सत्य नहीं है। जहाँ पानी इफरात से है वहाँ मनुष्य क्यों वजू ही करके रह जायेगा वह पूर्ण स्नान क्यों न करेगा ?

याद रखिये तात्विक या वैज्ञानिक दृष्टि विकसित (Develop) करने पर मनुष्य प्रथाओं और रिवाजों, मृत सिद्धान्तों के शिकन्जें में कसे हुए मूल सत्य को पा सकता है। देशकाल निरपेक्ष सत्य है। एक परात्पर सत्ता है जिसे ईश्वर खुदा या कुछ भी कह सकते हैं। एक ईश्वर या उसकी सृष्टि एक देशकाल निरपेक्ष सत्य है। (तौहीद)

लेकिन यह सत्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता है—

"ईश्वर सृष्टि में है और सृष्टि ईश्वर में है" यह सत्य पहले वाले सत्य से एक कदम आगे है।

God is immanent in the universe and universe is within the orbit of God.

—————इससे भी एक कदम आगे चलकर और भी एक देशकाल निरपेक्ष सत्य है। अव्यक्त, वेनियाज, खुदा या ईश्वर ही व्यक्त होकर व्यक्त (Manifest) सृष्टि के रूप में प्रत्यक्ष हो रहा है जो एक छोर पर अव्यक्त खुदा है दूसरे छोर पर वही स्थूल दृश्य सृष्टि है। एक ओर अव्यक्त प्रोजेक्ट (Unmanifest profector) है दूसरी ओर (projected reality) है जो कि दृष्ट है।

अध्यात्म जगत् के ये देशकाल निरपेक्ष सत्य एक ही बार में घोटकर मानवता को पिलाये नहीं जा सकते। ईश्वर मनुष्य को उतनी ही डोज (Dose) देता है जितनी वह एक दफा में झेल सके। कभी किसी भूखण्ड में रहने वाले एक वर्ग को एक डोज़ दे देता है फिर उसी क्रम में दूसरी डोज़ दूसरे भूखण्ड में दे देता है। कभी कभी एक साथ ही एक सत्य भिन्न-भिन्न स्थानों में प्रकट किया जाता है। ज्ञान वितरण की यह ईश्वरीय प्रक्रिया इसलिए चल रही है क्योंकि ईश्वर अपने चिदंशों या पुत्रों को सुखी बनाना चाहता है। उन्हें ज्ञान से मण्डित करना चाहता है. वह अपनी सृष्टि के निवासियों को अंधेरे से उजाले की ओर ले जाना चाहता है इसलिये अपनी सृष्टि के रहस्यों को, अपने रहस्यों को बहुत खुशी से अपने बालकों को बताता

है लेकिन यह प्रक्रिया क्रमानुसार है और कभी किसी मत के अनुयायियों को यह नहीं समझना चाहिये कि उनकी किताब ही ज्ञान की अन्तिम सीमा है उनके नवी के आगे कोई नबी नहीं होगा।

ईश्वर ज्ञान का वह असीम सागर है कि बहुत कुछ देने पर भी जो कुछ बचता है वह अनन्त ही होता है, जिसने भी परात्पर शक्ति को किताबों में, मतों में, वर्गों में, जातियों में कैद करने की कोशिश की वह मारा गया क्योंकि ईश्वर असीम है—सीमाओं में कभी बाँधा नहीं जा सकता।

He will always transcend.

———

बुद्धियोग

अथवा

अविकम्प योग (ऐश्वर योग)

The unshakable Buddhi Yoga.

"तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं त येनमाम् उपयान्ति तें।"

सनातन अव्यक्त परिपूर्णतम परात्पर का अपने चिदंशों के साथ बड़ा गहरा नाता है। छोटे से छोटे जीव तक उनकी सहानुभूति की धारायें उमड़-घुमड़ कर वह रही है चींटी की पखवेजर बाजे सो भी साहब सुनता है।' यों वे विश्व से परे अपनी अनन्त सनातन अव्यक्त सत्ता में विराजमान हैं लेकिन वे विश्व में व्याप्त भी हैं। नन्हें से नन्हा जीव उनकी छाती से लगा हुआ है और वे उसके हृदय की धड़कन सुन रहे हैं। विश्व पिता अपने प्यारे वच्चों के प्रति उदासीन और निरपेक्ष कैसे हो सकता है।

इसलिए जब कभी उनका कोई भी चिदंश उन्हें प्यार करने लगता है तो उनका हृदय उस वालक के प्रति ममता से भर जाता है। प्यार का पारावार उस चेतना और प्यार का महार्णव उस चिदंश जीव बच्चे को अपनी बांहों के घेरे में लेने के लिए उत्कंठित हो उठता है। जीव के हृदय में प्यार का एक स्पंदन प्रभु के हृदय में सनातन अव्यक्त में प्यार के सहस्त्रों स्पन्दनों को उठा देता है। शाश्वत पुरुष अपने चिदंश के प्रति उदासीन कभी हो नहीं सकता।

तो यदि कोई जीव स्नेह पूर्वक उनका ध्यान करता है—प्रेम विवश होकर उनके बारे मैं जानने की कोशिश करता है—उनके बारे में सोचता रहता है—उसके हृदय में एक व्याकुलता, एक तड़प उत्पन्न होती है। काश मैं उस किसी को जान सकता, उस अदृष्ट प्रियतम को, उस देवाधिदेव को जो उन सबका स्वामी सृष्टा

और सुहृद है—उसकी सम्पूर्ण चेतना उस प्राण प्रियतम की खोज में लग जाती है-उसका मन उसके प्राण उसकी बुद्धि अदृष्ट प्रियतम के स्वप्नों में खो जाती है—प्यार से विकल जीव परात्पर के अदृष्ट प्रियतम के विरह में व्याकुल हो जाता है। जब जीव की ऐसी विकल अवस्था हो जाती है कि सनातन प्रभु (अव्यक्त) के विरह में उसकी आत्म चेतना सुलगने लगती है तब उस जीव पर कृपा करके शाश्वत चिन्मय प्रभु अपने अव्यक्त रूप से उसके अन्तःकरण के (Helipad) पर उतर आते हैं और जीव के हाथों में ज्ञान की बुद्धियोग की (Illumined intelligence) टार्च (Torch) थमा देते हैं। उस टार्च के आलोक में जीव को अपनी मंजिल स्पष्टतया दिखाई देने लगती है—उसका गलत राहों पर भटकना सदा के मिट जाता है और और वह सधे हुए कदमों से अपने गन्तव्य की ओर बढ़ने लगता है। इसीको मैंने गीता में कहा है कि मैं जीव को ऐसी अवस्था में बुद्धियोग प्रदान करता हूं।

प्रेम का चरम फल ज्ञान है और ज्ञान का चरम फल ज्ञानोत्तर प्रेम है और दोनों का एक साथ फल अव्यक्त सनातन में लय (Merge) हो जाता है। विशते तदनन्तरम् परम आत्मा के प्रेम में डूबे हुए चिदंश पर कृपा करके परात्पर स्वयं अपनी ज्ञान किरण द्वारा अन्तःकरण के हैलीपैड (Helipad) पर उतरते हैं—उस किरण के द्वारा मनुष्य के अज्ञान और भ्रान्ति का अन्धकार मिट जाता है और दूर दूर उसका मार्ग आलोकित हो उठता है।

विभूति योग

जो कुछ भी है जहां कहीं भी
जड़ चेतन या सार असार।
विश्व चेतने प्राण शक्ति तू
करती सबमें नित्य विहार।।
अणु अणु में स्पन्दित होती
भगवति तेरी जीव कला।
आत्म शक्ति तू अखिल विश्व की
स्तुति कैसे करूं भला।।

"यच्चापि सर्व भूतानां बीजं तदहमर्जुन
न तदस्ति विना मया भूतं चराचरम।।

ज्ञान की टार्च (Torch) जल जाने पर सहसा जीव को ऐसी बहुत सी दिखाई देने लगती हैं जो पहले दिखाई नहीं दे रही थीं। जिस परमेश्वर की उसे

खोज थी और जो छिपा हुआ और अदृष्ट मालूम पड़ता था वह प्रत्यक्ष और एकदम आंखों के सामने खड़ा था।

यह सारा संसार चराचर जगत् विश्व प्रभु का स्थूल शरीर है इसके कण-कण में उनकी आत्म चेतना प्रवाहित हो रही है। संसार में जहाँ कहीं भी सौन्दर्य है, विभूति है, पराक्रम है, जो कोई भी ऐश्वर्य युक्त है, पराक्रम युक्त है, सौन्दर्य युक्त है वहीं ईश्वरीय तेज स्वयं अठखेलियाँ कर रहा है, लहरा रहा है। क्योंकि समस्त पराक्रमों, समस्त सौन्दर्यों, समस्त क्षमताओं का अक्षय अव्यय भण्डार अव्यक्त-सनातन (अल्लाह) के अलावा है कौन? ज्ञानी के ज्ञान चक्षु जब खुलते हैं तब उसे दिखाई देता हैं—हर जीवित प्राणी के अन्दर चेतना के रूप में शाश्वत पुरुष की ही चेतना लहरा रही है।

जीवित प्राणी जिस मन के द्वारा वहिर्जगत् की सवेदनायें ग्रहण कर रहा है उस मन के रूप में परात्पर चिन्मय पुरुष का मन (Operate) कर रहा है—सक्रिय है–उसक मन ही हर अवस्था (State) के रूप में जो भाव इच्छा ज्ञान (Feeling willing cognition) की मानसिक धारायें बह रही हैं। उन सबका उद्गम स्थान वह सनातन अव्यक्त ही है। मानव के अन्तःकरण में चेतना धारायें, चेतना के उसी महार्णव से आ रही हैं। हर जीव के अन्तःकरण में स्थित आत्मा के रूप में वह परात्पर चिन्मय पुरुष स्वय बैठा हुआ है। उस अव्यक्त सनातन की किस किस विभूति का कहां तक वर्णन किया जाय—अनन्त विश्व परात्पर अव्यय सत्ता के एक अंश मात्र में स्थित है अपनी अंश मात्र शक्ति से वे इस विशाल विराट् को धारण किए हुए हैं और इस पर भी उनकी क्षमतायें और शक्तियां अक्षय और अव्यय हैं। इस संसार में जहां कहीं जो भी ऐश्वर्यवान्, विभूतिवान्, तेजोमय दिखाई देता है वहां ज्ञानी अपने परम प्रभु को पहचान कर पुलकित हो उठता है क्योंकि समस्त तेजों में उसे तेजों का आगार चिन्मय अव्यक्त परम पुरुष प्रदीप्त दिखाई देता है।

पश्य में योग मैश्वरम्

कुछ लोगों का प्रश्न है कि हम लोग कैसे समझें कैसे योग अपने जीवन में उतारें, धारण करें?

मेरा उनसे प्रश्न है योग किसका किससे। क्योंकि योग का अर्थ है 'मिलन' एकत्व (Oneness) है तो किसकी एकता (Oneness) किसके साथ। वे उत्तर

देते हैं—हमारी एकता (Oneness) परमात्मा के साथ, हमारी आत्मा का योग परमात्मा के साथ।

इस प्रश्न के उत्तर में मेरा निवेदन है आप की आत्मा का, योग तो हर समय परात्पर सत्ता के साथ है जिन्हें मैं सनातन-अव्यक्त कहता हूं, हर समय आपकी आत्मा आध्यात्मिक नियमों के अनुसार ईश्वरीय संकल्प (Divine wil) के अनुसार सनातन अव्यक्त परमात्मा से युक्त है, एक (One) है, बात सिर्फ जानने भर की और इस जानने भर को ही ज्ञान कहते हैं। मैं इस बात को और आगे समझाऊंगा— न केवल आपकी आत्मा ही सनातन अव्यक्त से युक्त है, मिली हुई है—बल्कि आप का आदि भौतिक शरीर विश्व भी के (Cosmic) पंचमहाभूतों से युक्त है—आपका मन विराट् के मन का अंश है, आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उस विराट् व्यक्तित्व में समाया हुआ है जिसे हम विश्वात्मा कहते हैं।

हर इकाई (Individual unit) हर चिदंश का विश्वात्मा (Cosmic Supreme spirit) के साथ योग तो रखा रखाया है जिस नियम के अनुसार हर आत्मा सनातन अव्यक्त से निकल रही है और पुन: उसमें समा रही है उस नियम के अनुसार योग तो प्रतिक्षण है, आवश्यकता सिर्फ इस बात की है हम तथ्य को समझ लें, हृदयंगम कर लें और तब देखिये यह ज्ञान आपके जीवन में क्या चमत्कार लाता है।

आप इस तथ्य को इस प्रकार समझिये—एक बड़ा भारी—अनन्त असीम क्षितिज को छूता हुआ महासागर है—इतना विशाल इतना असीम कि हर दिशा में उसकी लहरों के अलावा और कुछ नहीं दिखाई दे रहा है। इस अनन्त महासागर के वक्ष से सैकड़ों जल के फव्वारे छूट रहे हैं, फव्वारों का जल हवा में उछल उछल कर उसी सागर में गिर रहा है। उसी सागर के जल से फव्वारे उछल रहे हैं और उसी में छूट रहे हैं। उसी सागर में फव्वारों का जल गिरकर अनन्त महासागर की अगाध जलराशि में विलीन हो रहा है। आप बताइये फव्वारे का जल महासागर की जलराशि से युक्त है या वियुक्त।

———

सनातन अव्यक्त और चिदंश

मनुष्य एहसास नहीं कर पाता है कि वह अपने ईश्वर से अपने खुदा से कितना युक्त है कितना एकस्थ है। अव्यक्त खिलाड़ी ने ऐसा खेल तमाशा फैला रखा है कि मनुष्य के जीवन के छोटे से छोटे ब्योरे की स्वय योजना बनाते हुए भी वह स्वयं परोक्ष में चला गया है। वह स्वय नहीं चाहता कि लोग उसे जाने। अपने अंश जीव को उसने स्वतन्त्र जीवन, कर्म स्वतन्त्रता का आभास कुछ ऐसा दे रखा है कि मनुष्य का सीमित अहंकार अपने को परिवेश का स्वामी और समस्त कर्मों का कर्ता समझता रहे। मा घर के अन्दर बैठी अपने गृह कार्यों में लगी रहती है बच्चा उसके सामने लौन में खेल रहा है। बच्चा समझता है मैं आजाद हूं आजादी से खेल रहा हूं लेकिन वह यह नहीं जानता कि भीतर बैठी हुई मा का ध्यान प्रतिक्षण उसकी ओर लगा हुआ हैं। वह भीतर बैठी खिड़की से बच्चे को बराबर देख रही है बच्चा उसकी नजरों से ओझल नहीं हो सकता—जरा गेट से बाहर हुआ नहीं कि मा की आवाज लगी देखो अकेले बाहर मत जाना। जरा रोने की आवाज आई नहीं कि मा बाहर निकल कर आई नहीं। साथ ही खाने का वक्त होते ही बच्चे को चाहे कितना ही खेलने में चाहे कितना मस्त क्यों न हो बच्चा बुला लिया जायेगा।

बस इसी तरह की स्वतन्त्रता जीव की भी है :

सनातन अव्यक्त, परात्पर प्रभु वेनियाज, अल्लाह, जीव के पिता भी हैं, भ्राता भी हैं, शरण और शरण्य भी हैं—वे जीव के चिर कालीन अविनाशी सुहृद भ है—जब सांसारिक मां अपने बच्चे का इतना ख्याल रखती है तो जो जगदम्बा अनन्त प्रेम, अनन्त अक्षय शक्ति और ज्ञान की भण्डारिणी, है उसका अपने जीव पुत्र पर कितना भाव होगा। वह अपने पुत्र के प्रति कितनी चिन्तित (Concerned) होगी यह बात सोचने की है। सनातन अव्यक्त Lord of spirit को चाहे आप परम-पुरुष कह लीजिये या जगदम्बा वह अपने जीव पुत्र के जीवन की छोटी से छोटी

घटना के प्रति जागरुक है—बड़ी विशद प्लान (Plan) बनाकर वह अपने जीव पुत्र के अध्याय खोलती (Chapters unfold) है। उनके Grand design महान् चक्र में हर बच्चा अपनी जगह पर अपनी रोल में स्थित है—मा बच्चे का मार्ग प्रशस्त ही करेगी।

ठीक यही बात उस महान परात्परा सत्ता की है जो इस जीव-पुत्र की माता भी है, धाता, पितामह, सुहृद भी है आप जो चाहे रिश्ता जोड़ लीजये क्योंकि इस जगत और जगत के प्राणियों की प्रभव (उत्पत्ति) निवास स्थान और अन्तिम लय उसी अक्षय चिन्मय महार्णव में होना है तो जिस अव्यय चिन्महार्णव में हमारा सब कुछ है—उत्पति, निवास व अन्तिम विलय तो उससे हमारा निरंतर योग हुआ या नहीं।

ईश्वर या Divine कोई निष्प्राण सत्ता नहीं है वह एक प्राणवान्, ज्ञानवान्, क्षमतावान्, चेतनावान्, जीवन्त जागृत व्यक्तित्व (Personality) है उसकी ईश्वरीय मर्जी से ही चेतना या Spirit पहले अव्याकृता प्रकृति फिर आकार युक्त प्रकृति के रूप में विकसित (Devlop) हो रहा है। वह स्वय ही वह चेतना है जो इस परिवर्तन को ग्रहण कर व्यक्त जगत (Manifest world) के रूप में प्रकट हो रही है—चेतना के इस अनन्त, असीम, पारावार के एक अंश मात्र से ही विश्व गर्भ (Universe potentate) फिर व्यक्त जगत (Manifest world) प्रकट हो रहा है, 'एकांशेन स्थितो जगत' और बाकी तमाम पारावार देश और काल की सीमाओं से परे निर्बाध चिरन्तन से रूप बहता चला आ रहा है। वह परात्पर जब देशकाल सापेक्ष परिस्थितियों को ग्रहण कर विश्व के रूप में परिणत हुआ तब विश्व का निर्माण हुआ, देशकाल सापेक्ष विश्व जिसमें अगणित ग्रह नक्षत्र, अनकों सौर मण्डल, अनन्त अथाह समुद्रों, पर्वतों, नदियों, रेगिस्तानों का समावेश है—यदि आप नीचे बिस्तर पर लेटे हुए, ऊपर गगन मण्डल पर दृष्टिपात करें तो गगन का ओर छोर नहीं तारों की गिनती नहीं नीचे अरण्य की ओर पर्वतमाला पर खड़े हुए वृक्षों की ओर दृष्टिपात करें तो वृक्षों की गिनती नहीं पेड़ों पर चहचहाते हुए पक्षियों की ओर देखें तो पक्षियों की गिनती नही पृथ्वी पर रेंगते हुये कीड़ों आदि को देखें तो उनकी गिनती नहीं। यह देशकाल सापेक्ष जगत जब इतना विशाल, इतना असीम है—तो अनन्त चेतना का वह असीम सागर जिसके एक अंश से विश्व प्रकट और लय हो रहा है वह कितना असीम, और अचिन्त्य होगा।

तो आप समझें आपके इस सम्पूर्ण विश्व की स्थिति परात्पर सत्ता में इस प्रकार है जिस प्रकार एक छोटे से फव्वारे की सागर में जल का फव्वारा सागर से उठ रहा है। उसी में गिर रहा है—उसी सागर से पानी उठ रहा है उसी सागर में लय हो रहा है। फव्वारा सागर के जल से पूर्णतया युक्त है इसी प्रकार यह प्रकृति निर्मित विश्व परात्पर सत्ता से पूर्ण रूपेण युक्त है। प्राकृतिक तत्वों के फव्वारे, आत्माओं, चिदंशों के फव्वारे परात्पर से ही उछल रहे हैं और अन्त में उसी में लय हो रहे हैं। यह विश्व, यह व्यक्त जगत (Manifest world) अपने सम्पूर्ण जड़ चेतन तत्वों के साथ परात्पर सत्ता से युक्त हैं और उसी परात्पर में उसकी स्थिति निवास और प्रलय है। विश्व का परात्पर से पूर्ण योग है।

अब फव्वारे की उपमा को और आगे बढ़ाइये।

फव्वारे में जल की असंख्य बूंदे उछल रही है ये बूंदे उसी महासागर से, फव्वारे की फुहारों के रूप में उछल रही हैं—वही असंख्य बूंदे कुछ क्षण वायुमण्डल में रहकर फिर उसी महासागर में गिर रही हैं, लय हो रही है—फिर बूंदे उछल रही हैं और उसी में गिर रही हैं इस प्रकार महासागर और उसकी बूंदों की उछाल का खेल चल रहा है।

आत्म-तत्व, Spirit चिति के अनन्त महार्णव से जो विश्वात्मा रूपी फव्वारा छूट रहा हैं उसकी धारायें भी उसी महासागर से उठ रही हैं अनन्त अगणित आत्मायें चित महासागर से (Ocean of spirit) चित महासागर से निकल रही हैं अनन्त देश और काल में यह क्रिया चल रही है समय के कुछ अंशों में (In time) ये आत्मायें अपना स्वतन्त्र अस्तित्व अनुभव करती हैं जैसे फव्वारे की बूंदें समुद्र से ऊपर उठकर उछलती हुई दूर-दूर तक छिटकने लगती हैं और हर बिन्दु का अस्तित्व अलग दिखाई देने लगता है वैसे ही सनातन अव्यक्त से उछलती हुई हर आत्मा व्यक्त जगत (Manifest world में अपनी एक स्वतन्त्र हस्ती बनाती है फिर उसी सनातन अव्यक्त में Eternlly unmanifest में अपनी स्वतन्त्र सत्ता को लय कर देती है। अगाध महासागर से फिर नई बूंदें नई आत्मायें उछलती हैं फिर वे भूत जगत के सम्पर्क में आकर नई हस्ती धारण करती हैं फिर चक्र पूरा कर उसी चिति के महासागर में लय हो जाती हैं। असंख्य आत्माओं के निकलने और लय होने पर भी महासागर ज्यों का त्यों रहता है न कम न ज्यादा तो यह आत्मायें जो भूत जगत (Organic matter) के सम्पर्क में आकर जीवित व्यक्तित्व धारण

करती हैं इनमें परात्पर सनातन अव्यक्त की चेतना धारा सीधी बही चली आ रही है जैसे कि फव्वारे की फुहारें सीधी महासागर के जल को खींच रही हैं।

जीवित व्यक्तित्व जो हमारे चारों ओर हंस खेल रहे हैं, हम स्वयं भी उनमें से हैं—ये परात्पर के सीधे चिदंश हैं। एकदम सीधा सम्बन्ध (Direct Link) उस अव्यक्त विश्व-आत्म-चेतना (Universal Consciousness) से है जिसे हम God या ईश्वर कहते हैं।

इन जीवित व्यक्तियों के अन्दर जो भगवान् का लघु अंश है उसे ही हम चिदंश (Individual unit of Spirit) अन्तर्यामी कहते हैं। मेरे अन्दर जो ईश्वर का अंश या तेज बैठा है उसे मैंने अन्तर्यामी नाम दिया है—दूसरे जीवित व्यक्तियों में जो चिदंश काम (Operate) कर रहा है उसे मैं बहिर्यामी या बहिरात्मा पुकारता हूं।

विश्वात्मा

The cosmic person

सारे विश्व Universe) या (Cosmos) को जो कि मैटर का बना हुआ है—उसमें परात्पर की एक शुद्ध चेतना धारा प्रविष्ट है—जैसे मेरे शरीर में मेरी एक आत्मा है वैसे ही सम्पूर्ण विश्व रूप भगवान् की एक देह है। व्यक्त स्थूल शरीर (Manifest body) है उसमें सूक्ष्म आत्मा, के रूप में परात्पर की चेतना प्रविष्ट है एक मन, बुद्धि एवं अहं (Ego) के साथ वे अपना एक व्यक्तित्व रखते हैं विश्व-देह में विश्वात्मा प्रविष्ट है। सारा विश्व एक देवाधिदेव है। (Cosmic) विश्व की एक (Personality) व्यक्तित्व है। जो चीज हमारे अन्दर व्यक्ति के स्तर पर (Individual level) पर है वही विश्व के स्तर (Gosmic level) पर भी है। जिस तरह हमारी आत्मा है, उसी तरह विराट् या विश्व की भी एक आत्मा है जो विश्वात्मा कहलाती है। हमारा मन है, तो विश्वात्मा का भी मन है, जो समस्त छोटे मनो का जनक है। हमारी बुद्धि है, तो विश्वदेव की बड़ी जबरदस्त दिव्य प्रज्ञा (Divine intelligence) है जो असंख्य जीवों के भाग्यों को प्रारब्धों को नियत करती है, ब्रह्माण्ड के भौतिक नियमों के पीछे विश्व-देव का विवेकपूर्ण मन (Rational mind) काम कर रहा है। हर चीज विराट् के स्तर पर मोजूद है। विराट् का प्यार, विराट् का क्रोध, काम, रति, क्षोभ मोह, जो कुछ एक (Individual) मनुष्य के साथ चलते हैं, विराट् देवता के पास वे सब चीजें पहले से ही मौजूद हैं, बल्कि कहना चाहिए मनुष्य की हर मनोमयी (Psychic) या शारीरिक स्थिति (Physical aspect) विराट् विश्व-देव के (Cosmic psychic) या (Physical mechanism) के एक अंश हैं।

यदि एक विशिष्ट जीव के रूप में एक अहं (Ego) है, तो विराट् देवता या विश्व देवता का भी एक महान् अहं (Ego) है अहंकार है।

मेरे अन्दर का मन विश्व के अधिदेव विराट् देव के विराट् मन का एक अंश है। मेरी बुद्धि, विराट् की बुद्धि की एक किरण है–मेरे अन्दर की वासनायें–विराट् के अन्त:करण से उमड़ती हुई धारायें हैं मेरे अन्दर का काम विराट्–के काम स्पन्दन का एक नन्हा सा स्पन्दन है, मैं एक छोटा सा अह भाव हूं—एक छोटा सा विशिष्ट जीव लेकिन विराट्–देव का जीवत्व बहुत विराट् है—मेरा जीवत्व उन्हीं के विराट् जीवत्व का अंग है। मेरे अन्दर जो आत्मा की किरण (Spark) है। वह परात्पर सत्ता की ही चिनगारी (Spark) है। ये सभी (Sparks) चिदंश-विश्व देवता के गले में पिरोये हुए हार हैं।

हमारे सारे व्यक्तित्व विराट् विश्व-देव के विराट् असीम व्यक्तित्व में इस प्रकार पिरोये हैं जैसे एक धागे में हार के मोती। सनातन-अव्यक्त से निकलती हुई तना—धारा—पहले विश्व देह में प्रविष्ट होकर विश्वात्मा के रूप में प्रकट होती है— सृष्टि के यही ईश्वर नियामक—साकार भगवान हैं—सृष्टि इनका स्थूल (Manifest) शरीर है—फिर वही चेतन धारा और छोटे छोटे चिदंशों के तेज कणों (Sparks) के रूप में हर शरीर में प्रविष्ट होकर चेतना (Consciousness) के रूप में प्रकट हो रही है। वह चेतन धारा जीवित प्राणियों के अन्त:करण में मन, बुद्धि, अहंकार के रूप में उतर रही है। इस तरह छोटे से छोटे जीव का सनातन अव्यक्त के साथ सीधा सम्बन्ध (Direct Link) है। देह के स्तर पर भी सम्पूर्ण प्राणियों की देहें, उसी पच भूतात्मक तत्वों के बने हैं, जिनसे सारी सृष्टि। सम्पूर्ण सृष्टि और प्राणी एक ही मैटर के बने हुए हैं। अत: हमारे शरीर हर स्तर पर विराट् (Cosmic) महाभूतों के साथ स्पन्दन करते हैं। गर्मी पड़ती है—शरीर के अन्दर का पानी सूख जाता है शरीर प्यास के द्वारा फिर मांगता है–विश्व में अग्नि है शरीर के अन्दर भी अग्नि है जो टैम्परेचर (Temperature) के रूप में परिलक्षित है—विश्व में वायु है। शरीर के अन्दर भी फेफड़ों में विश्व-वायु सांस के रूप में जा रहा है–गैसों के रूप निकल रहा है—आकाश भी है–मैटर (Matter) भी है–हमारी देह भी विराट् के महाभूतों से योग युक्त है—देह का एक एक परमाणु विराट् जगत् का अंग है और विराट् स्वयं परात्पर के एक अंश से निकल रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा भौतिक शरीर विराट् शरीर का अंग है। आत्मा परात्पर सत्ता का तेज कण है। प्राण-विश्व (Energy) प्राण से आ रहा है-

मन विराट के मन का टुकड़ा है—बुद्धि विराट् की महा बुद्धि की छोटी सी झलकी है। हमारा अहं विराट् के अहं में समाया है हर स्तर पर हमारा विश्व चेतना से पूर्ण योग है। हम स्वयं विराट् के अंग हैं।

Grand design of the cosmic spirit,

विश्वात्मा का महान् चक्र

विश्व चेतना के इस चतुर्मुखी प्रसार के माध्यम से (परात्पर, विश्वात्मा बहिर्यामी. अन्तर्यामी) छोटे से छोटे प्राणी का परात्पर सनातन अव्यक्त से सम्बन्ध है। विश्वात्मा परात्पर सत्ता के सक्रिय अवतार हैं। पूरे विश्व के पालन धारण और लय के पीछे उनकी (Divine will) उनका संकल्प (Rationalmind) काम रहा है। सृष्टि के सरक्षण और विकास के लिए वे हर क्षण तत्पर हैं। सृष्टि एक प्रकार से उनकी लोला खेल है–इस सृष्टि के पीछे उनके अपौरुषेय मस्तिष्क की वृहद" योजनायें काम कर रही हैं। हिस्ट्री के बड़े बड़े घटना चक्र साधारणतया देखने पर आकस्मिक (Accidental) मालूम पड़ने हैं किन्तु कुछ समय बीत जाने पर उनका सिंहावलोकन करने पर सारी घटनायें सुनियोजित तथा एक लक्ष्य की ओर अग्रसर होती हुई नजर आती हैं और वह लक्ष्य है सृष्टि का कल्याण—अभी हाल ही की बंगला देश की घटनाओं को समझिये—पाकिस्तान निर्माण के समय बगाल की बहु-जन संख्या धर्मोन्माद से ग्रस्त हो गई थी तो एक तरफ विश्वात्मा ने शेख मुजीब के के मन में स्वदेश भक्ति धर्म जाति निरपेक्षता के कल्याणकारी विचार उत्पन्न किए-दूसरी ओर याह्या खां ने नियति प्रेरित होकर बँगला देश में वह अत्याचार और उत्पीड़न किये कि धर्म के नाम पर राष्ट्रीयता निर्माण करने और दूसरे मत वालों के प्रति असहिष्णुता दिखाने की निरर्थकता (Futility) सामने आ गई, ३० लाख इन्सान इस सामूहिक शुद्ध-प्रक्रिया में काट कर फेंक दिये गये? एक कल्याणकारी नवीन राज्य का उदय हुआ। नियति इस प्रकार अपने लक्ष्य पूरा करती है। इस सम्पूर्ण क्रिया में सृष्टि का विकास तथा विनाशकारी सिद्धांतों का विघटन सामने आया।

न केवल (Grand design) विराट्-स्तर पर में ही विश्वदेव अपनी सृष्टि को संचालित करते हैं बल्कि छोटे से छोटे अदने प्राणी तक उनकी योजना चलती है।

कैसे ? एक (College) है, कालेज में ७००-८०० विद्यार्थी हैं, ४०-५० अध्यापक हैं प्रोफेसर हैं। अब प्रिंसिपल यों बाहरी तौर पर अनासक्त से अपने आफिस में बैठे दिखाई देते हैं लेकिन सारे कालेज में उनका चक्र चल रहा है। छोटे से छोटे दर्जे तक के विद्यार्थी उनके(Orbit,में, उनकी नजरों में हैं। उनका बनाया हुआ

कार्यक्रमअमल में लाकर अध्यापक लोग बच्चों को पढ़ा रहे हैं-उनकी चुनी हुई किताबें बच्चों को पढ़ने के लिये दी जा रही है । उनके द्वारा अनुमति प्राप्त किये हुए विद्यार्थी एडमिशन (Admission) पा रहे हैं–उनके द्वारा भेजे हुए विद्यार्थी परीक्षाओं मे भाग ले रहे हैं । एक भी विद्यार्थी उत्पात (Misbehave) करता है, तो रिपोर्टें उनके पास आती है–किसी विद्यार्थी के चोट आये डा० उनकी आज्ञा से आता है । खेलों में परीक्षाओं में, उनका अनुशासन चलता है । कालेज का हर लड़का परोक्ष अपरोक्ष रूप से प्रिंसिन्पल की योजना में ग्रैण्ड डिजाइन में काम कर रहा है ।

इसी प्रकार समझना चाहिये हर जीव परोक्ष, अपरोक्ष रूप से विश्वात्मा प्रभु के (Grand design) महान योजना के अनुसार नियुक्ति है । विश्व देव की (Divine will) इच्छा हर घड़ी, हर पल, हर जगह, जीव को उसकी मंजिल की ओर ले जा रही है । इस तरह हर समय जीव परात्पर से युक्त है ।

मेरा ऐश्वर्य योग

Divine Yoge.

विश्व मानवों—मनुष्य हर स्तर पर मुझसे संयुक्त है, योग युक्त है । अधिभूत के स्तर पर उसका शरीर–मेरे विराट् महाभूतों से युक्त है, जुड़ा है—विराट् महाभूतों का अंशीभूत है । अध्यात्म के स्तर पर उसकी आत्मा मुझ परमात्मा की एक किरण है—उसका मानसिक अन्त:करण यन्त्र–मेरे विराट अन्त:करण का एक नन्हा सा बिन्दु है मनुष्य की हर कड़ी हर धुरी मुझसे संयुक्त है—वह अगर चाहे तो भी इस योग को तोड़ नहीं सकता । जिन जीवों ने अपने अहं को मेरे अहं से अलग समझ कर—अपने सीमित व्यक्तित्व को मेरे व्यक्तित्व से निराली चीज जानकर संसार में उत्पात करने की कोशिश भी उस व्यक्तित्व को मैंने संसार के लिए अकल्याणकारी समझ कर अपने में लय कर लिया । जीव और परात्पर के इस योग को कोई चाहे तो भी नहीं तोड़ सकता है ।

ज्ञान

इस सारे तन्त्र (Mechanism) को खूब अच्छी तरह से समझना ही ज्ञान है—ज्ञान भी ऐसा कि हिले नहीं अविकम्प योग । जब आप दूध एक दफा पी लेते हैं, देख लेते हैं ती दूध की पहचान में गड़बड़ी नहीं हो सकती यह अविकम्प हो

जाता है। इसी प्रकार अधिभूत, अध्यात्म और अधियज्ञ का ज्ञान ही असली ज्ञान है।

योग

चेतना के सम्पूर्ण उपकरणों द्वारा (Total consciousness) के द्वारा इस ज्ञान की अनुभूति योग है कि हम सदा सर्वदा परात्पर सत्ता के साथ अविच्छिन्न रूप से युक्त हैं।

भक्ति

इस अविच्छिन्न सहानुभूति के साथ ही साथ हमारे हृदय की भाव धारायें एक साथ शाश्वत सनातन प्रभु की ओर उमड़ पड़ें हमारा सारा हृदय उनके प्रति समर्पित हो जाय वे हमे अपने स्वामी, प्रियतम, पिता, माता सब कुछ नजर आने लगें हम उनकी गोद में बैठे हैं सम्पूर्ण सृष्टि चक्र में हमारा कोई भी कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। मृत्यु भी हमारी चेतना की एक करवट है हम सदा सर्वदा उस एक अव्यक्त विराट प्रभु के हैं और रहेंगे हमारी चेतना उनकी अनन्त चेतना की बेटी है हम उनके हैं—इस प्रकार भक्त की भाव धारा निरंतर प्रभु की ओर बहेगी यही भक्ति है और विश्वात्मा के सृष्टि चक्र (Grand design) में अपनी सम्पूर्ण क्षमता के साथ और खुशी खुशी (Happily) भाग लेना (Grand design) उनके महाचक्र संकल्प की धारा मे सहज भाव से बहना अपने हर पल को मस्ती के साथ जीना यह कर्मयोग है। अपनी सम्पूर्ण चेष्टाओं से विश्वात्मा के सृष्टि चक्र की योजनाओं (Grand design) में हार्दिक सहयोग करना (Willing co opera tion) कर्मयोग है।

इस स्थिति में मनुष्य के कर्म बड़ी ही सहजता से होंगे जीवन का हर पल आनन्द से भर उठेगा जीव आनन्द की लहरों पर तैरता हुआ ईश्वरीय इच्छा की धाराओं पर सहज भाव से तिरने लगेगा उसकी अपनी चेतना उसे विश्व चेतना की एक किरण के रूप में दिखाई देगी। उसके समस्त क्रिया कलाप, उद्देश्य (Motives) विश्व-चेतना (Universal consciousness) से उद्भव होते हुए दिखाई देंगे और वह जीव स्वयं अपने को विश्वात्मा का एक पुरजा अनुभव करेगा जिसके अन्दर अपनी कोई (Will) मर्जी नहीं है उसके शरीर यन्त्र को विराट् चेतना अपनी इच्छा से अपने अभिप्राय को पूरा करने के लिये संचालित कर रही है, प्रेरित कर कर्मों में नियुक्त कर रही है।

यह मेरा ईश्वरीय योग है यानी ईश्वर हर वक्त जीव चेतना से युक्त है। अधिवज्ञ के नियमों को पालन करने से यह स्थिति और भी अधिक दृढ़ हो जात है।

पश्य मे योगम् ऐश्वरम्

आप मेरे इस ईश्वरीय योग को समझिये और अपने मन में इसे मजबूत बनाकर रखिये यही योग है, यही अविकम्प योग हैं, यही विभूति योग है, यही कर्मयोग। अपने शरीरों के माध्यम से विश्वात्मा के संकल्पों को पूरा करना व विश्वात्मा के सृष्टि चक्र में जीव का हार्दिक तथा समर्पण पूर्ण सहयोग।

जय विश्वात्मा

जय परात्पर

जय अव्यक्त

———

मत्प्रसाद (मेरी कृपा)

१—सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद् व्यपाश्रयः
मत्प्रसादात् अवाप्नोति शाश्वतं पदं अव्ययम् ।

२—चेतसा सर्वं कर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ।

३—मच्चित्तः सर्वं दुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि
अहं त्वां सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।

४—तुम कृपालु जापर अनुकूला,
ताहि न व्याधि त्रिविध भव शूला ।

५—सन्मुख होहि जीव मोहिं जब ही,
जन्म कोटि अघ नासहु तबही

६—भाविहु मेटि सकहिं त्रिपुरारी ।

—राम चरित मानस,

मत्प्रसाद

My grace

एक तरफ सनातन—अव्यक्त परम पुरुष (The enternally umanifest supreme being) और दूसरी तरफ उनके सृष्टि के रूप में व्यक्ती-करण के बारे में मैं बहुत कुछ बता गया हूं। विश्व की नियामक शक्ति या सत्ता डिवाइन विल (ईश्वरीय संकल्प) जिन तीन प्रकार की व्यवस्थाओं (Meterial order, spiritual order, moral order) के अन्तर्गत और माध्यम से इस विराट्विश्व का नियमन कर रही है··· उसका भी मैंने आप लोगों को ज्ञान कराया।

एक बड़ी ही नाजुक सी बात आप तक पहुंचाना चाह रहा हूं। कह नहीं सकता बात की बारीकी कहां तक आप तक पहुंचेगी।

इसमें कोई शक नहीं कि विश्व का नियमन संचालन-इन तीन व्यवस्थाओं के माध्यम से हो रहा है लेकिन ईश्वर की इच्छा (डिवाइन विल) इन तीनों व्यवस्थाओं की भी प्रवर्तिका और निर्देशिका है। सही है कि वह इन व्यवस्थाओं के विशेष नियमों के माध्यम से सृष्टि का संचालन कर रही है तथापि वह इन व्यवस्थाओं से भी परे उनसे बहुत ऊपर उनकी भी संचालिका है। व्यवस्थायें उस महाशक्ति को बाँध नहीं सकतीं वह व्यवस्थाओं को बाँधती हैं। वह विराट् के ऊपर भी शासन करने वाली महा चेतना है। वह अपनी व्यवस्थाओं में रद्दोबदल—परिवर्तन करने का सम्पूर्ण अधिकार अपने पास सुरक्षित रखती है। उसकी असीम शक्तियाँ इन तीनों व्यवस्थाओं के रूप में काम करते हुए भी उन्हीं में समाप्त नहीं हो जाती हैं। They are not exhausted in them तीनों व्यवस्थायें उस महाचेतना की आज्ञा से, उसके निर्देश से, उसके Supervision में उसकी निगरानी में चल रही हैं। ईश्वर की इच्छा या Divine will समस्त व्यवस्थाओं की योजना बनाने वाली है। यह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महाशक्ति, महाचेतना, महाबुद्धि, महामन एवं अव्यक्त विराटोत्तर व्यक्तित्व है जिसके इशारे पर समस्त विराट् जगत नाच रहा है और इस महाचेतना का जीव से सीधा सम्बन्ध है, प्रसाद का, कृपा का, अनुकम्पा का, करुणा का, रहमत का, प्यार का है।

Grace ईश्वर का, प्रसाद या कृपा

ईश्वरीय महाशक्ति (Divine will) जब सक्रिय हो उठती है और जीव को अपने प्यार और दुलार से अभिसिक्त करने के लिये उसकी ओर प्रवाहित होने लगती

है तब उसे ग्रेस या ईश्वर की कृपा का नाम दिया जाता है। कृपा के रूप में ईश्वर का ईश्वरत्व स्वयं जीव के पास आ रहा है। ईश्वर का ईश्वरत्व क्या है ? इसमें ईश्वर की समस्त शक्तियाँ, ज्ञान शक्ति, तेज पराक्रम, लालित्य, कीर्ति, ऐश्वर्य आदि समस्त दैवी विभूतियाँ आ जाती हैं। सृष्टि को धारण करने और पोषण करने की शक्ति भी आ जाती हैं। तो कृपा ग्रेस (Grace) के रूप में ईश्वर का ईश्वरत्व जीव की ओर प्रवाहित होता है और उसे उसकी नियति व परिवेश के अनुसार अपेक्षित तेज तथा पराक्रम से मण्डित करता है प्रार्थना और आन्तरिक ध्यान से आकर्षित होकर स्वयं असीम क्षमताओं का विराट् महासागर अव्यक्त परमात्मा अपने ईश्वरीय गुणों व शक्तियों के रूप में जीव के अन्दर प्रवेश करता है और अपने ईश्वरत्व से जीव पुत्र को अभिषिक्त कर देता है। ईश्वरत्व का यह प्रवाह दैवी सामर्थ्य, दैवी ज्ञान, दिव्य बुद्धि यश, तेज, पराक्रम और सिद्धि का रूप ले लेता है जिनसे मण्डित हो कर जीव कृतार्थ हो जाता है। ईश्वर की कृपा इसी रूप में प्रकट होती है। अपनी ईश्वरीय क्षमताओं के अक्षय स्रोत के रूप में ईश्वर स्वयं जीव की चेतना और परिवेश में आकर उपस्थित होता है और नियति के अनुसार हर प्रकार की अपेक्षित क्षमता और योग्यता और महिमा, सुविधा से जीव को मण्डित करता है। यह कृपा परवश होकर करुणा विगलित होकर दिव्य विभूतियों के रूप में स्वयं ही जीव को आच्छादित कर रहा है। जीव ईश्वर पुत्र है इसलिये।

ग्रेस या प्रसाद का रूप

अव्यक्त ईश्वर की कृपा जीव के अन्तःकरण में सद्बुद्धि, सद्विचार, सदविवेक के रूप में सहसा प्रकट होती है मानों कोई प्रकाश पुंज टॉर्च अचानक जल उठी हो और अंधेरे रास्ते प्रकाशवान हो उठते हैं।

जो हमारे नियत कर्म हैं, जो कुछ भी श्रेयस्कर हमसे होना नियत है उन सभी कार्यों को करने के लिये ईश्वर की कृपा हमें उन कर्मों को सम्पन्न करने की क्षमता के रूप में प्राप्त होती है। चाहे हमारा प्रारब्ध कितना भी कठिन क्यों न हो। हमारा शरीर—यन्त्र कितना ही गड़बड़ क्यों न हो, हमारे पास उपकरणों का कितना ही अभाव क्यों न हो फिर भी यदि हमसे जो कुछ भी कार्य होने नियत हैं, उनके लिये हमें क्षमतायें, योग्यतायें, सामर्थ्य और प्रेरणायें अवश्य मिलेंगी। हमें समझना चाहिये कि इन क्षमताओं के रूप में—ईश्वर की कृपा ही हमारे पास आई है और निरन्तर आ रही है क्योंकि ईश्वरीय इच्छा—शक्ति स्वयं हमारे माध्यम से अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये क्रिया-शील है और इसी लिये वह हमें कार्य

करने के लिये उपयुक्त क्षमतायें प्रदान कर रही है। और भविष्य में यश भी प्रदान करेगी।

ईश्वर का कृपा प्रसाद जीव को परिस्थितियों की अनुकूलता के रूप में प्राप्त होता है। ईश्वरीय कृपा उन शक्तियों और सामर्थ्यों के रूप में आती है जिनके द्वारा जीव अपना लक्ष्य प्राप्त करता है। वह उन सुविधाओं और अनुकूल परिस्थितियो के रूप में भी प्रकट होती है जिनमें आप के लक्ष्य पूरे होने की सम्भावना अच्छी होती है। ऐसे कार्यों का जो कि श्रेयस्कर हैं और आप के ही द्वारा होने हैं सम्पन्न कराने के लिये ईश्वर की कृपा अनुकूल परिस्थितियों के रूप में आती हैं। एक लड़का है, विद्यार्थी है, एक परीक्षा में पास होना चाहता है किसी Competition में बैठ रहा है तो ईश्वर की कृपा उसके स्वास्थ्य के रूप में प्रकट होगी। जरूरत के मुताबिक किताबों की प्राप्ति में होगी–परीक्षा के समय तेजस्वी बुद्धि के रूप में प्रकट होगी, श्रेष्ठ अध्यापकों के निर्देशन के रूप में मिलेगी, वह विचारों के प्रवाह में प्रकट होगी। तीव्र स्मरण शक्ति और प्रतिभा के रूप में प्राप्त होगी। इस प्रकार उस बालक को परीक्षा में सफलता दिलाकर, उसे यश से मण्डित कर पुन: विश्वात्मा की महाविभूतियों में लय हो जायेगी आवश्यकतानुसार फिर भी आ सकती है।

एक बच्चे को माता पिता के प्यार और संरक्षण के रूप में ईश्वरीय कृपा की दैवी डोज़ मिल रही है गाय को मानवीय संरक्षण के रूप में ईश्वर की कृपा मिल रही है, तो मनुष्य को उसके दूध के रूप में ईश्वर की कृपा मिल रही है। एक बीमार को अच्छे डाक्टर के पास जाने की सम्मति ईश्वर की कृपा दे रही है। डाक्टर के अन्त:करण में बैठकर रोग के निदान और औषधियों के निर्वाचन के लिये ईश्वर की कृपा कार्य कर रही है। (Operate) उसके घर में उचित पथ्य और विश्रामपूर्ण वातावरण के रूप में ईश्वर की कृपा छा रही है।

जो कार्य आप से होने नियत नहीं है या जिन कामों में सफल होने पर आप भविष्य में अपना या अपनों का अहित कर सकते हैं, उन कार्यों के होते समय ईश्वरीय महाशक्ति की कृपा वर्जना या असफलता के रूप में भी प्रकट होती हैं। ऐसा तब होता है जब ये काम ऐसे होते हैं जिनके करने पर आप अदृष्ट भविष्य में अपना नुकसान कर सकते हैं, अपनी इमेज बिगाड़ सकते हैं, आप दूसरों की नजर में गिर सकते हैं तो ईश्वर की कृपा, घटनाओं को कुछ ऐसा मोड़ देगी कि किसी न किसी रुकावट से वे काम पूरे न हो सकेंगे और जब तक आप बात को समझ सकें तब तक वह आप को वर्जित पथ से हटा देगी। इस प्रकार कि आप को पता भी न चले।

ऐसी असफलता में भी ईश्वरीय इच्छा शक्ति का महान् वरदान छिपा होता है । A blessing in disguise.

महापुरुषों के उपर या आप के ऊपर भी जो संकट, कष्ट, कठिन परिस्थितियाँ आती दिखाई देती हैं वे वस्तुतः ईश्वर प्रेरित होती है । वस्तुतः वे उन महान् दिव्य कर्मों की भूमिका होते हैं जो जीवन में उनसे होने वाले होते हैं । जितना महान् कार्य उसकी उतनी ही कठिन भूमिका । और फिर इन परीक्षाओं को पार करके मंजिल तक पहुँचने की शक्ति और पराक्रम भी तो ईश्वर की कृपा ही दे रही हैं । वह स्वयं उस शक्ति और पराक्रम के रूप में आप के पास आई हुई है जिसके द्वारा इन कठिन भूमिकाओं को सभालने की क्षमता आप में पैदा हो रही है । जितनी ही कठिन परिस्थिति सामने आती है ईश्वर की कृपा उतना ही तेज, बल और साहस आप के अन्दर भर रही है जिनसे आप कठिन परिस्थितियों से जूझ सकें और उन्हें परास्त कर वशीभूत कर सकें । और अन्त में ईश्वरीय महाशक्ति अपनी कृपा के रूप में, आप तक प्रवाहित होती है और यथोचित योग्यताओं और क्षमताओं के रूप में, प्रकट होकर आप की कार्य सिद्धि करा आप को अश्रुतपूर्व यश से मण्डित कर फिर महा चेतना में समा जाती है । विश्वास करिये ईश्वर की कृपा के बिना न तो आप में परिस्थितियों से जूझने का बल पैदा हो सकता था न वह बुद्धि का प्रकाश आप को प्राप्त हो सकता था जिससे आप ने लक्ष्य सिद्धि की । विना ईश्वर की कृपा के सतत प्रवाह के आप मंजिल पर पहुँच ही नहीं सकते । जब परात्पर की कृपा धारा श्रीराम के अन्तःकरण में पहुँच रही है तभी वे वनवासी होते हुए भी लंका पर विजय पा रहे हैं ।

ईश्वर का प्रसाद आप को विशेष परिस्थितियों में ही नहीं मिल रहा है बल्कि हर सामान्य परिस्थिति में भी वह आप को प्राप्त हो रहा है । आप उससे हर पल हर क्षण आच्छादित हैं । आँख खोलकर पहचान करके देखने पर जिन्हें आप क्लेश-पूर्ण परिस्थिति समझ रहे हैं उन्हें भी सहन करने और उनका सामना करने का साहस वह ईश्वरीय कृपा ही जुटा रही है । वह दुर्गम नियति जिसे आप महासागर के रूप में देखकर घबड़ा रहे हैं उसे पार कर जाने का देव दुर्लभ बल भी तो वही महाशक्ति जुटा रही है ।

इसीलिये उसका एक नाम दुर्गा है । अव्यक्त ईश्वर की कृपा (Grace) ही दुर्गा है । जो दुर्गम नियति को पार करने की शक्ति देती हैं जो दुर्गम मार्गों पर सेतु बनाती है जिनपर चलकर आप सहज ही मंजिल पर पहुँच जाते हैं" सर्वकारिणी दुर्गे

तू ही दुर्गम नियति कराती पार" जिस दुर्गा के ध्यान मात्र से क्लेशों का नाश होता है वह और कुछ नहीं ईश्वरीय करुणा ही है जो आप के आवाहन से सनातन अम्बर से बरस रही है। अपने जीवन में आप जिन जिन कठिन परिस्थितियों से उबरे हैं। वह आप का पुरुषार्थ नहीं वलिक ईश्वर की प्रेम या करुणा है।

तुम्ह कृपालु जापर अनुकूला,
ताहि न व्यापि त्रिविध भव शूला।

ईश्वरीय इच्छा शक्ति (Divine will) यद्यपि विश्व का नियमन तीनों व्यवस्थाओं (The spiritual order, the material order, The moral order) के माध्यम से कर रही है, उसके अपने आध्यात्मिक व भौतिक व नैतिक नियम-विधान हैं जिनके अन्तर्गत ये व्यवस्थायें काम कर रही हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि परात्परा महा चेतना इन नियमों की गुलाम है। नियम स्वय उसके आदेश से प्रवर्तित हैं वह नियम विधान कीं विधायिका और सचालिका है डिवाइन विल या ईश्वरीय इच्छा शक्ति सर्वोपरि Paramount है।

ताहि न व्यापि त्रिविध भव शूला

ईश्वर की कृपा का आवाहन करने पर (सम्पूर्ण चेतना के साथ आन्तरिक प्रार्थना) करुणा रूपी महाशक्ति तीनों प्रकार की व्यवस्थाओं जों आप के अनुकूल कर सकती है। भौतिक स्तर पर परिवेश आप के अनुकूल हो उठेगा—दैविक स्तर पर घटनाक्रम आप के पक्ष में जाने लगेगा, आध्यात्मिक स्तर पर ईश्वर का दुर्निवार संकल्प आप के माध्यम से अपने उद्देश्य पूर्ण करने लगेगा। आप ईश्वरीय उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये उसके Robot रोबोट (यन्त्र मानव) बन जायेंगे। इसी को मैं कहता हूं "तुम कृपालु जापर अनुकूला, ताहि न व्यापि त्रिविध भव शूला"।

कृपा का आवाहन

ईश्वरीय प्रसाद को प्राप्त करने का कोई वैज्ञानिक नियम नहीं है। इस मामले में महाशक्ति किसी नियम या अनुशासन की अनुगामिनी नहीं हैं। इस मामले में उसकी अपनी इच्छा (Divine will) सर्वोपरि है। वह सम्भव को असम्भव और असम्भव को सम्भव बना सकती है। वह जर्रे को आफताब और आफताब को जर्रा बना सकती है। उसकी मर्ज़ी होने पर दुराचारी महान् सन्त, और महान् अयोग्य अपूर्व योग्यता वाला बन सकता है। "सन्मुख होहि जीव मोहि जब ही, जन्म कोटि अघ नासहु तब ही।" दिव्य महाचेतना जिसे भी विशिष्ट कार्यो के लिये चुन लेती है, उसी के माध्यम से काम करने लगती हैं। "जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अन्धे को सब कुछ दरसाई।" काम भगवान की कृपा करती है यश और श्रेय जीव को दे जाती है। ईश्वर की कृपा, ईश्वरीय क्षमताओं, शक्तियों, तेज, ऐश्वर्य पराक्रम वर्चस्-

आदि के रूप में जीवतक प्रवाहित होती है। वह जीव की चेतना में प्रविष्ट होकर उन क्रिया-केन्द्रों का चार्ज (Charge) ले लेती है जहाँ से वह तात्कालिक कर्तव्यों में लगी रहती हैं। ईश्वर स्वयं ही अपनी कृपा के रूप में जीव—चेतना में प्रविष्ट हो जाता है। उस समय प्रसाद–गुण से युक्त पुरुष ईश्वर का अंशावतार होता है।

आवाहन के नियम

सम्पूर्ण चेतना के साथ स्मरण से, सम्पूर्ण आन्तरिक सत्यता के साथ प्रार्थना करने पर दिव्य महाचेतना जीव के प्रति आकर्षित होती है और जीव महा चेतना की कृपा और अवतरण की आशा कर सकता है बशर्ते कि वह ईश्वर की इच्छा के सामने सर झुकाये और अपने को पूरी तरह ईश्वर की इच्छा के सामने समर्पित कर दे। अपनी तरह से कोई शर्त या Precondition न लगाये।

जब जीव को यह एहसास होने लगता है कि मेरे शरीर की रचना ईश्वरीय महाशक्ति ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये की है, परिस्थिति भी उसी को प्रेषित है, परिस्थिति में कार्य करने की क्षमता भी वही दे रही है·····तब इस अनुभव से मनुष्य दैव प्रेरित नियति को पूरा करने का यन्त्र बन जाता है और हानि लाभ की चिन्ता छोड़कर वह उन तात्कालिक कर्तव्यों को पूरा करने में लग जाता है। और वह नियति ईश्वर के सकल्प से प्रेरित होती है। इस दिव्य एहसास से युक्त व्यक्ति को ही मैंने योगयुक्तात्मा कहा है। ईश्वर की कृपा योगयुक्तामा के माध्यम से विश्व के कल्याण के लिये कार्य करने लगती है और वह व्यक्ति ईश्वर की कृपा का बहुत बड़ा अंश प्राप्त करने लगता है। उसका मन भगवान् के सकल्पों का क्रीड़ा स्थल बन जाता है—उसका मन विश्वात्मा के मन Cosmic mind में लय हो जाता है, Merge हो जाता है। उसकी विशिष्ट इच्छाय नहीं रहतीं वर भगवान के ही सकल्प उसके माध्यम से कार्य करने लगते हैं। उसका मन ईश्वरीय कृपा का सक्रिय रूप बन जाता है जिसे कहते हैं कृपा का पात्र। वह विश्व के कल्याण के लिये ईश्वरीय प्रसाद (grace) प्राप्त करके उसका वितरण करने में समर्थ हो जाता है। (Transmission) फिर भला कठिनाइयाँ उसका क्या बिगाड़ सकती हैं। "राम काज लग तव अवतारा, सुनतहि भयहु पवताकारा"। उसकी क्षमतायें पर्वताकार हो उठती हैं—उसके मन के माध्यम से विराट् का मन कार्य करने लगता है—

'मत् चित्त: सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि"

उसके मन के माध्यम से मैं काम कर रहा हूं इसीलिये मेरी कृपा से कोई कठिनाई उसके सामने ठहर नहीं सकती······

—०—०—